
Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
Reg no. 1116

भारत का आर्थिक भूगोल

(युक्तप्रान्त के बोर्ड की हाईस्कूल तथा पटना विश्व-
विद्यालय की मेट्रीकुलेशन परीक्षाओं के
लिये स्वीकृत)

—:o:—

लेखक

पंडित दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०,
अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

और

श्री शंकर सहाय सक्सेना एम० ए०, बी० काम०
अर्थशास्त्र अध्यापक, बरेली कालेज, बरेली

———

प्रकाशक

नेशनल प्रेस

इलाहाबाद

तृतीय संस्करण]   १९४१   [मूल्य १।।)

Printed by
RAMZAN ALI SHAH
at the National Press, Allahabad

भूमिका

"भारत का आर्थिक भूगोल" पुस्तक के तीसरे संस्करण को लेकर उपस्थित होते हुए मुझे विशेष हर्ष होता है। पुस्तक संयुक्त प्रान्त की हाई स्कूल परीक्षा में "व्यापारिक भूगोल" प्रश्न पत्र के कोर्स को ध्यान में रख कर लिखी गई थी। पुस्तक का प्रचार इस बात का द्योतक है कि पुस्तक परीक्षार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। यह पुस्तक संयुक्तप्रान्त के अलावा पटना विश्वविद्यालय की मैट्रीक्यूलेशन परीक्षा में भी पाठ्य-पुस्तक नियत कर दी गई है। अतएव इस संस्करण में पुस्तक का संशोधन इस प्रकार किया गया है कि जिससे वह संयुक्तप्रान्त तथा बिहार दोनों ही प्रान्त के परीक्षार्थियों के लिए उपयोगी हो।

पुस्तक में यथेष्ट सुधार किया गया है। भारत के उद्योग-धन्धों, भारत का विदेशी व्यापार और ब्रिटिश द्वीप समूह तीन नये परिच्छेद बढ़ा दिये गए हैं। कुछ अन्य परिच्छेदों में भी यथेष्ट संशोधन किया गया है। मुझे पूरा विश्वास है कि इससे पुस्तक की उपयोगिता बहुत अधिक बढ़ जावेगी।

यद्यपि पुस्तक मूलतः परीक्षार्थियों के लिए लिखी गई है किन्तु वह साधारण पाठकों के लिए भी उपयोगी हो इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में श्री महेशचंद्र अग्रवाल एम० ए०, बी० एस सी० (आनर्स), विशारद, अध्यापक अर्थशास्त्र विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय से जो सहायता मिली है उसके लिए हम उनको धन्यवाद देते हैं।

शंकर सहाय सक्सेना

विषय-सूची

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

आर्थिक भूगोल का क्षेत्र—मनुष्य तथा उसकी परिस्थिति—परिस्थिति का प्रभाव—धरातल की बनावट और उसका प्रभाव—जलवायु तथा उसका मनुष्य पर प्रभाव—जलवायु और प्रवास—जलवायु और इमारतें—जलवायु और व्यापारिक मार्ग—जलवायु और उद्योग-धंधे—जलवायु का मस्तिष्क पर प्रभाव—जलवायु और वनस्पति—वनस्पति—मनुष्य के जीवन पर जीव-जन्तुओं का प्रभाव—शत्रु जीव-जन्तु—मित्र जीव-जन्तु—अभ्यास के प्रश्न।

१—१८

दूसरा अध्याय

भारतवर्ष की प्रकृति

भारतवर्ष के प्राकृतिक भाग—पर्वतीय प्रदेश—गंगा और सिंध के मैदान—पठार—तटीय मैदान—भिन्न भिन्न भागों में पाई जाने वाली मिट्टी—लाल मिट्टी—काली मिट्टी—लैटेराइट मिट्टी—नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी—खेतों को खाद की आवश्यकता—गोबर और कूड़े की खाद—मल की खाद—हरी खाद—खली—की खाद—एमोनिया सलफेट—हड्डी की खाद—मछली की खाद—भारतवर्ष की जलवायु—जाड़ों की वर्षा—वर्षा की विशेषताएँ—सिंचाई के साधन नहरें—पंजाब की नहरें—सतलज

वैली प्रोजेक्ट—सक्कर बाँध की नहरें—संयुक्त-प्रान्त की नहरें—दक्षिण की नहरें—तालाब—कुएँ—संयुक्त-प्रान्त के ट्यूब वेल—अभ्यास के प्रश्न। १६—५७

तीसरा अध्याय

मुख्य फसलें

हिन्दोस्तान में नीचे लिखी मुख्य फसलें पैदा की जाती हैं—गेहूँ—चावल—जौ—जुआर—बाजरा—चना—कई दालें—तरकारी और फल—नारंगी और संतरा—केला—सेब, नासपाती और अंगूर—आलू—गन्ना—चाय—कहवा—अफीम—तम्बाकू—खजूर—कपास—जूट—सन—तिलहन—सरसों और लाही—सन का बीज—तिल—अंडी—मूंगफली—बिनौला—नारियल—महुआ—रबर के बाग—अभ्यास के प्रश्न। ५८—८४

चौथा अध्याय

पशु, जन्तु और उनसे उत्पन्न होने वाली वस्तुयें

गाय और बैल—चारा—नस्ल पैदा करना—पशुओं की बीमारियाँ—भैंस—बकरी—ढोरों से होने वाली वार्षिक आमदनी—घी-दूध-मक्खन का धंधा—दूध और घी के धंधे की हालत—मांस का धंधा—मुर्गियों को पालने का धंधा—भेंड़ (ऊन का धंधा)—ऊनी कपड़े का धंधा—चमड़े का धंधा—रेशम के कीड़े पालने का धंधा—मछलियों का धंधा—अभ्यास के प्रश्न। ८५—१०५

पाँचवाँ अध्याय

खनिज पदार्थ

लोहा—मैंगनीज—मैंगनीज की खानें—अबरख—सोना—बाक्साइट—क्रोमियम—ताँबा—सीसा, चाँदी और जस्ता—टिन—

वोलफ्रेम—इमारत का पत्थर—संगमरमर—सीमेंट के लिए आवश्यक चीजें—शीशे का धंधा—नमक—मिट्टी के बर्तन बनाने का धंधा—चीनी मिट्टी के बर्तन—ईंट बनाने का धंधा—कोयला और मिट्टी के तेल—शोरा—अन्य धातुएं—अभ्यास के प्रश्न। १०६—१२०

छठवाँ अध्याय

वन प्रदेश

जंगलों से होने वाले लाभ—भारत के वन प्रदेश—सूखे वन प्रदेश—सदा हरे रहने वाले वन—पर्वतीय वन—देवदार—पाइन—स्प्रूस—सफेद सनोबर—पतझड़ वाले वन—साल—सागवान—समुद्र तट के वन—वन-उद्योग-धंधे—तारपीन का तेल और बीरोजा—कागज का धंधा—लाख—कत्था—दियासलाई—चमड़े कमाने के लिये आवश्यक पदार्थ—अभ्यास के प्रश्न। १२१—१३७

सातवाँ अध्याय

शक्ति के साधन

शक्ति और उसके साधन—शक्ति और जानवर—लकड़ी—कोयला—तेल—पानी और बिजली—अभ्यास के प्रश्न। १३८—१४९

आठवाँ अध्याय

उद्योग-धंधों का स्थानीयकरण

स्थानीयकरण के कारण—प्राकृतिक कारण—आर्थिक कारण—अन्य कारण—स्थानीयकरण के विरोधी कारण—स्थानीय करण के लाभ—स्थानीयकरण की बुराइयाँ और उपाय—अभ्यास के प्रश्न। १५०—१५९

नवाँ अध्याय

भारत के उद्योग-धंधे

सूती वस्त्र व्यवसाय—जूट—लोहा और स्टील—शक्कर का धंधा—दियासलाई का धंधा—चमड़े का धंधा—शीशे का धंधा—सीमेंट—कागज़ का धंधा—कुटीर उद्योग-धंधे—अभ्यास के प्रश्न। १६०—१९०

दसवाँ अध्याय

भारत की जनसंख्या

जनसंख्या का वितरण—जनसंख्या और घनत्व—जनसंख्या और खेती—जनसंख्या तथा रहन-सहन का दर्जा—जनसंख्या और रीति रिवाज—जनसंख्या और उम्र—जनसंख्या और आवास प्रवास—जनसंख्या की बुराइयों को दूर करने के उपाय—किसानों का धंधा—खेतों के मजदूर—मजदूर—दफ्तरों के बाबू—कारीगर और व्यापारी—अभ्यास के प्रश्न। १९१—२०५

ग्यारहवाँ अध्याय

व्यापार के मुख्य साधन

व्यापार के मुख्य साधन क्या हैं—सड़क—रेल—नदी व नाव—समुद्र और जहाज़—हवाई जहाज़—तार, टेलीफोन और बेतार का तार—अभ्यास के प्रश्न। २०६—२१९

बारहवाँ अध्याय

प्रान्तीय और अन्तर प्रान्तीय व्यापार

व्यापार और उसका साधन—प्रान्तीय व्यापार का क्षेत्र—प्रान्तीय व्यापार की हालत—प्रान्तीय व्यापार किस प्रकार होता

है—तौल माप और सिक्कों की भिन्नता—प्रान्तीय व्यापार और दलाल—पदार्थ का भाव-ताव करना—प्रान्तीय व्यापार और विज्ञापन—अभ्यास के प्रश्न। २२०—२३२

तेरहवाँ अध्याय

भारत का विदेशी व्यापार

भारत और इंगलैंड का विदेशी व्यापार—इंगलैंड के विदेशी व्यापार के रोड़े—भारत का निर्यात व्यापार—जूट—रुई—चाय—तेलहन—चमड़ा—भारत का आयात व्यापार—धातु का सामान—सूती और ऊनी माल—अभ्यास के प्रश्न। २३३—२४४

चौदहवाँ अध्याय

भारतीय शहर और बन्दरगाह

शहरों की उत्पत्ति—शहरों की उन्नति व वृद्धि—मुख्य-मुख्य शहरों की विशेषता—बन्दरगाहों की उत्पत्ति और वृद्धि—हिन्दुस्तान के बन्दरगाह—मुख्य-मुख्य बन्दरगाहों की विशेषता—अभ्यास के प्रश्न। २४५—२६१

परिशिष्ट

ब्रिटिश द्वीप समूह

स्काटलैंड—इंगलैंड—वेल्स—आयरलैंड। २६२—२७०



भारत का आर्थिक भूगोल

पहला अध्याय

आर्थिक भूगोल का क्षेत्र

यदि देखा जावे तो भौगोलिक परिस्थिति का मनुष्य-जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। (Human Geography) मानवीय भूगोल के विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि मनुष्य जिस प्रकार की भौगोलिक परिस्थिति में रहता है वैसा ही बन जाता है। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि भौगोलिक परिस्थिति कहते किसे हैं। किसी भी प्रदेश का जलवायु, धरातल की बनावट, खनिज तथा वनस्पति और एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश से भौगोलिक सम्बन्ध यह सभी बातें भौगोलिक परिस्थिति के अन्तर्गत आ जाती हैं। भूगोल के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने कहा है "मनुष्य अपनी भौगोलिक परिस्थिति की उपज है" यह कथन बिलकुल ठीक है। आगे के पृष्ठों में हम संक्षेप में यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि भौगोलिक परिस्थिति मनुष्य के रहन-सहन, आर्थिक उन्नति, स्वभाव, तथा मानसिक और शारीरिक अवस्था पर कितना अधिक प्रभाव डालती है। परन्तु यहाँ हमें विस्तारपूर्वक यह देखना है कि आर्थिक भूगोल क्या है और उसके अन्तर्गत हमें किन किन वस्तुओं का अध्ययन करना है। यह तो विषय के नाम से ही ज्ञात हो जाता है कि आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत हमें यह अध्ययन करना होता है कि भौगोलिक परिस्थिति का मनुष्य की आर्थिक हलचलों अर्थात् खेती, उद्योग

धंधे, व्यापार गमनागमन के साधन इत्यादि पर क्या प्रभाव पड़ता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत उन सब भौगोलिक परिस्थितियों का विवरण होना आवश्यक है जो कि वस्तुओं की उत्पत्ति, चलन, और क्रय-विक्रय पर प्रभाव डालती हैं।

यदि देखा जावे तो किसी भी देश की आर्थिक उन्नति वहाँ की प्राकृतिक देन—कच्चा माल, खनिज पदार्थ, शक्ति के साधन इत्यादि पर ही निर्भर होती है। और प्राकृतिक देन उस देश की भौगोलिक परिस्थिति पर अवलम्बित होती है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये प्रकृति की सहायता लेकर बहुत सी वस्तुओं को उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए किसान की खेती भूमि, वर्षा, धूप, और वायु पर ही अवलम्बित है। इसी प्रकार उद्योग-धंधे भी बहुत कुछ प्रकृति की सहायता पर ही निर्भर हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यदि किसी देश की प्रकृति धनी नहीं है तो वह आर्थिक उन्नति नहीं कर सकता। यदि ब्रिटेन और संयुक्त राज्य (अमेरिका) आज इतने समृद्धि-शाली हैं तो उसका मुख्य कारण यह है कि वहाँ की प्रकृति धनी है। यदि भारतवर्ष और चीन भविष्य में कभी आर्थिक उन्नति करेंगे तो केवल इसलिए कि इन देशों की प्रकृति अनुकूल है। किसी भी देश की प्रकृति का ज्ञान वहाँ की भौगोलिक परिस्थिति को जानने से ही हो सकता है। अस्तु "आर्थिक भूगोल" मनुष्य की आर्थिक उन्नति और उसके निवास स्थान का घनिष्ठ सम्बन्ध बतलाती है। यद्यपि मनुष्य की आर्थिक उन्नति का आधार उनके निवास-स्थान की भौगोलिक परिस्थिति है और इस कारण आर्थिक भूगोल में इसको मुख्य स्थान दिया जाता है, किन्तु आर्थिक भूगोल में इसके अतिरिक्त अन्य समस्याओं का भी समावेश

किया जाता है। जैसे ऊजड़ देशों को आबाद करने के कारण, एक देश से दूसरे में मनुष्यों के प्रवास करने के कारण, तथा भिन्न-भिन्न जातियों के मिलने से जो समस्यायें उपस्थित हो जाती हैं उनका भी समावेश इस विषय में होना आवश्यक है।

आर्थिक भूगोल के विद्यार्थी को इन सब विषयों का ठीक ठीक अध्ययन करने के लिए पृथ्वी की बनावट तथा धरातल विषयक जानकारी प्राप्त करनी होगी, खनिज पदार्थों, वनस्पति, पशु और कृषि के सम्बन्ध में सभी जानने योग्य बातों का अध्ययन करना होगा। साथ ही इस बात का भी अध्ययन करना होगा कि पृथ्वी की बनावट, खनिज-पदार्थों, वनस्पति, पशु-पक्षी, तथा कृषि का मनुष्य जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है। विद्यार्थी को इस बात का भी अध्ययन करना होगा कि भिन्न भिन्न प्रकार की मिट्टी तथा धातुओं का पृथ्वी की बनावट से क्या सम्बन्ध है, पृथ्वी की बनावट तथा जलवायु का खेती बारी पर क्या प्रभाव पड़ता है। इन्हीं भौगोलिक परिस्थितियों पर मजदूरों (जो सम्पत्ति उत्पन्न करते है) की कार्य करने की ताकत निर्भर है और धरातल की बनावट तथा जलवायु से "शक्ति" (Power) का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कोयले के द्वारा उत्पन्न की हुई शक्ति, बिजली, पानी, तथा वायु की शक्ति सभी धरातल की बनावट तथा जलवायु पर ही अवलम्बित हैं। कच्चा माल (खेतों और वनों में उत्पन्न होने वाले पदार्थ) खनिज पदार्थों, मजदूरों के कार्य करने की ताकत, तथा शक्ति (Power) इन्हीं पर किसी देश की औद्योगिक उन्नति निर्भर रहती है। इसलिए भूगोल के विद्यार्थी को इन सभी बातों का अध्ययन करना आवश्यक है।

आज जबकि समस्त संसार औद्योगिक उन्नति की ही धुन में उन्मत्त हो रहा है, और प्रत्येक देश अपनी आर्थिक दशा को सुधारने का प्रयत्न कर रहा है उस समय आर्थिक-भूगोल का

ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। अभी तक इस विषय को हमारे स्कूलों और कालेजों के पाठ्यक्रम में कोई स्थान नहीं दिया गया था किन्तु अब इस विषय के महत्व को स्वीकार किया जा रहा है।

मनुष्य तथा उसकी परिस्थिति

जिस स्थान में मनुष्य निवास करता है वहीं के अनुसार उसे अपना जीवन बनाना पड़ता है क्योंकि उसे अपने जीवन की रक्षा के लिए भोजन तथा शरीर रक्षा के लिए कपड़े और रहने के लिए सुरक्षित स्थान (मकान) की आवश्यकता होती है। अस्तु, यह जानने के लिए कि किसी देश के मनुष्यों का मुख्य धंधा क्या होगा, वहाँ का पहनावा क्या होगा, तथा उस देश के निवासियों का रहन-सहन और स्वभाव कैसा होगा हमें वहाँ की भौगोलिक परिस्थिति को ध्यान में रखना होगा, क्योंकि ये सब बातें भौगोलिक परिस्थिति पर ही अवलम्बित हैं। यदि देखा जावे तो प्रत्येक पेशा मनुष्य के स्वभाव पर एक प्रकार का विशेष प्रभाव डालता है। यदि भिन्न भिन्न जातियों के स्वभाव का निरीक्षण किया जावे तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है।

उदाहरण के लिए संसार की उन जातियों को ले लिया जावे जो कि जंगली प्रदेशों में निवास करती हैं और शिकार के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करती हैं तो ज्ञात होगा कि उनका स्वभाव विनाशकारी होता है। वे लड़ने भिड़ने के लिए विशेष उत्सुक रहती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि शिकारी जाति का ध्येय ही विनाश करना होता है। वह वन, पशु, तथा पक्षियों को नष्ट करके ही जीवित रहती है। यही कारण है कि शिकारी जाति के लिए जीवन का अधिक मूल्य नहीं होता। छोटी सी बात पर वह

किसी से लड़ जावेगा और उसका जीवन अथवा अपना जीवन नष्ट कर देगा। यही कारण है कि शिकारियों में शक्तिवान व्यक्ति आदर की दृष्टि से देखा जाता है। गड़रिये का स्वभाव शिकारी से भिन्न होता है क्योंकि उसके लिए जीवन मूल्यवान होता है, वह अपने पशुओं को जंगली पशुओं से बचाने का प्रयत्न करता है। उसके जीवन का ध्येय अपनी पशु सम्पत्ति की रक्षा करना होता है। भला, वह शिकारियों की भाँति कलहप्रिय क्योंकर होगा। यही कारण है कि गड़रियों में आयु और अनुभव को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है न कि शारीरिक शक्ति को।

किसान का काम खेती बारी करना और फसल की रक्षा करना है। उसके जीवन का उद्देश्य विनाशकारी न होकर अपनी खेती की उन्नति करना होता है। किसान का जीवन अपनी भूमि से इतना अधिक सम्बन्धित होता है कि वह किसी भी परिवर्तन को जल्दी स्वीकार नहीं करता। किसान अपने गाँव अथवा देश को छोड़ कर बाहर जाना पसंद नहीं करता और न वह किसी नई बात को शीघ्र ही अपनाता है। किसान का स्वभाव शांत होता है। कलह उसके स्वभाव के विरुद्ध है। गाँवों की कुछ जातियों में प्राचीन रीतियों को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है और उन्हें अपने वंशपरम्परागत अनुभव पर अधिक विश्वास होता है।

आजकल बड़े बड़े व्यापारिक तथा औद्योगिक नगरों में रहने वाले मजदूरों का एक नया वर्ग उत्पन्न हो गया है जो कि कारखानों में काम करते हैं। इन औद्योगिक नगरों में रहने वाले मजदूरों का स्वभाव सर्वथा भिन्न होता है।

नगरों में रहने वाले मजदूरों का जीवन एकसा नहीं रहता। वह बदलता रहता है। आज मजदूर एक तरह की मशीन पर काम करता है तो थोड़े दिनों के उपरान्त एक दूसरी तरह की मशीन का आविष्कार हो जाता है और मजदूर को उस पर काम करना पड़ता

है। यही नहीं जिन वस्तुओं को कारखाने में तैयार किया जाता है उनके रूप में भी फैशन के बदलने से परिवर्तन हो जाता है। कहने का मतलब यह है कि औद्योगिक नगरों में रहने वाले मजदूरों का जीवन परिवर्तनशील होता है। यही कारण है कि नगरों में रहने वाले मजदूरों को किसी एक स्थान से प्रेम नहीं होता है। यदि लंदन में काम करने वाला मजदूर कनाडा में धन उपार्जन करने का अच्छा अवसर देखता है तो बिना किसी हिचकिचाहट के वह अपने देश को छोड़ कर कनाडा जा सकता है। इसके विपरीत भारतवर्ष के किसी गाँव का किसान अपने गाँव को नहीं छोड़ना चाहता। चाहे कोई भी देश क्यों न हो वहाँ की भिन्न भिन्न पेशे वाली जातियों के स्वभाव अवश्य ही भिन्न होंगे। हिन्दुस्तान में ही देखने से ज्ञात हो जावेगा कि उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्त में मिले हुए पहाड़ी प्रदेश की जातियों का स्वभाव कितना क्रूर है और हिन्दुस्तान के किसानों का कितना शांत है। वास्तव में यदि देखा जावे तो मनुष्य के जीवन पर उसके निवास-स्थान का अमिट प्रभाव होता है।

परिस्थिति का प्रभाव

अब हमें यह देखना है कि मनुष्य के जीवन पर भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का कैसा प्रभाव पड़ता है। हममें से बहुत से समझते हैं कि इस विज्ञान के युग में प्रकृति मनुष्य के वश में आ गई है। किन्तु ऐसा समझना हम लोगों की भूल है। विज्ञान के द्वारा मनुष्य ने प्रकृति से अपने कार्य में सहायता लेना सीख लिया है और प्रकृति की शक्तियों के बुरे प्रभावों से अपने को बचाने में भी उसे सफलता मिल गई है। परन्तु इससे अधिक वह कुछ नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए मनुष्य कोयले तथा पानी से भाप और बिजली पैदा करके उसका कारखानों में उपयोग

करता है और वर्षा तथा धूप से बचने के लिये उसने भिन्न-भिन्न प्रकार के मकानों को बनाया है, परन्तु ऊष्ण-कटिबन्ध आज भी गरम है। चावल की पैदावार आज भी गरम देशों में ही हो सकती है, लाख प्रयत्न करने पर भी चावल (Norway) नारवे और स्वीडन में पैदा नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार केला गरम और नर्म प्रदेशों में ही उत्पन्न हो सकता है। वैज्ञानिकों के लाख प्रयत्न करने पर भी आइसलैंड (Iceland) में उसकी खेती नहीं की जा सकती। अपने अनुभव से मनुष्य यह तो जान गया कि भिन्न-भिन्न फसलें किस प्रकार के जलवायु में उत्पन्न की जा सकती हैं किन्तु जलवायु में परिवर्तन करना उसके बस की बात नहीं है।

आज भी रेलवे लाइनें पर्वतीय प्रदेशों में प्राचीन घाटियों के रास्ते ही से होकर जाती हैं जो अत्यन्त प्राचीन समय से व्यापारिक मार्ग थे। फिर भी यह तो मानना होगा कि इस वैज्ञानिक युग में सभ्य जातियों ने अपने को प्रकृति के अधिकार से बहुत कुछ स्वतंत्र कर लिया है। लेकिन अफरीका के सघन बनों में रहने वाले हब्शी और राजपूताना तथा मध्य-भारत में रहने वाले भील और सन्थाल आज भी प्रकृति के आधीन हैं।

भिन्न परिस्थितियों में रहने वाली जातियों के विचार, रहन-सहन तथा स्वभाव भिन्न होते हैं। धीरे धीरे उन जातियों में कुछ विशेषता आ जाती है। यहाँ तक कि वह एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हो जाती है। हमें जो भिन्न जातियों में असमानता दृष्टिगोचर होती है वह केवल भौगोलिक परिस्थिति का ही प्रभाव है। यदि बंगाल प्रान्त के रहने वाले मनुष्य कमजोर होते हैं और नैपाल की घाटियों में रहने वाले गुरखे हृष्टपुष्ट और बलवान होते हैं तो इसका कारण दोनों देशों की भौगोलिक परिस्थिति में छुपा है।

धरातल की बनावट और उसका प्रभाव

धरातल की बनावट का मनुष्य के जीवन पर बहुत कुछ पड़ता है। किसी भी देश की जलवायु और पैदावार बहुत कुछ धरातल की बनावट पर निर्भर है। यही नहीं धरातल की बनावट इस बात को भी निर्धारित करती है कि अमुक देश औद्योगिक उन्नति करेगा या नहीं। पहाड़ी प्रदेशों की साधारणतः औद्योगिक उन्नति कम होती है, क्योंकि वहाँ मार्गों की सुविधा नहीं होती। खेती-बारी और उद्योग-धंधे ऊँचे पहाड़ी देश में पनप ही नहीं सकते। जब सम्पत्ति का उत्पादन पहाड़ी देशों में कम होती है तो वहाँ जनसंख्या भी कम और बिखरी हुई होती है। पहाड़ी प्रदेशों के निवासियों के मुख्य धंधे पशु-पालन, खान-खोदना, तथा लकड़ी का सामान बनाना है। नीचे मैदानों में जहाँ की भूमि उपजाऊ हो, घनी आबादी मिलती है क्योंकि ऐसे प्रदेशों में खेती-बारी तथा अन्य उद्योग धंधे खूब पनप सकते हैं और मार्गों की सुविधा होने से व्यापार की भी उन्नति हो सकती है।

इनके साथ हमें नदियों पर भी विचार करना आवश्यक है। क्योंकि नदियाँ मनुष्य समाज की आर्थिक उन्नति में सहायक होती हैं। खेतों की सिंचाई और व्यापारिक मार्ग के लिए नदियों का उपयोग होता है। आधुनिक काल में पानी से सस्ते दामों में बिजली उत्पन्न करने की नवीन विधि ने नदियों (विशेष कर पहाड़ी नदियों) का महत्व और भी बढ़ा दिया है।

इनके अतिरिक्त धरातल की बनावट का अध्ययन इसलिए भी आवश्यक है कि इससे एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश का सम्बन्ध ज्ञात होता है। यदि कोई विद्यार्थी बम्बई अथवा कराँची के महत्व को जानना चाहता है तो उसे इन बन्दरगाहों से सम्बन्धित कृषि प्रधान प्रदेशों का अध्ययन करना होगा।

केवल धरातल की बनावट का ही अध्ययन करने से काम नहीं चलेगा। हमें उन चट्टानों के विषय में भी अध्ययन करना होगा जिनसे धरातल बना है। चट्टानों के टूटने से ही मिट्टी बनती है और चट्टानों की बनावट पर ही धातुओं का होना भी निर्भर है। भूगर्भ-विद्या के जानने वालों ने पता लगाया है कि भिन्न भिन्न समय की बनी हुई चट्टानों में भिन्न भिन्न प्रकार की धातुयें पाई जाती हैं। कौनसी धातु कहाँ मिलेगी यह वहाँ की चट्टानों की बनावट पर ही निर्भर है। यही नहीं मिट्टी की उपजाऊ शक्ति भी उसमें मिली चट्टानों के कणों पर ही अवलम्बित होती है। कुछ चट्टानों की मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ तथा दूसरी चट्टानों की मिट्टी फसलों के लिए हानिकारक होती है। उदाहरण के लिए लैटेराइट (Laterite) जाति की मिट्टी खेती बारी के काम की नहीं होती। रेह वाली तथा नमकीन मिट्टी पौधे को उगने ही नहीं देती। यह उन स्थानों पर पाई जाती है जहाँ पानी कम बरसता है, अथवा जहाँ वर्षा के पानी को बहने के लिए मार्ग ही नहीं मिलता। ऐसे स्थानों में वर्षा का पानी पृथ्वी की तह के नीचे चला जाता है और नमक उसमें घुलकर अन्दर ही इकट्ठा हो जाता है। जब तेज धूप से पानी भाप बन कर उड़ता है तो अन्दर से नमक ऊपर आकर पृथ्वी पर जम जाता है और भूमि खेती बारी के लिए बेकार हो जाती है। जिस मिट्टी में वनस्पति का अधिक अंश होता है उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। ज्वालामुखी पर्वतों के फूटने से जो पिघले हुए पदार्थ निकलते हैं उनके द्वारा बनी हुई मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है, किन्तु जो मिट्टी नदियों के द्वारा पीसी जाकर मैदानों पर बिछा दी जाती है वह सबसे अधिक उपजाऊ होती है। संसार भर में गंगा के दोआब, नील नदी के प्रदेश, तथा चीन में लालनदी के प्रदेश की मिट्टी जितनी उर्वरा है उतनी दूसरी मिट्टी नहीं हो सकती।

जलवायु तथा उसका मनुष्य पर प्रभाव

मनुष्य के जीवन पर जलवायु का प्रभाव बहुत अधिक है। गरमी और जल मनुष्य जीवन के लिए कितनी महत्वपूर्ण वस्तुएँ हैं यह तो स्पष्ट ही है, किन्तु वनस्पति भी जलवायु पर ही निर्भर है। गरमी और जल काफी न होने से अथवा जरूरत से ज्यादा होने से बहुत से प्रदेश मनुष्य के निवास के योग्य नहीं रहते। गरम रेगिस्तान, बर्फीले मैदान, तथा बर्फ से ढके हुये पहाड़ मनुष्य के निवास स्थान बनने के योग्य नहीं हैं। यद्यपि ऐसे स्थानों में भी कुछ मनुष्य तो रहते ही हैं परन्तु उनका जीवन इतना कठिन है कि वहाँ अधिक जनसंख्या नहीं रह सकती।

जलवायु का खेती बारी तथा उद्योग-धंधों पर भी बहुत बड़ा प्रभाव होता है और प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य तो जलवायु का दास ही है। मनुष्य जलवायु को बदल नहीं सकता। यही कारण है कि रेगिस्तान आज भी रेगिस्तान हैं और गरम देश आज भी गरम हैं।

मनुष्य की सभ्यता भी जलवायु से प्रभावित होती है, संसार में सर्व प्रथम सभ्यता गरम देशों में फैली, किन्तु आज ठंडे देश अधिक सभ्य समझे जाते हैं। यह सब जलवायु के ही कारण है। उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवों के देशों, दलदल वाले मैदानों, तथा विषुवत् रेखा (Equator) के सघन वन प्रदेशों में जो पिछड़ी हुई जातियाँ रहती हैं, वे जलवायु के कारण ही इतनी पिछड़ी हुई हैं। जलवायु का प्रभाव केवल खेती-बारी, उद्योग-धंधे, मजदूरों की कार्य शक्ति तथा सभ्यता पर ही पड़ता हो यह बात नहीं है। जलवायु का प्रभाव व्यापार तथा गमनागमन पर भी पड़ता है। जिन देशों में बहुत अधिक ठंड पड़ती है वहाँ की नदियाँ जाड़े में जम जाती हैं और इसका फल यह होता है कि उन देशों के

बंदरगाह व्यापार के योग्य नहीं रहते। सायबेरिया केवल इसी कारण सभ्य संसार से पृथक् है क्योंकि उसकी नदियाँ जाड़े में जम जाती हैं और जहाज बन्दरगाहों में नहीं आ सकते।

ठंडे देश गरमी के दिन में तो पैदावार तथा व्यापार के लिए अत्यन्त सुविधाजनक होते हैं किन्तु जाड़ा सुस्ती तथा व्यापार की मंदी का समय होता है। जाड़े के दिनों में वहाँ पौधा उग ही नहीं सकता और यदि उग भी जावे तो अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। इस कारण जाड़े के दिन वहाँ अपेक्षाकृत आलस्य के होते हैं। बरसात के दिनों में मानसूनवाले देशों के निवासियों के पास अधिक काम नहीं रहता। हिन्दोस्तान का किसान बरसात के दिनों खाली रहता है।

जलवायु और प्रवास

जो जातियाँ एक से जलवायु में रहती हैं उनका रहन-सहन एकसा होने के कारण वे शीघ्र ही अपने देश के समान जलवायु वाले देश में जा कर बसने को तैयार हो जाती हैं। भिन्न जलवायु मनुष्य के प्रवास के लिए बाधक हैं। ब्रिटेन के निवासी प्रतिवर्ष कनाडा में बहुत अधिक संख्या में जाकर बस जाते हैं किन्तु बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी वे आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण अफ्रीका में अधिक संख्या में आकर नहीं बसना चाहते। भारतवर्ष के गरम मैदानों की गरमी से घबरा कर लोग हिमालय तथा दूसरे पहाड़ी स्थानों पर चले जाते हैं। इस थोड़े समय के प्रवास के कारण ही शिमला, नैनीताल, मंसूरी, दार्जिलिङ्ग, उटकमण्ड इत्यादि महत्वपूर्ण स्थान बन गए हैं।

जलवायु और इमारतें

मनुष्य को अपने मकानों में जलवायु का बहुत विचार करना पड़ता है। जब हम भिन्न प्रकार के जलवायु वाले देशों में

भिन्न भिन्न प्रकार की इमारतें देखते हैं तब यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। जिन देशों में वर्षा अधिक होती है वहाँ के मकानों की छतें ढालू होती हैं। ठंडे देशों में मकान बिना आँगन के बनाये जाते हैं। किन्तु गरम देशों में बिना आँगन का मकान रहने योग्य नहीं होता। यही कारण है कि ठंडे देशों के मकानों में कमरे एक दूसरे से सटाकर बनाये जाते हैं जिससे रहने वाले सर्दी से बच सकें। किन्तु हिन्दोस्तान जैसे गरम मुल्क में आँगन बहुत जरूरी है। गरम देशों के मकानों में अधिक हवा के लिए बरामदा बनाया जाता है।

जलवायु और व्यापारिक मार्ग

जलवायु का प्रभाव व्यापारिक मार्गों पर भी कुछ कम नहीं पड़ता। जिन स्थानों पर बहुत बर्फ पड़ती है वहाँ रेल और जहाज व्यर्थ हो जाते हैं। जाड़े में उत्तर के समुद्र जम जाते हैं तब वहाँ जहाजों का पहुँचना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार जिन देशों में रेलवे लाइनें भी बर्फ से दब जाती हैं वहाँ मार्ग की असुविधा हो जाती है। जिन देशों में वर्षा अधिक होती है वहाँ भी मार्ग की असुविधायें उत्पन्न हो जाती हैं। भारतवर्ष के किसी न किसी भाग में प्रतिवर्ष वर्षा अधिक होने से रेलवे लाइन मीलों तक टूट जाती है और कुछ दिनों के लिए रास्ता बन्द हो जाता है। रेगिस्तानों में हवा रेत की पहाड़ियाँ खड़ी करके रास्ता रोक देती है और ट्रेनों को घंटों रुकना पड़ता है। प्राचीन काल में जब जहाज भाप से नहीं चलते थे तब हवा ही उनका अवलम्बन थी। स्थल के मार्गों पर तो जलवायु का विशेष प्रभाव होता है। सड़क तथा अन्य मार्ग जलवायु को ध्यान में रख कर ही बनाये जाते हैं। जिन देशों में बर्फ जमी रहती है वहाँ पहियेदार गाड़ियाँ नहीं चल सकतीं।

जलवायु और उद्योग-धंधे

मजदूरों की कार्य-शक्ति जलवायु पर ही निर्भर होती है इस कारण अप्रत्यक्ष रूप से जलवायु का सभी धंधों पर प्रभाव पड़ता है, किन्तु कुछ धंधे जलवायु पर निर्भर होते हैं। उदाहरण के लिए सूती कपड़े का धंधा वहाँ अच्छी तरह से पनप सकता है जहाँ हवा में नमी हो जिससे बिनते समय सूत न टूटे। मैंचेस्टर के सूती कपड़े के धंधे की उन्नति का यही मुख्य कारण है। सिनेमा के लिए फिल्म तैयार करने में तो मनुष्य को जलवायु पर ही अवलम्बित रहना पड़ता है। जहाँ वर्ष में अधिक दिनों तक तेज़ धूप रहती हो वहाँ यह धंधा उन्नति कर सकता है जहाँ बादल, कुहरा, और वर्षा अधिक होती हो वहाँ यह धंधा उन्नति नहीं कर सकता।

जलवायु का मस्तिष्क पर प्रभाव

मनुष्य के मस्तिष्क पर भिन्न-भिन्न जलवायु का कैसा प्रभाव पड़ता है उसका ठीक-ठीक अनुमान करना कठिन है। फिर भी यह तो सभी मानते हैं कि ठंडे जलवायु में मनुष्य हृष्ट-पुष्ट और चुस्त बना रहता है किन्तु गरम और नम हवा मनुष्य को सुस्त और निकम्मा बना देती है। गरम और नम जलवायु में मनुष्य थोड़ा परिश्रम करने से ही थक जाता है। इसके विपरीत ठंडी हवा मनुष्य के हृदय तथा मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करती है। गरमियों के दिनों में गम्भीर अध्ययन नहीं हो सकता और नम हवा का मस्तिष्क पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि देखा जावे तो भिन्न-भिन्न देशों के निवासियों की विचार-शक्ति और स्वभाव उस देश के जलवायु के अनुसार ही बनता है। अँग्रेज खेल-कूद बहुत पसन्द करते हैं क्योंकि इङ्गलैंड का मेघाच्छादित आकाश सुस्त रहने वाले मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। दक्षिण अमरीका के निवासियों में जो आलस्य है वह वहाँ के गरम जलवायु का ही फल है। पूर्वीय

देशों में जो उदासीनता और पश्चिमीय देशों में चंचलता का साम्राज्य है वह भिन्न जलवायु का ही फल है। स्काटलैंड के निवासियों में गम्भीरता, असीम धैर्य और कल्पना शक्ति का जो बाहुल्य दिखलाई देता है वह वहाँ के कुहरे से परिपूर्ण जलवायु का प्रभाव है। इङ्गलैण्ड में गहरे रंगों की ओर रुचि न होने का कारण वहाँ के बादलों से घिरा हुआ आसमान है, और हिन्दोस्तान जैसे गरम मुल्क में जो तेज रंगों का इतना अधिक प्रचार है इसका कारण यहाँ की तेज धूप है।

अमेरिका के एक प्रसिद्ध विद्वान ने जलवायु तथा मनुष्य के कार्य-शक्ति के सम्बन्ध में अच्छी खोज की है। उनका नाम है श्री ई० हंटिंगटन। इन महाशय ने इस विषय पर बहुत कुछ अध्ययन करने के उपरान्त यह परिणाम निकाला है कि मनुष्य की शारीरिक शक्ति ६०° ये ६५° फै० गरमी में सब से अधिक चैतन्य रहती है और मस्तिष्क सबसे अच्छा कार्य उस समय करता है जब बाहरी वायु का तापक्रम (Temperature) ३८° से० हो। यदि कुहरा अधिक पड़ता हो अथवा गरमी सब मौसमों में एक सी रहती हो या फिर गरमी में जल्दी-जल्दी अधिक परिवर्तन हो जाता हो तो मनुष्य की शारीरिक शक्ति कम हो जाती है। जब हवा बहुत तेज चलती है तब मनुष्य के हृदय में उत्तेजना फैलती है। हंटिंगटन का विचार है कि गरमियों में कारखानों में कम कार्य होना चाहिए और दूसरे मौसमों में काम तेजी से होना चाहिए।

जलवायु और वनस्पति

वनस्पति जलवायु और भूमि पर निर्भर रहती है। वर्षा, गरमी, और वायु पौधे के लिए आवश्यक वस्तुएँ हैं। पौधे अपनी पत्तियों के द्वारा हवा से अपना भोजन ले लेते हैं और उनकी जड़ें पृथ्वी से जल खींचती हैं। पानी और हवा पौधे के लिए बहुत जरूरी हैं

किन्तु रोशनी और धूप भी कुछ कम जरूरी नहीं हैं। रोशनी के द्वारा ही हवा और पानी पौधे के लिए भोजन बन जाता है। भिन्न-भिन्न जलवायु में भिन्न-भिन्न जाति के पौधे पनपते हैं किन्तु पौधे अपने अनुकूल जलवायु के सिवाय दूसरे प्रकार के जलवायु में भी उत्पन्न हो सकते हैं। हाँ जलवायु में बहुत अधिक अन्तर न होना चाहिए।

पौधा अधिक गरमी और ठंड में बिल्कुल नष्ट नहीं हो जाता। क्योंकि रेगिस्तान और ध्रुवों में भी पौधे उगते हैं। गरम देशों में पौधे खूब घने और बहुतायत से उत्पन्न होते हैं और ठंडे देशों में पौधे बिखरे हुए और कम उत्पन्न होते हैं। कुछ पौधे ऐसे होते हैं जो पकने के समय तेज धूप चाहते हैं इसलिए ये अधिकतर गरम देशों में उत्पन्न किए जाते हैं और यदि ठंडे देशों में ये पौधे उत्पन्न किए जाते हैं तो केवल गरमी में। पौधे के लिए सूखी हवा हानिकारक है क्योंकि वह पौधे का रस सुखा देती है। यही कारण है कि प्रकृति ने उन देशों में जहाँ हवा शुष्क होती है पौधों पर एक प्रकार का गोंद या पत्तियों के स्थान पर काँटे उत्पन्न कर दिए हैं जिससे कि सूखी हवा पौधे का अधिक रस न सुखा सके।

वनस्पति

वनस्पति दो प्रकार की होती है। सघन वन तथा घास के मैदान। जिस प्रदेश में घास अथवा वन नहीं होते उसे रेगिस्तान कहते हैं।

प्रत्येक देश की औद्योगिक उन्नति में जंगलों का विशेष स्थान रहता है।* बहुत से धंधे (कागज, दियासलाई, लाख, फर्नीचर, खिलौने, वार्निश इत्यादि) जंगलों पर ही निर्भर रहते हैं। इसके

* वनों से क्या लाभ हैं इसका पूरा हाल वन प्रदेश नामक अध्याय में देखिये।

अतिरिक्त वनों से हमें बहुत-सी आवश्यक चीजें मिलती हैं। वनों से यह लाभ तो है ही परन्तु सबसे बड़ा लाभ यह है कि वनों के कारण वर्षा अधिक होती है, नदियों में बाढ़ नहीं आती, मैदानों के कुओं में पानी रहता है, वन आस पास के तापक्रम (Temperature) को कम कर देते हैं। बहुत से पशु पक्षी वनों में रहते हैं जिनकी खाल इत्यादि उपयोगी होती है। जिस भूमि पर वन खड़ा होता है वह उपजाऊ बन जाती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जंगल मनुष्यों के लिए बड़े लाभ की वस्तु है और उनका मनुष्य जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि मनुष्य समाज के जीवन पर जंगलों का बहुत प्रभाव पड़ा है परन्तु खेती की पैदावार का तो उसके जीवन पर और भी अधिक प्रभाव है। खेती के द्वारा ही मनुष्य को अपना भोजन मिलता है और खेती से ही औद्योगिक कच्चा माल प्राप्त होता है। कौनसी फसल कहाँ पैदा हो सकती है यह भूमि और जलवायु पर निर्भर है और खेती की पैदावार पर ही बहुत कुछ मनुष्य अवलम्बित रहते हैं।

मनुष्य के जीवन पर जीव-जन्तुओं का प्रभाव

संसार में अगणित जीव-जन्तु पाये जाते हैं। मनुष्य भी इनके साथ ही रहता है अतः उसको इनके द्वारा लाभ और हानि दोनों ही पहुँचा करते हैं। कुछ पशु-पक्षी तो ऐसे हैं जिनके बिना मनुष्य का काम ही नहीं चल सकता; उनको हम मित्र कहेंगे। दूसरे वे जो मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं, उन्हें हम शत्रु कहेंगे। आगे दोनों प्रकार के जन्तुओं का विवरण दिया जाता है।

शत्रु जीव-जन्तु

शेर, भेड़िया, चीता तथा अन्य जंगली जानवर तो मनुष्य के शत्रु हैं ही। परन्तु बहुत प्रकार की मक्खियाँ तथा कीड़े, जो

बीमारी फैलाते हैं, वे भी मनुष्य के कम शत्रु नहीं हैं। हिन्दोस्तान में प्रति वर्ष मलेरिया, प्लेग, हैजा, तथा रोगों के कारण न जाने कितने मनुष्यों की मृत्यु होती है। ये सब रोग कुछ कीड़ों का ही प्रसाद है। यदि इन कीड़ों को छोड़ भी दिया जावे तो भी ऐसे बहुत से कीड़े हैं जो पेड़ों और फसलों को नष्ट करते हैं। गन्ना, कपास, गेहूँ, रबर, चाय, अंगूर और कहवा की पैदावार बहुत से देशों में केवल इन कीड़ों के कारण ही कम हो गई है। संसार में सबसे अधिक अंगूर की शराब बनाने वाला फ्रांस फायलौक्सैरा (Phylloxera) नामक कीड़े के कारण भयंकर विपत्ति में फंस गया था। लोगों का तो यहाँ तक विचार था कि अब अंगूर की यहाँ पैदावार हो ही नहीं सकती, परन्तु वैज्ञानिकों ने दूसरी अंगूर की बेल उत्पन्न की जिस पर कीड़े का असर नहीं होता। यही नहीं सुअर, बन्दर, चूहे, खरगोश तथा और जानवरों से भी खेती को बहुत हानि होती है।

मित्र जीव जन्तु

किन्तु संसार में ऐसे भी जीव जन्तु हैं जिनके बिना मनुष्य का जीवन अत्यन्त कठिन हो जावे। गाय, बैल, घोड़ा, गदहा, ऊँट, हाथी मनुष्य के कार्यों में सहायता देते हैं। गाय और भैंस हमें दूध, घी और मक्खन देती है और बैल, घोड़ा, भैंसा खेती बारी तथा बोझा ढोने और गाड़ियों के खींचने में सहायक होते हैं। भेड़, बकरी और ऊँट से मनुष्य को खाने, और पहनने की वस्तुएँ मिलती हैं। ऊँट तो रेगिस्तान के रहने वालों का सबसे बड़ा सहायक है। इनके अतिरिक्त रेशम के कीड़ों से हमें सुंदर रेशम मिलता है। मनुष्य समाज की उन्नति में इन सबका मुख्य भाग रहा है। यद्यपि रेल तथा मोटरों के कारण सवारी के लिए पशुओं का महत्व घट गया है परन्तु जहाँ रेल और अच्छी सड़कें नहीं हैं वहाँ आज

भी वे बड़े काम के हैं और खेती तो आज भी बिना पशुओं की सहायता के नहीं हो सकती।

अभ्यास के प्रश्न

(१) आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत किन किन बातों का अध्ययन करना आवश्यक है ?

(२) यह कहना कि "मनुष्य अपने निवासस्थान की उपज है" कहाँ तक ठीक है ?

(३) मनुष्य के जीवन पर उसकी परिस्थिति का क्या प्रभाव पड़ता है ?

(४) खेती करने वाली जातियाँ स्वभावतः शान्त, शिकारी जातियाँ कलह प्रिय और औद्योगिक जातियाँ परिवर्तन पसंद करने वाली क्यों होती हैं ?

(५) धरातल की बनावट का मनुष्य पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(६) जलवायु का मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(७) जलवायु का खेती-बारी और उद्योग-धंधे पर कैसे प्रभाव पड़ता है ?

(८) जलवायु और इमारतों का क्या सम्बन्ध है ?

(९) जलवायु का व्यापारिक मार्गों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(१०) मनुष्य जीवन पर जीव-जन्तुओं का कितना प्रभाव पड़ता है ?

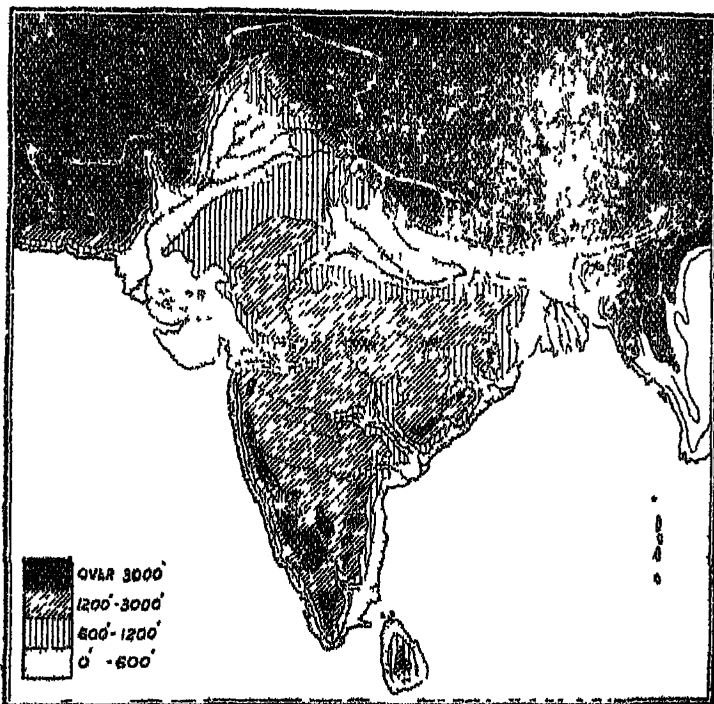
(११) वनस्पति का मनुष्य जीवन पर प्रभाव बतलाइये।

(१२) भौगोलिक परिस्थिति किसे कहते हैं और उसका मनुष्य के रहन सहन, पेशे तथा कार्यक्षमता पर कैसा प्रभाव पड़ता है ?

दूसरा अध्याय

भारतवर्ष की प्रकृति (Physical Conditions of India)

भारतवर्ष के प्राकृतिक भाग



भारतवर्ष एक विशाल देश है। यहाँ समतल मैदान, गगनचुम्बी ऊँचे पर्वत, नदियों की घाटियाँ, विस्तृत मरुभूमि, सघन वन सभी

प्रकार के प्रदेश देखने को मिलते हैं। किन्तु पृथ्वी की बनावट के अनुसार इस देश को चार भागों में बाँट सकते हैं।

(१) हिमालय का पहाड़ी प्रदेश जो उत्तर में स्थित है।

(२) गंगा और सिंध का मैदान जो गंगा के डेल्टा से सिंध के डेल्टा तक फैला हुआ है।

(३) दक्षिण का पठार जो मैदानों के दक्षिण में है।

(४) तटीय मैदान जो दक्षिण पठार के पूर्व और पश्चिम में है।

पर्वतीय प्रदेश

दक्षिण पठार के उत्तर-पूर्व में जो प्रदेश है और जो आज हिमालय का पर्वतीय प्रदेश तथा गंगा के मैदान के नाम से प्रसिद्ध है किसी समय समुद्र में नीचे छिपा हुआ था। जिस समय दक्षिण पठार ज्वालामुखी के विस्फोट के कारण लावा से ढक गया, उसी समय पृथ्वी के धरातल में ऐसा भयंकर परिवर्तन हुआ कि जिससे उत्तर के छिछले समुद्र का धरातल ऊँचा उठ कर संसार के सब से ऊँचे पर्वत में परिणित हो गया। इस नवीन पर्वत श्रेणी से नदियों ने प्रतिवर्ष अनन्त राशि में मिट्टी तथा रेता ला ला कर इस पिछले समुद्र को पाटना आरम्भ कर दिया और धीरे धीरे इस विस्तृत देश को उन्होंने संसार के सब से अधिक उपजाऊ मैदानों में परिणित कर दिया।

उत्तर का विशाल हिमालय पर्वत संसार भर के पहाड़ों से अधिक ऊँचा है। उसकी पर्वत श्रेणियाँ पामीर से आरम्भ होती हैं। इस उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में हिमालय की केवल एक ही श्रेणी नहीं है। वास्तव में हिमालय पर्वत प्रायः तीन समानान्तर श्रेणियों से बना है। मैदान के किनारे वाली श्रेणी मैदान की तरह ही मिट्टी, बालू, और कंकड़ की बनी है। यह श्रेणी अधिक ऊँची नहीं है। इसे शिवालिक के नाम से पुकारते हैं। इसके उत्तर में

दूसरी श्रेणी है जो पचास साठ मील चौड़ी और ६००० से १२,००० फ़ीट तक ऊँची है। शिवालिक तथा इस श्रेणी के बीच में खुले मैदान हैं। दूसरी श्रेणी के उत्तर में हिमालय की तीसरी श्रेणी है जो सब से अधिक ऊँची है। इस श्रेणी की औसत ऊँचाई बीस हज़ार फ़ीट है। हिमालय की प्रसिद्ध चोटियाँ गौरीशंकर, किंचिंगचिंगा और धौलागिरि इत्यादि श्रेणियाँ इसी में हैं। इस श्रेणी की कई चोटियाँ साल भर तक बरफ़ से ढकी रहती हैं। इस श्रेणी के दर्रे भी १६,००० से १८,००० फ़ीट तक ऊँचे हैं इस कारण इनको पार कर के तिब्बत के पठार में जाना बहुत दुष्कर है। मार्ग अत्यन्त दुर्गम हैं। केवल पगडंडियाँ मात्र होती हैं। मनुष्य अथवा पशु का तनिक भी पैर फिसलने पर हज़ारों फीट गहरे गड्ढों में गिरने की आशंका प्रतिक्षण बनी रहती है। नदियाँ भयंकर तथा अत्यन्त गहरी कंदराओं में होकर बहती हैं जिन्हें रस्सों के पुल से पार करना पड़ता है। यही कारण है कि हिमालय उत्तर भारत तथा तिब्बत में एक अभेद्य दीवार की भाँति खड़ा है और किसी प्रकार का आवागमन तथा व्यापार कठिन है। हिमालय की अभेद्य दीवार ने भारतवर्ष को अपने पड़ोसी-देशों से सर्वथा पृथक् कर दिया।

किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि हिमालय से इस देश को कोई लाभ नहीं है। सच तो यह है कि हिमालय का हमारे देश के आर्थिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हिमालय का भारत के जलवायु पर बहुत असर है। भारत के उत्तरी भाग में जो वर्षा होती है उसका मुख्य कारण हिमालय पर्वत ही हैं। मानसून इन पहाड़ों से टकरा कर सारा पानी उत्तर के मैदानों में गिरा देती हैं। यदि उत्तर में हिमालय की पर्वत श्रेणियाँ न होतीं तो मानसून हवायें उत्तर भारत को पार करके चली जातीं और वह सूखा रह जाता। केवल हिमालय से ही लाभ नहीं है वरन् उसका ढाल इस तरह का है कि जो नदियाँ उत्तर तिब्बत से निकलती हैं

वे भी दक्षिण की ओर मुड़कर भारत को जल देती हैं इस प्रकार जो वर्षा भारतवर्ष की ओर होती है और जो भारतवर्ष की सीमा के बाहर होती है उस सब का लाभ भारत को ही मिलता है। हिमालय से निकली हुई नदियों पर ही हमारे देश का मुख्य धंधा खेती निर्भर है। हिमालय पर बर्फ जमी रहने के कारण इनसे निकली हुई नदियों में गर्मी में भी पानी रहता है जिससे कि खेती की सिंचाई होती है।

हिमालय उत्तर की अत्यन्त ठंडी हवाओं को रोक लेते हैं नहीं तो उन ठंडी हवाओं के कारण खेती को बहुत हानि पहुँचती।

इसके अतिरिक्त इन पहाड़ों पर जो बहुमूल्य लकड़ी, घास, जड़ी-बूटियाँ, छाल, फल, गोंद, लाख इत्यादि पदार्थ अनन्त राशि में पाये जाते हैं उनका बहुत से धंधों में कच्चे पदार्थ के रूप में उपयोग होता है। (हिमालय की वन सम्पत्ति के विषय में वन प्रदेश के अध्याय में विस्तार पूर्वक लिखा गया है)। जो कुछ भी हिमालय की वन-सम्पत्ति के विषय में ज्ञात है उससे यह तो कहा ही जा सकता है कि प्रकृति ने इन वनों में अटूट सम्पत्ति भर दी है।

हिमालय के पश्चिम में हिन्दूकुश है जो दक्षिण की ओर अफगानिस्तान में चला गया है। पश्चिम में सुलेमान पहाड़ उत्तर से दक्षिण की ओर गया है। सुलेमान के दक्षिण में और सिन्ध के पश्चिम में किरथर पहाड़ की श्रेणियाँ समुद्र तक चली गई हैं।

हिमालय की पश्चिमी पर्वत की शाखायें नीची और उजाड़ हैं। नदियों ने इन पहाड़ियों को काट कर सुगम दर्रे बना दिये हैं। उनमें खैबर और बोलन के दर्रे प्रसिद्ध हैं। शताब्दियों से भारत का अपने पड़ोसी अफगानिस्तान से जो कारवाँ द्वारा व्यवहार होता आ रहा है वह इन्हीं दर्रों का प्रसाद है। इन दर्रों से केवल व्यापारी ही आते रहे हों यही बात नहीं है, भारत पर बाहर से जितने भी आक्रमण हुए वह इन्हीं दर्रों के द्वारा हुए।

पूर्व में ब्रह्मपुत्र नद के मोड़ के आगे हिमालय की शाखायें दक्षिण की ओर चली गई हैं। पटकाई, नागा तथा लुशाई पहाड़ियाँ आसाम को ब्रह्मा से अलहदा करती हैं। मनीपुर राज्य में होती हुई यह पहाड़ियाँ अराकान योमा से मिल जाती हैं। इनके अतिरिक्त जयन्तिया, खासी और गारो आसाम की घाटी को सिलहट और कछार से अलग करती हैं। हिमालय की पूर्वीय श्रेणियाँ सघन वनों से ढकी हुई हैं।

गंगा और सिंध के मैदान

हिमालय के दक्षिण में सिंध और गंगा का उपजाऊ मैदान है। यह संसार के अत्यन्त उपजाऊ प्रदेशों में से है। इसकी भूमि अत्यन्त उपजाऊ है इसलिए यह बहुत घना आबाद है। इसमें सिंध, उत्तरी राजपूताना, पंजाब, संयुक्तप्रान्त, बिहार, बंगाल और आधा आसाम सम्मिलित है। यह मैदान पश्चिम में अधिक चौड़ा और पूर्व में कम चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल ५ लाख वर्ग मील हैं। इस विशाल मैदान में पत्थर का कहीं नाम तक नहीं है। इस मैदान में खोदने पर १००० फीट तक कहीं चट्टानों का चिन्ह नहीं दिखलाई पड़ता है। राजपूताने का रेगिस्तान ४०० मील लम्बा और १०० मील चौड़ा है। अरावली पहाड़ ने इसे दो भागों में बाँट दिया है। दक्षिण-पूर्वी भाग गंगा का बेसिन है और उत्तर-पश्चिमी भाग सिंध का बेसिन है। वास्तव में यही भाग मरुभूमि है। यह मरुभूमि हवा द्वारा उड़ा कर लाई हुई बालू से बनी है। उत्तर में भाभर और तराई को छोड़कर शेष मैदान में गंगा और सिंध की सहायक नदियों का एक जाल बिछा हुआ है और उनके द्वारा लाई हुई मिट्टी से ही यह मैदान बने हैं।

उत्तर में जहाँ हिमालय की श्रेणियाँ आरम्भ होती हैं वहाँ पर असंख्य नदियों ने कंकड़ और पत्थर के ढेर इकट्ठा कर दिये हैं

यह पथरीले ढाल हिमालय पहाड़ के एक सिरे से दूसरे तक पाये जाते हैं। इन्हें भाभर कहते हैं। "भाभर" में चूना अधिक होने के कारण छोटी छोटी नदियों और नालों का पानी इस प्रदेश में सूख जाता है, केवल बड़ी नदियों का पानी ऊपर बहता है। इसलिए इस प्रदेश में खेती नहीं हो सकती है। "भाभर" ५ मील से लेकर २० मील तक चौड़ा है। खेती न हो सकने के कारण इस प्रदेश में प्रायः आबादी नहीं है।

"भाभर" के आगे जमीन मैदान में मिल जाती है। यहाँ पर वह पानी जो भाभर के अन्दर चला जाता है पृथ्वी पर प्रगट होता है। इससे यहाँ दलदल और नमी बहुत है। इस नम प्रदेश में लम्बी घास और सघन वन हैं परन्तु नमी अधिक होने के कारण यहाँ मलेरिया का अधिक प्रकोप रहता है और आबादी कम है। इसको "तराई" कहते हैं। पश्चिम में वर्षा कम होती है, इस कारण पश्चिम में मैदानों और "भाभर" के बीच में "तराई" नहीं है पूर्व तथा मध्य में तराई का प्रदेश है जो कि भाभर से अधिक चौड़ा है।

पठार

गंगा और सिंध के मैदानों के दक्षिण में पठार हैं। यह पठार का प्रदेश भारतवर्ष का सबसे प्राचीन भाग है। यह कई छोटे और बड़े पठारों में विभाजित है।

दक्षिण का पठार वास्तव में खुली हुई घाटियों का प्रदेश है यहाँ ढाल अधिक नहीं है और नदियाँ धीरे धीरे बहती हैं। कहीं कहीं पहाड़ियों का ढाल बहुत अधिक है परन्तु अधिकतर प्राय· द्वीप में वास्तविक पर्वत श्रेणियाँ नहीं मिलती।

गंगा और सिंध के दक्षिण में मालवा और बुंदेलखंड की जमीन धीरे धीरे ऊँची होती गई है। मालवा पठार में विन्ध्याचल

पर्वत ऊँचा और लम्बा है। यह बम्बई प्रान्त से आरम्भ होकर, मध्य प्रान्त, बघेल खंड, संयुक्त प्रान्त में होता हुआ बिहार उड़ीसा प्रान्त में सोना घाटी तक फैला हुआ है। यह पहाड़ गंगा के प्रदेश को नर्मदा, ताप्ती, और महानदी से मिलने वाले पानी को अलहदा करता है।

मालवा पठार के पश्चिम में अरावली की पहाड़ियाँ हैं। उत्तर-पूर्व की ओर ये पहाड़ियाँ पतली होती गई हैं और देहली के समीप ये पहाड़ियाँ समाप्त हो गई हैं। अरावली की पहाड़ियों को बनास, माही, और लूनी नदियाँ पार करती हैं। यह नदियाँ अरब सागर में जाकर गिरती हैं। चम्बल नदी पूर्व की ओर बहकर जमुना में मिल जाती है। माऊँट आबू इस पर्वत श्रेणी का सबसे ऊँचा स्थान है।

नर्मदा के दक्षिण को दक्षिण का ऊँचा पठार कहते हैं। यह त्रिभुजाकार है और सब तरफ से पहाड़ों से घिरा है। उत्तर में सतपुरा की श्रेणी है। नर्मदा की घाटी सतपुरा और विन्ध्या को अलग करती है। सतपुरा की पर्वत श्रेणी में महादेव की पहाड़ियाँ सबसे ऊँची हैं जिस पर पंचमढ़ी है। सतपुरा की पहाड़ियाँ पूर्व में छोटा नागपुर तक फैली हुई हैं। सतपुरा में सब नदियाँ गहरी घाटियों में होकर बहती हैं। सतपुरा के दक्षिण में ताप्ती की घाटी है। नर्मदा और ताप्ती की चौड़ी घाटियों के मैदानों में लावा से उत्पन्न हुई मिट्टी पाई जाती है जो उपजाऊ है।

पठार के पश्चिमी किनारे पर पश्चिमी घाट तथा पूर्वी किनारे पर पूर्वी घाट स्थित हैं। पश्चिमी घाट एक अभेद्य दीवार की भाँति पठार के पश्चिमी किनारे पर खड़ा है। इसमें से होकर आने-जाने का मार्ग केवल कुछ दर्रों में से होकर जाता है। इनमें "भोर घाट" और "थाल घाट" मुख्य हैं। पश्चिमीय घाट तथा समुद्र में अधिक

अन्तर नहीं है। इस लिए पश्चिमीय तट का मैदान बहुत पतली पट्टी की भाँति है। घाट के पश्चिमीय ढाल से निकल कर अरब सागर में गिरने वाली नदियों की संख्या बहुत अधिक है किन्तु वे बहुत छोटी हैं। जो नदियाँ पश्चिमीय घाट के पूर्वी ढाल से निकलती हैं वे लम्बी हैं और उनकी घाटियाँ चौड़ी हैं तथा उनके मुहाने बड़े हैं।

पूर्वी घाट पश्चिमीय घाट की भाँति ऊँचा और एक सा नहीं है। बहुत से स्थानों पर नदियों ने इस पर्वत श्रेणी को काट कर अपने डेल्टे बना लिए हैं। इन पहाड़ों और समुद्र के बीच में एक नीचा मैदान है जो पश्चिमी समुद्र तट के मैदान के समान है। केवल अन्तर इतना ही है कि पूर्वी तटीय मैदान अधिक चौड़े और विस्तृत हैं पूर्वी घाट नीचे और बहुत टूटे फूटे हैं इस कारण यहाँ मार्ग आसानी से बनाये जा सकते हैं। पूर्वी घाट दक्षिण में नीलगिरी पहाड़ियों द्वारा पश्चिमी घाट से जुड़े हुए हैं।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि नर्मदा और ताप्ती की घाटियों में बहुत बड़े और उपजाऊ मैदान हैं। नर्मदा के मैदान जबलपुर से हरदा तक ३०० मील की लम्बाई में फैले हुए हैं। इस नदी की घाटी १२ मील से लेकर ३५ मील तक चौड़ी है। ताप्ती के मैदान की लम्बाई १५० मील और चौड़ाई ३० मील है। ताप्ती की सहायक अमरावती का मैदान भी १०० मील लम्बा और ४० मील चौड़ा है। परन्तु जो नदियाँ पूर्व को बहती हैं उनकी घाटियों में मैदान नहीं हैं। इन नदियों के अतिरिक्त प्रायद्वीप में ऐसी भी नदियाँ हैं जो गंगा और यमुना में आकर मिलती हैं।

भारतवर्ष के दक्षिण पर्वतों में नीलगिरी का पहाड़ मुख्य है इसी पर उटकमंड स्थित है। पालघाट नदी के दक्षिण में नीलगिरी पर्वत के समान ही अनामलाई का पठार भी है। इनके सिवाय और

भी पठार हैं जो छोटे छोटे हैं और जिनके किनारे के पास की भूमि बहुत नीची है। इन पहाड़ों को बने बहुत समय नहीं हुआ इस कारण नदियाँ अब भी अपनी घाटियाँ बना रही हैं।

तटीय मैदान

दक्षिण पठार चारों ओर मैदान से घिरा है, उत्तर में गंगा और सिंध का मैदान, पूर्व में गंगा का मैदान तथा पूर्व का तटीय मैदान, दक्षिण में पूर्व का तटीय मैदान तथा पश्चिम में पश्चिम का तटीय मैदान है।

पूर्वीय घाट और बंगाल की खाड़ी के बीच में कारोमंडल का चौड़ा विस्तृत उपजाऊ समतल तटीय मैदान है। पश्चिमी घाट और समुद्र का तटीय मैदान तंग है और मालाबार के नाम से प्रसिद्ध है।

भिन्न भिन्न भागों में पाई जाने वाली मिट्टी

भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है, इस कारण यहां बहुत तरह की मिट्टी पाई जाती है। हम यहाँ उन मिट्टियों के विषय में लिखेंगे जो कि देश में मुख्यतः पाई जाती हैं।

लाल मिट्टी

यह मिट्टी लाल होती है क्योंकि इसमें लोहा मिला होता है। यह मद्रास, मैसूर, दक्षिण पूर्व बम्बई, हैदराबाद और मध्यप्रान्त के पूर्व में तथा छोटा नागपुर, उड़ीसा और बंगाल के दक्षिण में पाई जाती है। यह मिट्टी बहुत प्रकार की चट्टानों से बनी है इस कारण यह गहराई और उर्वरा शक्ति में बहुत तरह की होती है। ऊँचे मैदानों में पाई जाने वाली लाल मिट्टी उर्वरा नहीं होती किन्तु जो नीचे मैदानों में पाई जाती है वह बहुत अच्छी होती है। इस मिट्टी में नाइट्रोजन (Nitrogen), फासफोरिक एसिड

(Phosphoric Acid) और वनस्पति का अंश कम होता है, परन्तु पोटाश (Potash) और चूना यथेष्ट मिलता है।

काली मिट्टी

काली मिट्टी सारे दक्षिण ट्रैप तथा मद्रास के कुछ जिलों में पाई जाती है। दक्षिण ट्रैप में यह मिट्टी २००,००० वर्ग मील में फैली हुई है। बम्बई प्रान्त के अधिकांश भाग, सारा बरार, तथा मध्यप्रान्त और हैदराबाद के पश्चिमी भाग में यह मिट्टी फैली हुई है। यह मिट्टी भी कई तरह की होती है। पहाड़ियों के ढालों और ऊँचे मैदानों पर पाई जाने वाली काली मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं होती परन्तु टूटी हुई पहाड़ियों के बीच की तथा मैदानों की मिट्टी बहुत उर्वरा और गहरी होती है।

बरसात के दिनों में यह मिट्टी चिकनी और लिबलिबी हो जाती है और गरमी के दिनों में इसमें बहुत दरारें पड़ जाती हैं। यह मिट्टी अधिकतर बहुत उपजाऊ होती है। मालवा के कुछ मैदानों में जहाँ यह मिट्टी पाई जाती है लगभग २००० वर्षों से बिना सिंचाई, खाद और भूमि को विश्राम दिए खेत जोते और बोये जाते हैं। मिट्टी में धातुओं की अधिक मिलावट होने से रंग काला हो गया है। इस मिट्टी पर कपास बहुत पैदा होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि वर्षा के उपरान्त यह मिट्टी गोंद के समान लिबलिबी हो जाती है और सूखने पर इतनी कड़ी हो जाती है कि सूरज की किरणें जमीन के अन्दर का पानी भाप बनाकर उड़ा नहीं पातीं। इसी कारण काली मिट्टी के प्रदेश में बिना अधिक बरसात और सिंचाई के ही कपास उत्पन्न हो सकती है।

इस मिट्टी में फासफोरिक-एसिड (Phosphoric Acid) व नाइट्रोजन (Nitrogen) कम होता है परन्तु पोटाश (Potash) और चूना (Lime) यथेष्ट मिलता है।

लैटेराइट (Laterite) मिट्टी

यह मिट्टी विशेष कर मध्यभारत (ग्वालियर, कोटा, भूपाल, पन्ना और रीवां राज्यों में) पूर्वी और पश्चिमी घाटों के समीप और कहीं कहीं आसाम और बर्मा में भी पाई जाती है। यह मिट्टी भी कई प्रकार की होती है। पहाड़ियों पर पाई जाने वाली मिट्टी बहुत कम उपजाऊ और घाटियों में पाई जाने वाली उपजाऊ होती है। इस मिट्टी में फासफोरिक एसिड (Phosphoric Acid), पोटाश (Potash) और चूना कम होता है किन्तु वनस्पति का अंश यथेष्ट होता है।

नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी (Alluvial Soil)

हिन्दोस्तान में यह मिट्टी सब से अधिक उपजाऊ है। यह मिट्टी दक्षिण प्रायद्वीप के दोनों तटों पर मिलती है। पूर्वी तट की ओर गोदावरी, कृष्णा और कावेरी के डेल्टों में यह मिट्टी पाई जाती है। इन मैदानों में चावल और गन्ने की फसलें खूब पैदा होती हैं। दक्षिण की इस मिट्टी में फासफोरिक एसिड (Phosphoric Acid), नाइट्रोजन (Nitrogen) और वनस्पति का अंश कम है किन्तु पोटाश (Potash) और चूना यथेष्ट है।

उत्तर में सिंध और गंगा के विस्तृत मैदानों में यह मिट्टी फैली हुई है। अधिकांश सिंध, उत्तर राजपूताना, पंजाब, संयुक्तप्रान्त, बिहार, बंगाल और आधे आसाम में यही मिट्टी पाई जाती है। इस मिट्टी वाले प्रदेश का क्षेत्रफल तीन लाख वर्ग मील है। इसी मिट्टी की गहराई का आज तक पता नहीं चला परन्तु बोरिंग करने से यह पता चलता है कि १६०० फीट तक यह मिट्टी मिलती है। इस प्रदेश की मिट्टी हिमालय से निकलने वाली नदियों द्वारा हिमालय की चट्टानों को काट कर लाई गई है।

सिंध और गंगा के मैदानों की मिट्टी में नाइट्रोजन (Nitrogen) कम है। पोटाश (Potash) काफी है और फासफोरिक एसिड (Phosphoric Acid) यद्यपि बहुत नहीं है परन्तु बहुत कम भी नहीं है।

ऊपर के विवरण से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दोस्तान में पाई जाने वाली भिन्न भिन्न मिट्टियों में नाइट्रोजन एक ऐसा मुख्य तत्व है जिस की कमी है।

"खेतों को खाद की आवश्यकता"

यह भी सभी जानते हैं कि खेत पर लगातार फसलें उत्पन्न करने से खेत की मिट्टी कमजोर हो जाती है और यदि उसमें खाद न डाला जावे तो उस खेत में पैदावार कम होने लगती है। इसका कारण यह है कि पौधा कुछ तत्वों को मिट्टी से ले लेता है अतएव मिट्टी से कुछ तत्व फसल उत्पन्न करने के कारण कम हो जाते हैं। किन्तु यह ध्यान में रखने की बात है कि हर एक पौधा भिन्न भिन्न तत्वों को मिट्टी से लेता है। यही नहीं, प्रत्येक पौधा कुछ तत्वों को भूमि में बढ़ाता भी है। फसल उत्पन्न करने से जब भूमि के कुछ तत्व कमजोर हो जाते हैं तो भूमि में अच्छी फसल उत्पन्न नहीं होती। अतएव भूमि के उस तत्व को पूरा करने तथा उसको अधिक उपजाऊ बनाने के लिए खाद देना पड़ता है। खाद देकर तो किसान भूमि को उपजाऊ बनाता ही है परन्तु प्रकृति भी भूमि के खोये हुए तत्वों को फिर पूरा करने में सहायक होती है।

हिन्दोस्तान में लगभग हर एक प्रकार की मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी है। यदि किसान खेत की जोत हर एक या दो साल पर बिना कुछ बोये छोड़ दें तो हवा से भूमि नाइट्रोजन स्वयं ले लेगी। इसीलिए कहा गया है कि खेतों की उपज को कम न होने

देने के लिए खेतों को आराम मिलना चाहिए। आराम मिलने का मतलब यह है कि कुछ समय तक खेत पर कोई भी फसल न पैदा की जावे। परन्तु जिन देशों में भूमि कम होती है और जो घने आबाद होते हैं उनमें खेती की पैदावार की इतनी ज्यादा माँग होती है कि खेतों को आराम नहीं मिलता और उन पर लगातार फसलें पैदा की जाती हैं। यही हाल हिन्दोस्तान का है। यहाँ की जमीन को भी आराम बहुत कम मिलता है।

एक दूसरा तरीक़ा जमीन को जल्दी कमजोर न होने देने का यह है कि फसलों को हेर फेर के साथ पैदा किया जावे। फसलों के हेर फेर (Rotation of Crops) का मतलब यह है कि एक ही फसल लगातार एक ही खेत में न बोई जावे। यदि इस बार एक फसल बोई गई है तो दूसरी बार उसी फसल को पैदा न करके दूसरी फसल पैदा की जावें। इन फसलों के अदल बदल को "फसलों का हेर फेर" कहते हैं। इससे लाभ यह होता है कि जमीन के जिस तत्व को एक फसल कम करती है उसी को दूसरी फसल कम नहीं करेगी। इसके अतिरिक्त फसलें कुछ तत्वों को भूमि में बढ़ाती भी हैं। अतएव फसलों के हेर फेर से यह लाभ भी होता है कि जिस तत्व को एक फसल ने कम किया है उसे दूसरी फसल बढ़ा देगी।

इतने पर भी खेत की जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए खाद देने की जरूरत पड़ती है। क्योंकि हिन्दुस्तान की मिट्टी में नाइट्रोजन (जो कि एक मुख्य तत्व है) की कमी है इस कारण वही खाद अधिक उपयोगी सिद्ध होगी जिसमें नाइट्रोजन हो।

अब हम यहाँ उन खादों का नाम और विवरण देते हैं जिनका हिन्दोस्तान में प्रयोग होता है या हो सकता है।

गोबर और कूड़े की खाद

खाद के सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखनी चाहिए। भारतीय

किसान उसी खाद को अपने खेतों में डाल सकता है जो कि बिना खर्च किये अथवा नाम मात्र का खर्च करने से गाँव में ही तैयार हो सकती है। क़ीमती खाद को वह खेतों में डाल ही नहीं सकता। हाँ, यदि फसल बहुत कीमती हो तो वह अवश्य मोल लेकर क़ीमती खाद डाल सकता है। इस दृष्टि से गोबर और कूड़े की खाद बहुत महत्वपूर्ण है। गोबर, पशुओं का पेशाब, कूड़ा इत्यादि वस्तुओं की बहुत अच्छी खाद बन सकती है। प्रत्येक किसान गाय और बैल पालता है अतएव यदि किसान अपने पशुओं के गोबर, पेशाब, और घर के कूड़े की खाद बनावे तो उसे खेती के लिए काफी खाद तैयार हो सकती है। और इस खाद के बनाने में थोड़ी सी मेहनत के सिवा कुछ खर्च भी नहीं पड़ता। किन्तु वर्ष में आठ महीने तो किसान गोबर कंडे बनाकर उन्हें जला डालते हैं, केवल बरसात के दिनों में जबकि कंडे बनाये ही नहीं जा सकते तब उस गोबर का खाद बनाया जाता है। गोबर जैसी मूल्यवान खाद को जलाने से देश को बहुत अधिक हानि होती है, परन्तु दूध इत्यादि के औटने में धीमी आँच की ज़रूरत होने के कारण तथा गाँवों में लकड़ी की कमी होने के कारण किसान गोबर को जला डालता है। साथ ही यह भी न भूलना चाहिए कि भारतवर्ष में गोबर की ही खाद सबसे अच्छी और सबसे सस्ती है। अतएव यदि हम चाहते हैं कि किसान गोबर को जलाना छोड़कर उसको खेतों में डालें तो हमें उसकी इस आदत के विरुद्ध प्रचार करना होगा और गाँवों की ऊसर भूमि पर जंगल (Forest plot) बनाकर वहीं लकड़ी उत्पन्न करनी होगी, तभी यह समस्या हल हो सकती है।

मल की खाद (Nightsoil)

अभी तक मल की खाद का उपयोग भारतवर्ष में बहुत कम होता है, क्योंकि किसान उसको छूना पसन्द नहीं करते। परन्तु अब

शहरों के पास तरकारी इत्यादि की खेती में यह खाद दी जाने लगी है। गाँवों में तो इस खाद का कोई उपयोग ही नहीं होता। पहले तो किसान उसको छूना नहीं चाहते दूसरे गाँवों में पाखानों के न होने से और उसको इकट्ठा करने का कोई प्रबन्ध न होने से चाहने पर भी उसका उपयोग नहीं हो सकता। यदि गाँवों में पिट लैट्रिन (pit-latrines) का प्रचार हो जावे तो यह खाद गाँव में भी मिल सकती है। किसान जो इस खाद का उपयोग करने से हिचकते हैं उसका मुख्य कारण उसकी बदबू और गंदगी है। इन खराबियों को दूर करने के लिए दो तरीके हैं। मल को सुखाकर उसको पीस कर बारीक कर दिया जावे और उस पाउडर का खाद के रूप में उपयोग हो। (हिन्दुस्तान में कुछ म्युनिसपैलटियाँ पाउडर बनाती हैं)। दूसरा तरीका यह है कि मल को बड़े बड़े तालाबों में इकट्ठा किया जावे और उसमें से हवा को पास (pass) करके उसकी दुर्गन्ध नष्ट कर दी जावे। किन्तु यह कार्य बड़े-बड़े शहरों की म्युनिसपैलटियाँ ही कर सकती हैं।

हरी खाद (Green manures)

कुछ पौधे ऐसे होते हैं कि जिनको पैदा करके उन्हें खेत में ही जोत कर मिला देने से खेत उपजाऊ हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि सन की फसल पैदा करके उसको खेत में ही जोत दिया जावे तो जमीन जोरदार हो जावेगी (सन को जमीन में जोतकर मिलाते समय जमीन में नमी होनी चाहिये) परन्तु सन की खाद बनाने में एक नुकसान यह है कि किसान को फसल से कुछ भी न मिलेगा।। ढैंचा और मूंगफली की पत्तियों की भी हरी खाद बनाई जा सकती है।

खली की खाद (Oil cakes)

यह तो सभी जानते हैं कि खली की भी बहुत अच्छी खाद

तैयार होती है। किन्तु आजकल तो खली की कीमत इतनी अधिक है कि किसान उसकी खाद बनाकर खेत में नहीं डाल सकता। हिन्दोस्तान से हर साल लगभग चौदह करोड़ रुपये का तिलहन विदेशों को जाता है। यदि यह तिलहन विदेशों को न जाकर यहाँ के ही कारखानों में पेरा जाता तो और लाभों के साथ एक लाभ यह भी होता कि खली देश में ही रहती और वह बहुत सस्ती बिकती। किसान उस दशा में उसका उपयोग खाद के लिए कर सकता था।

एमोनियाँ सलफेट (Sulphate of Ammonia)

एमोनिया सलफेट जमशेदपूर ताता के लोहे के कारखाने में तथा बंगाल, बिहार, और उड़ीसा की कोयले की खानों मे मिलता है। परन्तु एमोनिया सफलेट की क़ीमत इतनी ज्यादा है कि फलों और गन्ने की पैदावार को छोड़कर और किसी फसल के लिए उसका उपयोग लाभदायक नहीं हो सकता। यही कारण है कि किसान इसका बहुत कम उपयोग करते हैं।

हड्डी की खाद

हड्डी को पीस कर बहुत अच्छी खाद तैयार होती है। हिन्दोस्तान से हर साल लगभग एक करोड़ रुपए से कुछ कम की हड्डी तथा हड्डी का चूरा विदेशों को चला जाता है। इस कारण इसका उपयोग किसान नहीं कर पाता। हड्डी का खाद उस जमीन के लिए बहुत लाभदायक है जहाँ फासफेट (Phosphates) की कमी है।

मछली की खाद

मछली की खाद भी बहुत उपयोगी होती है परन्तु हिन्दोस्तान में मछली इतनी अधिक नहीं मिलती कि उसका उपयोग खाद के रूप में किया जा सके। हाँ बम्बई और मद्रास प्रान्त के समुद्र तट के किनारे अवश्य इसका उपयोग खाद के रूप में होता है।

ऊपर के विवरण से यह तो पता चल ही गया होगा कि भारतीय किसान खेतों को बहुत कम खाद देता है। गोबर की खाद के सिवाय और सब खादें इतनी कीमती हैं और इतनी कम हैं कि उनका हिन्दोस्तान में अधिक उपयोग हो ही नहीं सकता। गोबर को किसान जला डालता है अतएव खाद की समस्या तभी हल हो सकती है जब कि उसको गोबर जलाने से रोका जावे।

भारतवर्ष की जलवायु

भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है उसकी लम्बाई दो हजार मील से कुछ कम है और लगभग उतनी ही उसकी चौड़ाई है। इतने बड़े देश में एक सी ही जलवायु नहीं हो सकती। यही कारण है कि कहीं हमें वनस्पति से लहलहाते प्रदेश नजर आते हैं तो कहीं उजाड़ खड और मरुभूमि दिखलाई पड़ती है। व्यापारिक भूगोल के विद्यार्थी को देश के जलवायु की जानकारी आवश्यक है क्योंकि हमारे देश का सबसे महत्वपूर्ण धंधा खेती जलवायु पर ही निर्भर है।

इस देश में जलवायु के विचार से वर्ष दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। पहला सूखे महीने, जिनमें वर्षा बिलकुल नहीं होती दूसरे वर्षा के महीने। दिसम्बर से लेकर मई तक भारतवर्ष में सूखे दिन होते हैं और इन दिनों में पृथ्वी से समुद्र की ओर चलने वाली हवाओं की प्रधानता रहती है। इन सूखी हवाओं के चलने से तापक्रम (Temperature) बहुत घटता और बढ़ता रहता है। जून से दिसम्बर तक यहाँ बरसात के दिन होते हैं। उन दिनों हवा समुद्र से पृथ्वी की ओर चलती है। इस कारण हवा में नमी अधिक रहती है और तापक्रम का उतार चढ़ाव अधिक नहीं होता। जिन महीनों में वर्षा होती है वे भी दो भागों में बांटे जा सकते हैं—गर्मी के बरसात के महीने और सर्दी के

बरसात के महीने। सर्दी के बरसात के महीनों (दिसम्बर से

फरवरी तक) में बादल नहीं होते किन्तु उत्तर भारत में तूफान

आया करते हैं। यह तूफान या तो सिन्ध नदी के पश्चिम से उठते हैं अथवा रूम सागर (Mediterranean Sea) से चलते हैं। इन तूफानों के कारण उत्तर पश्चिम भारत में २ इंच से ५ इंच तक वर्षा हो जाती है और पहाड़ी प्रान्तों में बर्फ भी गिरती है। किन्तु इन महीनों में दक्षिण प्रायद्वीप तथा बर्मा में आधे इंच से अधिक वर्षा नहीं होती है। तूफान आने से पहले टैम्परेचर (तापक्रम) कुछ ऊँचा हो जाता है परन्तु तूफान आने पर नीचा हो जाता है। तूफान के साथ कोहरा और पाला भी पड़ता है और रात्रि को टैम्परेचर बहुत कम हो जाता है।

गरमी के महीनों (मई जून इत्यादि) में टैम्परेचर (तापक्रम) ११०" फै० से १२०" फै० तक चढ़ जाता है। भारत की भूमि पर गरमी अधिक होने से हवा हिन्द महासागर से हिन्दोस्तान की ओर चलने लगती है। मई के अन्त में हिन्द महासागर (Indian-Ocean) की यह ट्रेड हवायें आगे बढ़कर अरब सागर और बंगाल की खाड़ी पर फैल जाती हैं। यह हवायें हिन्दोस्तान के पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तटों के पास जून के मध्य में पहुँचती हैं। अरब समुद्र का यह मानसून पश्चिमी घाटों को पार करके प्रायद्वीप (Indian-Peninsula) में घुसती हैं। पश्चिमी घाट को पार करते हुए मानसून पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल पर खूब वर्षा करता है। अरब-समुद्र-मानसून की एक शाखा उत्तर में काठियावाड़, सिंध और राजपूताना की ओर चली जाती है। लेकिन इन अत्यन्त गरम प्रान्तों में टैम्परेचर (तापक्रम) बहुत ऊँचा होता है और कोई पहाड़ मानसून को रोकने के लिए न होने के कारण यह हवा बिना वर्षा किए ही चली जाती है। बंगाल खाड़ी की मानसून आसाम और बर्मा की पहाड़ियों से बड़े जोरों से टकराती हैं और यही कारण है कि वहाँ पानी बहुत बरसता है। आसाम में पानी बरसा कर मानसून पश्चिम की ओर मुड़ती

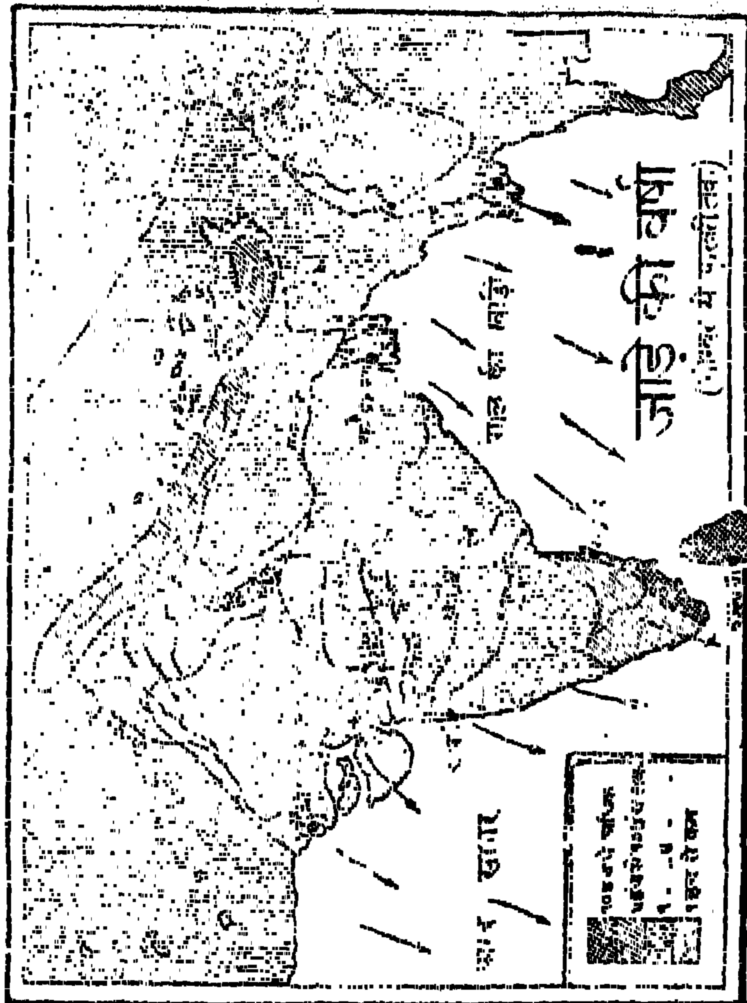
है और बंगाल पर पानी बरसाती है। उधर अरब समुद्र के मानसून की दूसरी शाखा मध्य भारत में से होती हुई बंगाल की खाड़ी के मानसून से आकर मिल जाती है फिर यह हवायें पश्चिम की ओर संयुक्त प्रान्त, और पंजाब पर पानी बरसाती हुई पश्चिम की ओर जाती हैं।

जुलाई और अगस्त के महीनों में उत्तर भारत में खूब वर्षा होती है। सितम्बर के मध्य में बरसात समाप्त हो जाती है। हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागों में वर्षा एक सी नहीं होती। पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल पर १२५'' इन्च वर्षा होती है, बर्मा के समुद्र तट पर भी लगभग इतनी वर्षा होती है। लेकिन अन्दर पानी कम हो जाता है। पश्चिमी घाट के पूर्वी ढाल पर केवल ४०'' इंच पानी बरसता है। बर्मा के भीतरी भाग में २०'' इंच से ४०'' इंच तक वर्षा होती है। दक्षिण प्रायद्वीप में १५'' इंच से ३०'' इंच तक वर्षा होती है। मध्य प्रान्त, मध्य भारत और संयुक्त प्रान्त में वर्षा का औसत २५'' इंच से लेकर ५०'' इंच तक है। बंगाल के पूर्वी भाग तथा आसाम में लगभग ६५'' इंच पानी बरसता है। शेष बंगाल में ५५'' इंच और बिहार में ५०'' इंच पानी होता है। उत्तर भारत में वर्षा पूर्व से पश्चिम की ओर घटती जाती है। पंजाब में पानी बहुत कम हो जाता है, पूर्वी पंजाब में २०'' और पश्चिम में केवल ६'' इंच ही पानी बरसता है।

जाड़ों की वर्षा

अक्टूबर से दिसम्बर तक मानसून उत्तर से दक्षिण की ओर चलता है। क्योंकि उत्तर के मैदानों में टैम्प्रचर बहुत गिर जाता है। दिसम्बर के अन्त में यह मानसून समुद्र को पार करता है। उत्तर से लौटते समय यह हवा कारोमंडल कोस्ट, लोअर बर्मा, तथा बंगाल की खाड़ी के कुछ द्वीपों पर पानी बरसाती है। पश्चिम में लौटने

वाली हवा (मानसून) मालाबार कोस्ट को पानी देती है। जाड़े



के दिनों में मदरास के यह जिले १९'' और मदरास के दक्षिण में

७" इंच के लगभग पानी पाते हैं। हैदराबाद और बम्बई के दक्षिण में ४" इंच के लगभग, लोअर बर्मा में ६" इंच और अपर बर्मा में ७" इंच के लगभग वर्षा होती है। बिहार, उड़ीसा, और संयुक्त प्रान्त में भी इन दिनों थोड़ी वर्षा हो जाती है।

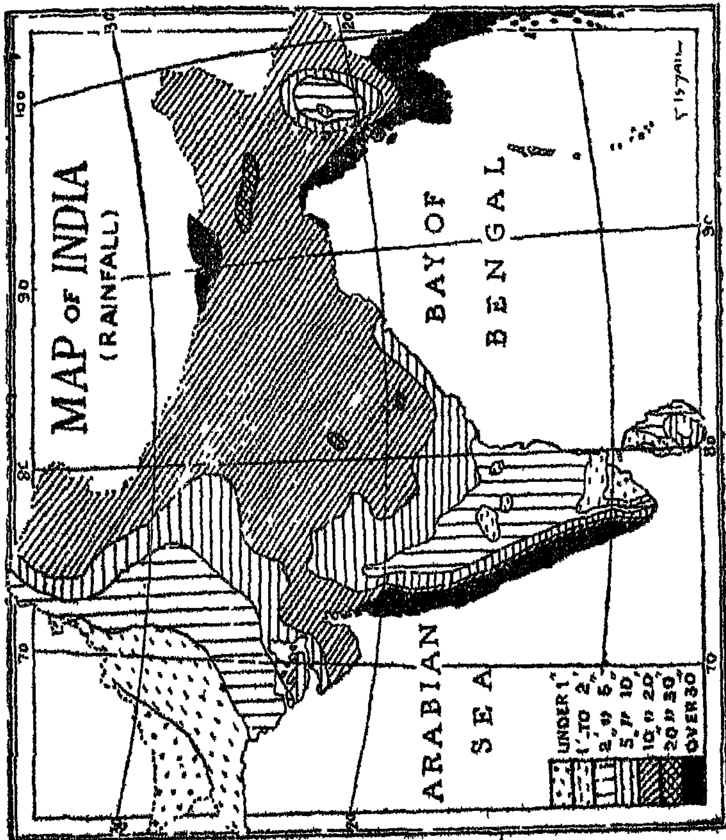
वर्षा की विशेषताएँ

वास्तव में यदि देखा जावे तो मदरास के समुद्रतट के प्रदेश को छोड़ कर सारे भारतवर्ष में गरमियों में ही वर्षा होती है। हिन्दोस्तान में वर्षा का मौसम बहुत निश्चित है। समय निश्चित होते हुए भी पानी की दृष्टि से वर्षा बहुत अनिश्चित है। किसी वर्ष वर्षा औसत से अधिक और किसी वर्ष औसत से कम होती। कभी-कभी यह घटा बढ़ी औसत से ५० प्रतिशत तक हो जाती है। हिन्दोस्तान में वर्षा की केवल यही विशेषता नहीं है वरन् एक दूसरी विशेषता यह भी है कि पूर्व से पश्चिम की ओर वर्षा कम होती जाती है। राजपूताने के पश्चिम (जैसलमेर राज्य) और बलूचिस्तान में किसी वर्ष १" इंच वर्षा भी नहीं होती यद्यपि वहाँ का औसत वर्ष में ३" या ४" इंच का है। इसके विपरीत आसाम के पूर्व में कुछ स्थानों की औसत वर्षा ५०० इंच है। संक्षिप्त से हिन्दोस्तान की वर्षा की तीन विशेषतायें हैं १. यहाँ वर्षा मौसमी है, २. वर्षा पूर्व से पश्चिम की तरफ कम होती जाती है ३. वर्षा वर्ष भर में कितनी होगी यह बिलकुल अनिश्चित है, एक स्थान पर किसी वर्ष अधिक वर्षा और किसी वर्ष वर्षा बहुत कम होती है। वर्षा की ऊपर लिखी हुई विशेषताओं के कारण खेती की समस्या इस देश में कठिन हो जाती है और उसका हल केवल सिंचाई के साधनों को उपलब्ध करने से हो सकता है।

सिंचाई के साधन

भारतवर्ष खेतिहर देश है, खेती पर ही अधिकांश जनसंख्या

निर्भर है। खेती के लिए ठीक समय पर यथेष्ट पानी की आवश्यकता होती है ऐसा अनुमान किया जाता है कि हिन्दोस्तान में जहाँ



५०" या ५५" इंच या उससे अधिक वर्षा होती हो वहाँ सिंचाई की जरूरत नहीं होती। परन्तु जहाँ ५०" या ५५" इंच से कम वर्षा होती है वहाँ सिंचाई की आवश्यकता होती है। इस हिसाब

से पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल, बर्मा का समुद्री तट, आसाम और पूर्व बंगाल तथा हिमालय के तराई प्रान्त को छोड़ कर जहाँ वर्षा ५५" इंच से अधिक होती है सारे देश में सिंचाई की जरूरत पड़ती है। कुछ प्रदेश तो इतने सूखे हैं कि वहाँ सिंचाई के बिना तो कुछ उत्पन्न ही नहीं हो सकता।

यही कारण है कि हिन्दोस्तान में बहुत पुराने जमाने से कुओं, तालाबों और नहरों से सिंचाई की जाती रही है। सिंचाई के साधन ब्रिटिश सरकार के समय में ही उपलब्ध किये गए हों यह बात नहीं है, बहुत पुराने जमाने से हिन्दू राजाओं, मुसलमान बादशाहों, जमींदारों, तथा धनी व्यापारियों ने कुआँ, तालाब अथवा नहर निकलवाना अपना मुख्य कर्तव्य माना है। जिन प्रदेशों में बिना सिंचाई के खेती हो सकती है उनको छोड़ कर लगभग सारे देश में अकाल पड़ सकता है, इस कारण प्रत्येक प्रान्त में कोई न कोई सिंचाई का साधन अवश्य है। किन्तु सब प्रान्तों में सिंचाई के साधन एक से नहीं हैं। उत्तर पश्चिम भारत में नहरें, उत्तर भारत के मैदानों और मध्य प्रान्त तथा मध्य भारत में कुयें तथा दक्षिण प्रायद्वीप में तालाब और पहाड़ी बाँध सिंचाई के मुख्य साधन हैं। सिंचाई के साधनों की भिन्नता प्रत्येक प्रान्त की भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार भिन्न है।

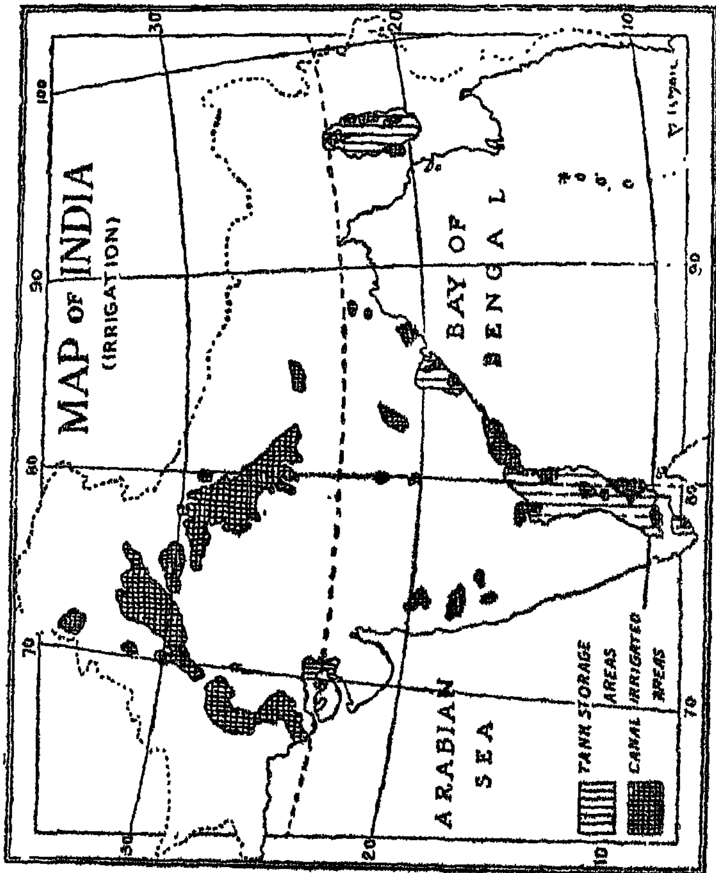
पंजाब, सिंध, सीमा प्रान्त (North-Western Frontier Province), संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी जिले खेती के लिए विशेषकर नहरों पर निर्भर हैं। उत्तर भारत की सारी नदियाँ हिमालय के ग्लेशियर (Glaciers) से निकलती हैं इस कारण गरमी के मौसम में भी जब भारत की भूमि पानी के लिए बहुत प्यासी होती है इन नदियों में पानी रहता है। इस कारण इन नदियों से निकली हुई नहरों से भी गरमियों के महीनों में जब खेती को पानी की आवश्यकता होती है तो पानी दिया जा सकता है। उत्तर भारत में

नहरें निकालने की दूसरी सुविधा यह है कि नदियों का यहाँ एक जाल सा बिछा हुआ है। इस कारण जिन जिलों में पानी की आवश्यकता हुई उन्हीं जिलों की समीपवर्ती नदियों से नहर निकाल ली गई। यही नहीं इन प्रान्तों में जमीन बिलकुल पथरीली या कंकरीली नहीं है। सारे उत्तर भारत के मैदान में नरम मिट्टी मिलती है इसलिए नहरों के खुदवाने और बनवाने में कठिनाई और खर्च बहुत नहीं पड़ता। उत्तर भारत के मैदानों में ऊसर और बंजर अथवा ऐसी भूमि बहुत कम है कि जिस पर खेती न होती हो इस कारण नहरों का पानी बहुत दूर तक बिना काम में लाए हुए बहता नहीं रहता, उसका अधिक से अधिक उपयोग होता है। क्योंकि नहरों के दोनों किनारों पर उपजाऊ भूमि होती है।

कुआँ भारतवर्ष में सिंचाई का मुख्य साधन है। इन प्रान्तों में भी जहाँ नहरें अथवा तालाब बहुत हैं कुओं का सिंचाई के लिए खूब उपयोग होता है। एक सबसे अच्छी बात कुयें के साथ यह है कि किसान अपने खेतों के पास थोड़े खर्च और परिश्रम से कुआँ खोद सकता है। हाँ यदि भूमि बहुत पथरीली होती है तो कुआँ बनवाने में भी बहुत खर्च पड़ता है जो कि एक साधारण किसान के बस के बाहर की बात होती है। कुयें अधिकतर संयुक्त प्रान्त बिहार, उड़ीसा, बंगाल के पश्चिमी भाग, मध्यप्रान्त और मदरास के उत्तरी सरकार में सिंचाई के लिए काम में लाए जाते हैं। वैसे तो ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ कुयें न हों परन्तु इन प्रान्तों में सिंचाई का मुख्य साधन कुयें ही हैं।

किन्तु कुयें की उपयोगिता उसके कम गहरे होने पर निर्भर है। सोते जितनी कम गहराई पर निकलेगा कुआँ सिंचाई के लिए उतना ही अधिक उपयोगी होगा, क्योंकि कुयें से पानी निकालने में उतना ही कम खर्च होगा। जिन प्रदेशों में वर्षा बहुत कम होती है वहाँ पानी बहुत गहराई पर मिलता है। यही कारण है कि राजपूताना

और पंजाब के पश्चिम में कुयें इतने गहरे हैं कि उनसे सिंचाई करना बहुत खर्चीला है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी प्रदेश हैं जहाँ पानी तो



साधारण गहराई पर ही मिल जाता है किन्तु जमीन पथरीली होने के कारण कुआँ खोदने में बहुत अधिक व्यय होता है। यही कारण

७ हिन्दोस्तान में सिंचाई की इतनी अधिक आवश्यकता क्यों पड़ती है ?

८—भारतवर्ष में सिंचाई के मुख्य साधन कौन कौन से हैं ?

९—उत्तर-पूर्व में नहरें क्यों सिंचाई का मुख्य आधार हैं ?

१०—दक्षिण भारत में तालाब ही सबसे अधिक उपयुक्त सिचाई का साधन क्यों है ?

११—कुआँ सिंचाई के लिए कौन कौन से प्रान्त में अधिक महत्वपूर्ण है और क्यों ?

१२—पंजाब की नहरों का पंजाब के उद्योग-धंधों, खेती-बारी और किसानों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

१३—संयुक्तप्रान्त में ट्यूब-वेल से कहाँ कहाँ सिचाई होती है और उनसे भविष्य में लाभ होने की आशा है ?

१४—सक्खर बाँध की नहरों का सिंध के आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

१५—कुओं का पानी नहरों के पानी से खेती के लिए अधिक लाभ-दायक सिद्ध होता है इसका क्या कारण है ?

तीसरा अध्याय

मुख्य फसलें

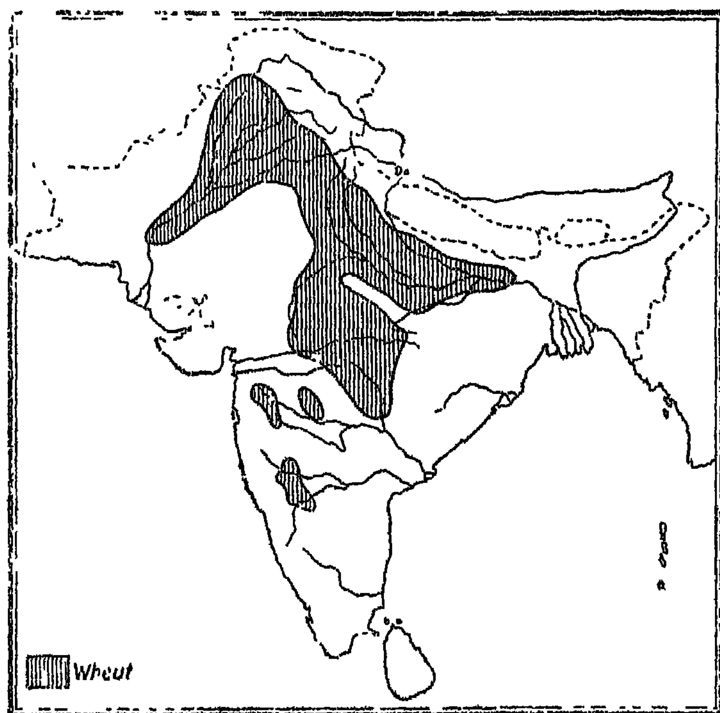
हिन्दोस्तान में नीचे लिखी मुख्य फसलें पैदा की जाती हैं

गेहूँ—अनाजों में गेहूँ सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। मनुष्य जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गेहूँ ही खाता है और गेहूँ अत्यन्त प्राचीन काल से उत्पन्न किया जाता है। यही कारण है कि गेहूँ को बहुत प्रकार के जलवायु में उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है।

गेहूँ मटियार भूमि में खूब उत्पन्न होता है, परन्तु अधिक कठोर भूमि पौधे के लिए हानि कारक सिद्ध होती है। गेहूँ के लिए नरम मटियार भूमि ही सबसे उत्तम मानी जाती है। इस अनाज के बोने के समय सर्दी और नमी होना आवश्यक है। परन्तु फसल पकने के समय तेज़ धूप भी उतनी ही आवश्यक है। यदि पकते समय गरमी न पड़े, अथवा वायु में किसी कारण से भी नमी आ जावे तो गेहूँ को हानि पहुँच जाती है। यह अनाज उन देशों में भी उत्पन्न हो सकता है जहाँ शीत अधिक पड़ती है। किन्तु पकने के समय गरमी और सूखी हवा आवश्यक है। बीज बोने के समय अथवा जब पौधा छोटा हो साधारण वर्षा लाभ दायक है परन्तु फसल कटने के समय वर्षा होना अत्यन्त हानि-कारक है।

भारतवर्ष में गेहूँ रबी की मुख्य फसल है। देश का कोई ऐसा भाग नहीं है जिसमें यह थोड़ा बहुत पैदा न होता हो किन्तु पंजाब, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, तथा मध्यभारत में इसकी पैदावार होती है। पंजाब की कैनाल-कालोनी तथा सक्खर बाँध से निकाली

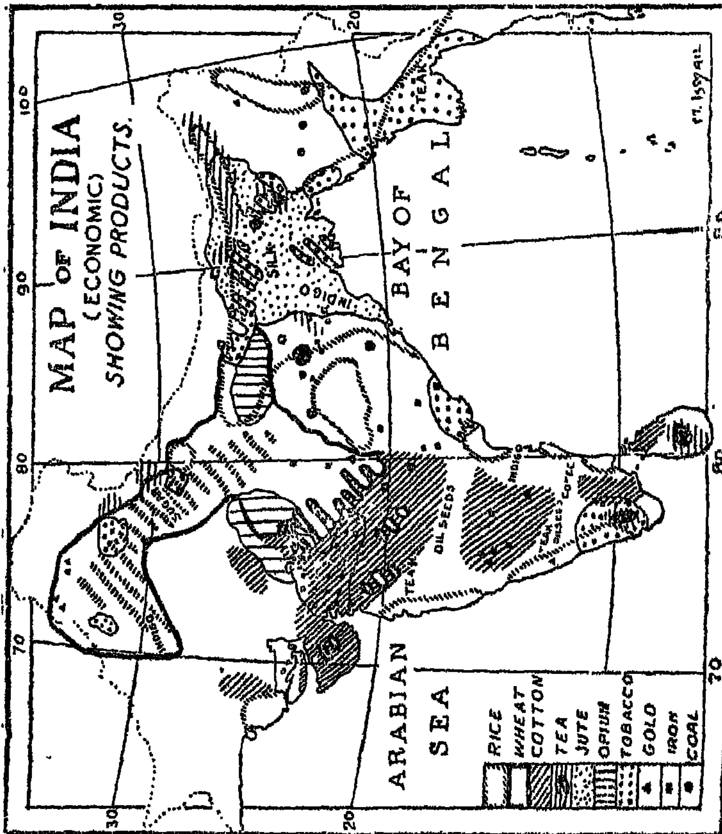
हुई नहरों द्वारा सींचे हुए सिंध के प्रदेश में गेहूँ बहुतायत से पैदा होता है।



नवम्बर के मध्य में गेहूँ बोया जाता है। इसकी तीन या चार बार सिंचाई होती है, और एप्रिल तथा मई में जब कि अनाज खूब पक जाता है फसल काट ली जाती है।

हिन्दोस्तान में दो तरह का गेहूँ होता है एक कड़ा और दूसरा नरम। कड़ा गेहूँ सूजी बनाने के, और नरम गेहूँ आटा बनाने के काम आता है। भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न जाति का गेहूँ उत्पन्न

किया जाता है किन्तु अब तो पंजाब, संयुक्त प्रान्त तथा मध्यप्रान्त में पूसा रिसर्च इंस्टिट्यूट द्वारा उत्पन्न किए गए अच्छे बीजों का



खूब प्रचार हो गया है और किसान अधिकतर उत्तम बीज ही बोते हैं।

संसार में भारतवर्ष गेहूँ उत्पन्न करने वाले प्रमुख देशों में से

है। अभी तक वह नियमित रूप से प्रतिवर्ष बहुत सा गेहूँ ब्रिटेन को भेजता रहा है। किन्तु पिछले वर्षों में गेहूँ का बाहर भेजा जाना अनिश्चित हो गया है। जिस वर्ष फसल अच्छी होती है उस वर्ष गेहूँ विदेशों को भेजा जाता है नहीं तो किसी किसी वर्ष केवल नाम मात्र को ही बाहर जाता है। देश में फसल खराब हो जाने पर गेहूँ बाहर से मँगाया भी जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि चालीस या पचास वर्षों के उपरान्त बाहर से बिना गेहूँ मँगाये हिन्दोस्तान का काम नहीं चलेगा।

भारतवर्ष में गेहूँ बाहर भेजने वाला मुख्य बन्दरगाह करांची है, क्योंकि वह पंजाब और सिंध जो कि मुख्यतः गेहूँ उत्पन्न करने वाले प्रान्त हैं उनके समीप है।

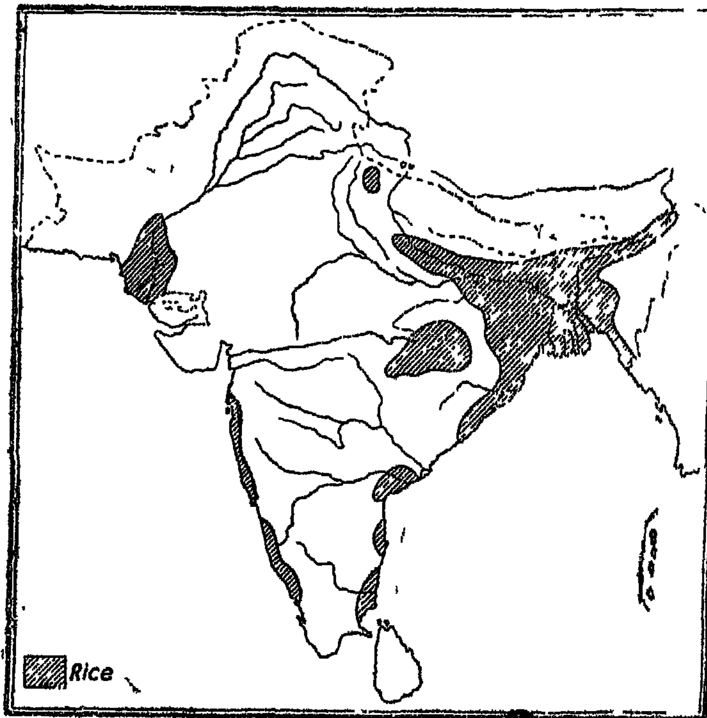
भारतवर्ष में गेहूँ का आटा बनाने का मुख्यतः धंधा ग्रामीण धंधा है। गाँवों की स्त्रियाँ प्रति दिन (यदि वे गेहूँ का आटा खा सकती हैं) हाथ की चक्की से आटा पीस लेती हैं। बड़े बड़े व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्रों में उदाहरण के लिए अम्बाला, लायलपूर, देहली, लाहौर, कानपूर तथा चंदौसी इत्यादि में अवश्य बड़ी बड़ी आटा पीसने की मिलें हैं। परन्तु आयल एंजिन तथा बिजली से चलने वाली चक्कियाँ शहर और कस्बों में बहुत हैं।

चावल

चावल उष्ण कटिबन्ध की पैदावार है, एशिया के पूर्वीय देशों में जहाँ मानसून से वर्षा होती है यह अत्यधिक उत्पन्न होता है। संसार में चावल पर निर्वाह करने वालों की संख्या सबसे अधिक है। एशिया के पूर्वीय देशों का तो यह मुख्य भोजन ही है।

चावल की फसल के लिए उर्वरा भूमि आवश्यक है। यही कारण है कि चावल अधिकतर नदियों के डेल्टों तथा उनकी घाटियों और मैदानों में उत्पन्न किया जाता है। क्योंकि नदियाँ प्रति वर्ष

नई मिट्टी लाकर इन खेतों में जमा कर देती हैं जिससे खेतों की उपज बढ़ जाती है। अच्छी भूमि के साथ साथ चावल के लिए



पानी और गरमी की खूब आवश्यकता होती है। यदि चावल के पौधे आरम्भ में पानी में डूबे रहें तो पैदावार अच्छी होती है। जिन प्रदेशों में वर्षा ६०" के लगभग और तापक्रम (Temperature) ८०° फै० तक रहता हो वह प्रदेश चावल की खेती के योग्य है। एक ही खेत से एक वर्ष में चावल की दो या तीन फसलें तक पैदा की जा सकती हैं। चावल की खेती दो प्रकार से होती

है। एक बीज बोकर दूसरे पौधे लगा कर। छोटी क्यारियों में चावल बो दिया जाता है और जब पौधा कुछ बड़ा हो जाता है तो उसे जड़ सहित उखाड़ कर खेत में रख देते हैं। चावल पहाड़ों पर भी उत्पन्न हो सकता है, किन्तु गरमी और अधिक वर्षा नितान्त आवश्यक है।

चावल उत्पन्न करने वाले देश बहुधा घने आबाद हैं। क्योंकि चावल की पैदावार प्रति एकड़ और अनाजों से अधिक होती है। चीन तथा अन्य पूर्वीय देशों में असंख्य जनसंख्या केवल चावल और कढ़ी पर ही निर्वाह करती है। किन्तु चावल गेहूँ की भाँति पुष्टिकर नहीं है।

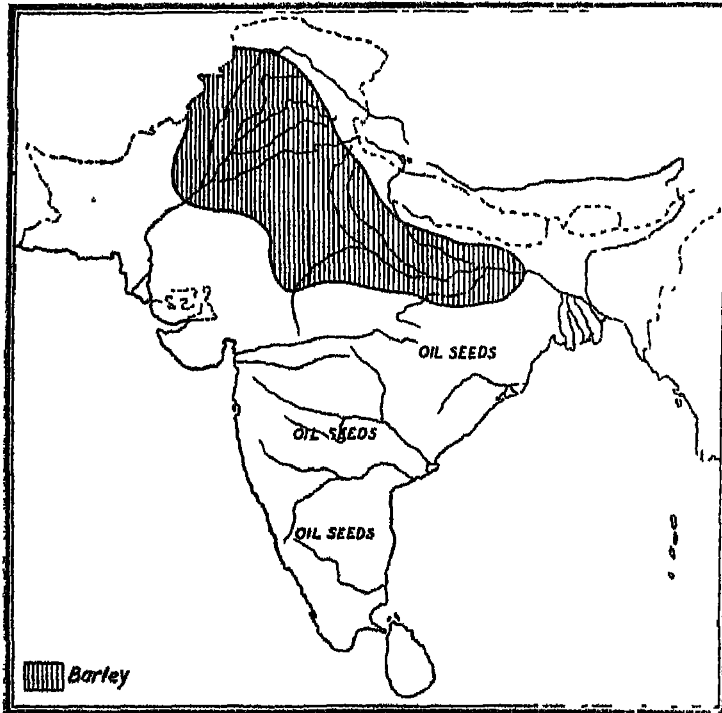
भूसा सहित चावल धान कहलाता है। धान को साफ करने में बहुत परिश्रम पड़ता है। गाँव में किसान हाथ से ही कूट कर धान साफ कर लेते हैं। किन्तु बंगाल, आसाम, तथा बर्मा में धान साफ करने और उन पर पालिश करने के लिए बहुत सी मिलें खुल गई हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि हाथ का कुटा हुआ चावल पालिश किए हुए मिल के चावल से अधिक पौष्टिक होता है। किन्तु शहरों में अधिकतर पालिश किया हुआ चावल ही खाया जाता है।

भारतवर्ष के पूर्वीय प्रान्तों में चावल अधिक उत्पन्न होता है तथा वहाँ के निवासियों का यह मुख्य भोजन है। बंगाल, आसाम, बर्मा, मद्रास तथा पश्चिमीय घाट चावल अधिक उत्पन्न करते हैं। इनके अतिरिक्त सिंध का डेल्टा भी चावल उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त है। यों तो संयुक्त प्रान्त, विहार, बम्बई, पंजाब, मध्य-प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में भी थोड़ा चावल उत्पन्न होता है किन्तु वहाँ की यह मुख्य पैदावार नहीं है।

जौ

जौ गेहूँ की ही जाति का अनाज है। किन्तु यह और अनाजों

से अधिक कठोर होता है। साधारण भूमि पर भी जौ की अच्छी फसल उत्पन्न हो सकती है। जौ गरमी और सरदी खूब सहन कर



सकता है। जौ की कुछ जातियाँ ऐसी हैं जो कि उत्तरी ध्रुव के समीप भी उत्पन्न हो सकती हैं और कुछ जातियाँ गरम देशों में भी उत्पन्न होती हैं। वैसे भूमध्यसागर (Mediterranean) के जलवायु में जौ खूब पैदा होता है। पकने के समय वर्षा जौ के लिए हानिकर है।

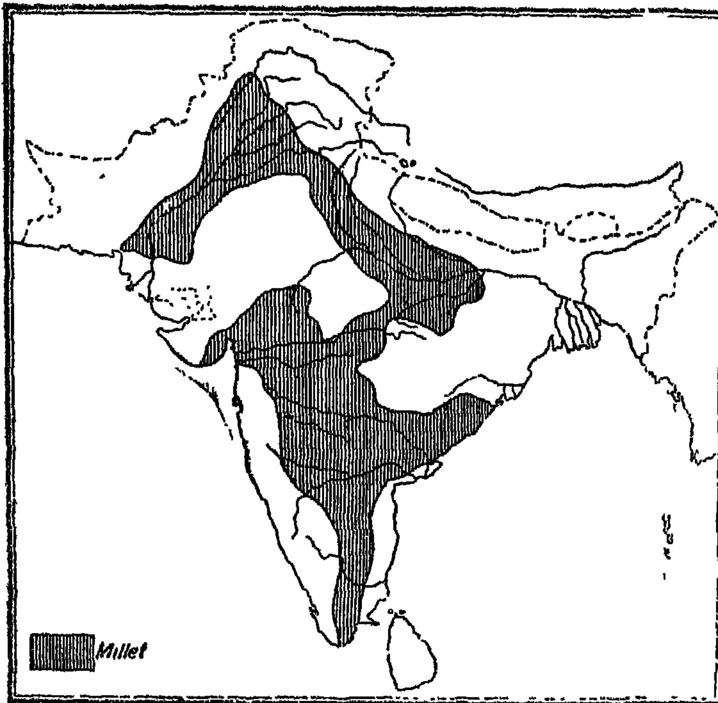
हिन्दोस्तान में जौ की खेती अधिकतर पंजाब, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त तथा मध्यभारत में होती है। गेहूँ के साथ ही जौ की भी फसल पैदा की जाती है। जौ ग्रामों में निर्धन जनता का मुख्य भोज्य पदार्थ है। यहाँ अधिकतर जौ का उपयोग खाने के लिए ही होता है न कि शराब बनाने में। हिन्दोस्तान से बहुत कम जौ विदेशों को भेजा जाता है।

जुआर

हिन्दोस्तान के उन हिस्सों की जहाँ पानी कम बरसता है यह मुख्य फसल है। किसी किसी प्रदेश में किसानों के लिए जुआर गेहूँ से भी अधिक महत्वपूर्ण है। जुआर की फसल अनाज के अतिरिक्त किसानों के पशुओं को चारा भी देती है। पूर्वीय प्रान्तों को छोड़ कर जुआर सभी प्रान्तों में उत्पन्न होती है। जुआर कमजोर जमीन पर भी पैदा होती है। जुआर की फसल को अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु रेगिस्तान में यह अच्छी तरह पैदा नहीं हो सकती। चावल पैदा करने वाले प्रान्तों को छोड़ कर जुआर अन्य प्रान्तों के निर्धन किसानों का मुख्य भोजन है।

बाजरा

हिन्दोस्तान के अत्यन्त सूखे प्रदेशों का बाजरा मुख्य आधार है। बाजरा के लिए रेतीली भूमि चाहिए। बाजरे की फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती इस कारण पंजाब, राजपूताना तथा मध्यभारत के लिए यह सर्वथा उपयुक्त है। इन प्रान्तों के अतिरिक्त संयुक्तप्रान्त के पश्चिमी भाग तथा मध्यप्रान्त में भी बाजरा खूब पैदा होता है।



चना

चना रबी की फसल है और गेहूँ, जौ और सरसों के साथ भी बोया जाता है। चने के लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती किन्तु बोते समय भूमि में नमी होना आवश्यक है। चने के लिए मटियार भूमि आवश्यक है। संयुक्तप्रान्त, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रान्त, तथा दक्षिण में यह खूब उत्पन्न होता है।

मकई

मकई की फसल के लिए लम्बी गरमी तथा कई बार वर्षा

आवश्यक है। मकई की अच्छी पैदावार के लिए रेत मिली हुई मटियार भूमि की आवश्यकता होती है। एक साथ अधिक वर्षा मकई के छोटे पौधे को हानि पहुँचाती है परन्तु पौधे के बड़े होने पर अधिक वर्षा से उसे हानि नहीं पहुँचती। संसार में सबसे अधिक मकई उत्पन्न करने वाले संयुक्तराज्य अमेरिका में मकई का उपयोग पशुओं को खिलाकर मोटा करने के लिए होता है क्योंकि वहाँ माँस का धंधा बहुत उन्नति कर गया है। किन्तु हिन्दोस्तान में तो वह केवल निर्धनों का मुख्य भोजन है।

दालें

भोज्य पदार्थों में दालों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष में दाल भोजन का एक आवश्यक अंग है। अरहर, चना, मटर, मसूर, मूँग तथा उर्द मुख्य दालें। अधिकतर ऊष्ण कटिबन्ध तथा शीतोष्ण कटिबन्ध में उत्पन्न होती हैं। दालों को पैदा करने से खेतों की मिट्टी अधिक उपजाऊ हो जाती है क्योंकि दालों के पौधे मिट्टी में नाइट्रोजन जमा कर देते हैं।

तरकारी और फल

हिन्दोस्तान में अधिकतर हिन्दू शाहकारी हैं और जो लोग कि मांस खाते भी हैं उन्हें भी इतना कम मांस खाने को मिलता है कि वे यथार्थ में मांसाहारी नहीं कहे जा सकते। जो लोग कि मांस खा सकते हैं उन्हें भी मांस कभी कभी खाने को मिलता है। इस कारण हिन्दोस्तान में तरकारी और फल अत्यन्त आवश्यक भोज्य पदार्थ हैं। प्रत्येक भारतीय घर में तरकारी (शाक) किसी न किसी रूप में प्रति दिन खाई जाती है।

तरकारियों को उत्पन्न करने के लिए बहुत उर्वरा भूमि, यथेष्ट खाद और जल की आवश्यकता होती है। किन्तु तरकारियों के शीघ्र ही खराब हो जाने के कारण शहर तथा समीपवर्ती कस्बों

के लिए ही तरकारियाँ उत्पन्न की जाती हैं। क्योंकि भारतवर्ष में शीत-भण्डार (Cold Storage) की सुविधायें नहीं हैं और रेलें भी तरकारियों को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने के लिए कुछ विशेष प्रबन्ध नहीं करतीं। संयुक्त राज्य अमेरिका में तरकारियों और फलों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने के लिए प्रति-दिन प्रातःकाल फल और तरकारी की ऐक्सप्रेस ट्रेन दौड़ती हैं। यही कारण है कि भारत में तरकारियों की पैदावार शहरों के आस पास ही होती है। जैसे जैसे गमनागमन के साधन अधिक उपलब्ध होते जावेंगे वैसे ही वैसे तरकारी का व्यापार बढ़ता जावेगा और जहाँ की मिट्टी और जलवायु तरकारी उत्पन्न करने के उपयुक्त है वहाँ इसकी पैदावार बढ़ती जावेगी।

फलों को उत्पन्न करने का धंधा भारतवर्ष में अभी उन्नत दशा में नहीं है। यदि प्रयत्न किया जावे और फलों की माँग बढ़ जावे तो लगभग सब प्रकार के फल इस देश में उत्पन्न किए जा सकते हैं। क्योंकि यहाँ सब तरह की भूमि मौजूद है और गरम और सर्द जलवायु भी पाई जाती है। यही कारण है कि हिन्दोस्तान में जहाँ आम और केला इत्यादि ऊष्ण कटिबन्ध के फल उत्पन्न होते हैं वहाँ सेव, अंगूर, इत्यादि शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate zone) के भी फल उत्पन्न होते हैं।

हिन्दोस्तान में कुछ ऐसे स्थान हैं जहाँ फलों की पैदावार वैज्ञानिक ढंग से बड़ी मात्रा में की जाती है। पेशावर के समीप का प्रदेश, क्वेटा, चमन, तथा बिलोचिस्तान के अन्य भाग, पंजाब की कूलू और काँगड़ा की घाटियाँ, संयुक्तप्रान्त का कुमायूं पहाड़ी प्रदेश, मध्यप्रान्त तथा आसाम के वह भाग जहाँ नारंगियाँ और संतरे उत्पन्न होते हैं और बम्बई का कोणकण प्रदेश जो कि आम बहुतायत से उत्पन्न करता है फल उत्पन्न करने में मुख्य हैं। आम, तथा बेर देश के बहुत बड़े भाग में पाये जाते हैं।

नारंगी और संतरा

नारंगी और संतरे के लिए नवम्बर से एप्रिल तक साधारण सर्दी की आवश्यकता होती है। हिन्दोस्तान में केवल सिलहट, सिक्किम, देहली और नागपूर तथा मध्यप्रान्त के कुछ अन्य जिले ही ऐसे स्थान हैं जहाँ कि संतरे के बड़े बड़े बग़ीचे हैं। हिन्दोस्तान में संतरे बहुत बढ़िया नहीं होते। संयुक्त राज्य अमेरिका के बीज रहित संतरे यहाँ उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु अभी तक उस जाति के संतरे उत्पन्न करने का प्रयत्न नहीं किया गया।

केला

केला ऊष्ण कटिबन्ध का फल है। अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के कुछ जंगली प्रदेशों में तो केला इस बहुतायत से उत्पन्न होता है कि वह वहाँ का मुख्य भोज्य पदार्थ है। केला प्रति एकड़ और सब फलों से अधिक उत्पन्न होता है। हिन्दोस्तान में बंगाल, आसाम और दक्षिण में केला बहुतायत से उत्पन्न होता है। केला पौष्टिक होता है, उसको सुखाकर उसका आटा तैयार किया जाता है, परन्तु अभी तक लोग आटे को बहुत कम खाते हैं।

सेव, नासपाती और अंगूर

ये फल शीतोष्ण-कटिबन्ध की जलवायु में बहुत उत्पन्न होते हैं। सेव का वृक्ष बड़ा होता है और एक फसल में एक मन से डेढ़ मन तक फल उत्पन्न करता है। अंगूर बहुत स्वादिष्ट फल है, अधिकतर इसका उपयोग शराब बनाने में होता है। अंगूर की खेती के लिए गरमी बहुत जरूरी है। जिन देशों में सितम्बर तक कड़ी गरमी पड़ती है वहाँ अंगूर की पैदावार बहुत अच्छी होती है। अंगूर की खेती सूखी भूमि पर भी हो सकती है क्योंकि

अंगूर की जड़ें ज़मीन के अन्दर चली जाती हैं और वहाँ से जल प्राप्त करती हैं। अंगूर के लिए अधिक जल हानिकारक है। वर्षा अधिक होने से अंगूर की पैदावार अधिक नहीं हो सकती। यही कारण है कि भारतवर्ष में अंगूर अधिक उत्पन्न नहीं होता क्योंकि यहाँ गरमियों में वर्षा अधिक होती है। सेब, नासपाती और अंगूर इस देश में पेशावर, चमन, काँगड़ा और कूलू की घाटियों में तथा काश्मीर में ही उत्पन्न होता है।

आलू

आलू भारतवर्ष की एक मुख्य तरकारी है। इसकी पैदावार आसाम, बंगाल, संयुक्तप्रान्त, पंजाब तथा दक्षिण में बहुत होती है। यह शीत काल में उत्पन्न होता है। आलू के लिए गेहूँ उत्पन्न करने वाली भूमि उपयुक्त है। यदि उसमें कुछ रेता अधिक हो तो और भी अच्छी पैदावार होगी। आलू को सिंचाई की बहुत आवश्यकता होती है। इतनी सिंचाई और किसी भी तरकारी की फसल के लिए जरूरी नहीं है। जर्मनी, आयरलैंड तथा अन्य योरोपियन देशों में आलू मुख्य भोजन पदार्थ है। यहाँ तक कि यदि वहाँ आलू की फसल मारी जावे तो अकाल पड़ जाता है। योरोप में आलू का आटा और शराब भी बनाते हैं किन्तु भारतवर्ष में तो वह केवल तरकारी के रूप में ही खाया जाता है।

गन्ना

गन्ना एक प्रकार की घास है जिससे कि शक्कर तैयार होती है। प्रति वर्ष फूलने के पहले ही गन्ना काट लिया जाता है परन्तु जड़ छोड़ दी जाती है। उसी जड़ से दूसरे वर्ष भी फसल तैयार हो सकती है। इस प्रकार एक बार गन्ना बोने से वह सात वर्ष तक फसल दे सकता है। परन्तु पेंड़ी से तैयार की गई फसल कमज़ोर होती जाती है इस कारण दूसरे या तीसरे वर्ष फिर

नया गन्ना बोया जाता है। कहीं प्रति वर्ष नई फसल बोई जाती है। बीज की जगह गन्ने के छोटे छोटे टुकड़े करके खेत में रख दिए जाते हैं।

गन्ने की फसल के लिए गरमी की बहुत आवश्यकता है। लम्बी गरमियाँ गन्ने की फसल के लिए लाभदायक होती हैं। गन्ने का पौधा ७५° फै० और ८०° फै० गरमी में खूब पनपता है। केवल गरमी ही से फसल अच्छी नहीं हो सकती इसके लिए जल की भी बहुत आवश्यकता होती है। कम से कम ६०" इंच वर्षा तो इसके लिए आवश्यक है। जहाँ वर्षा ६०" इंच से कम होती है वहाँ सिंचाई करनी पड़ती है।

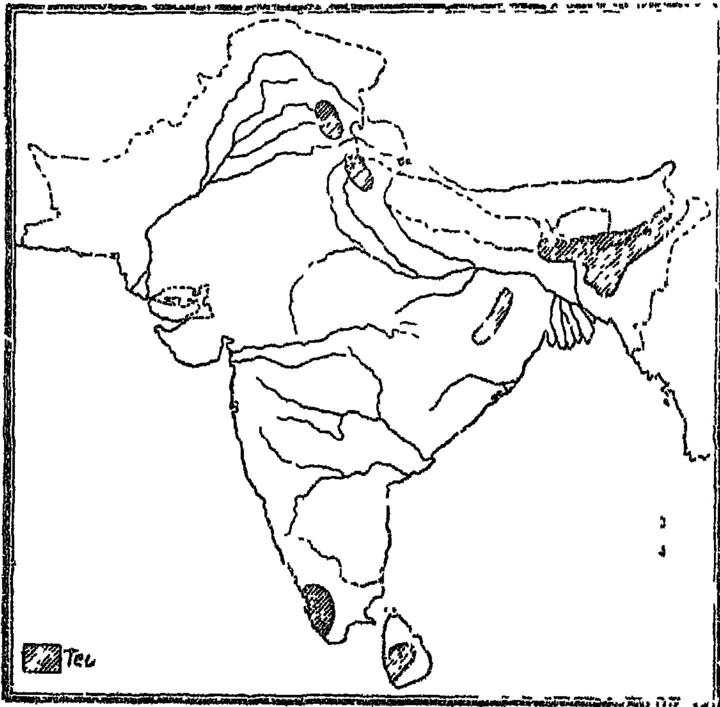
गन्ना मार्च और एप्रिल में बोया जाता है और फरवरी में काटा जाता है। अब शक्कर की मिलें बहुत खुल जाने से दो प्रकार की फसलें तैयार की जाती हैं। एक तो जल्दी पकने वाला गन्ना जो कि नवम्बर और दिसम्बर में तैयार हो जाता है दूसरा जो कि फरवरी, मार्च और एप्रिल में तैयार होता है। संसार में भारतवर्ष सबसे अधिक गन्ना उत्पन्न करता है। १९२९ में जबसे विदेशों से आने वाली शक्कर पर संरक्षण कर लग गया है तब से भारतवर्ष में सैकड़ों शक्कर के कारखाने खुल गए और गन्ने की पैदावार भी बहुत बढ़ गई।

गन्ना संयुक्तप्रान्त और बिहार में बहुत उत्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त बंगाल, पंजाब, मध्यप्रान्त और मध्यभारत में भी गन्ने की पैदावार होती है।

चाय

चाय एक प्रकार की झाड़ी की सूखी पत्ती है। सम्भवतः इसका मूल निवास स्थान चीन है। चीन में तो चाय का प्रचार बहुत पुराने समय से था किन्तु योरोप में इसका प्रवेश अठ्ठारहवीं सदी में हुआ और तबसे इसकी माँग बराबर बढ़ती जा रही है।

चाय का वृक्ष ऊष्ण कटिबन्ध में ही उत्पन्न हो सकता है। इसकी पैदावार के लिए गरमी और जल की बहुत आवश्यकता



है। परन्तु यदि जल वृक्ष की जड़ के पास देर तक रहे तो वृक्ष को हानि पहुँच जाती है। इस कारण चाय ढालू पृथ्वी पर ही अच्छी तरह पैदा हो सकती है। पहाड़ी प्रदेश की ढालू भूमि जहाँ वर्षा खूब होती हो चाय की पैदावार के लिए उपयुक्त है। चाय की खेती के लिए कम से कम ५४° फै० तथा अधिक से अधिक ८०° फै० गरमी की आवश्यकता है। अच्छी पैदावार के

लिए ६०'' इंच वर्षा ठीक है परन्तु यदि ढाल अच्छा हो तो अधिक वर्षा भी लाभदायक हो सकती है। चाय की खेती के लिए केवल जलवायु और भूमि ही महत्वपूर्ण नहीं है कुलियों की समस्या इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण है। कारण यह है, कि चाय की पत्तियाँ केवल हाथ से ही तोड़ी जा सकती हैं। इस कारण चाय की खेती में बड़ी संख्या में कुलियों की आवश्यकता होती है। जिन देशों में कुली सस्ते दामों पर नहीं मिल सकते वहाँ जलवायु के अनुकूल होने पर भी चाय की खेती नहीं हो सकती।

चाय की झाड़ी लगभग पाँच वर्षों में चाय उत्पन्न करने योग्य हो जाती है और ३० वर्ष तक पत्तियाँ देती रहती है। झाड़ी की ऊँचाई लगभग आठ फुट होती है। कोहरा और ठंडक पत्तियों को हानि पहुँचाती है परन्तु वृक्ष नष्ट नहीं हो सकता। चाय के लिए वनों को साफ करके निकाली हुई भूमि जिसमें वनस्पति का अधिक अंश मिला हो उपयोगी है।

चाय बहुत तरह की होती है। भिन्नता केवल पत्तियों के छाँटने और चाय तैयार करने के ढंग पर निर्भर है। भिन्न भिन्न जाति के झाड़ों की पत्ती की लम्बाई भिन्न होती है। लुशाई और कछार की पत्ती एक फुट लम्बी होती है और आसाम की केवल ६'' इंच लम्बी होती है।

वर्ष में पत्तियाँ कई बार तोड़ी जाती हैं। चाय का अच्छा और बुरा होना पत्ती को तोड़ने के समय पर निर्भर है। बरसात के मौसम में तोड़ी हुई पत्ती की चाय सबसे खराब होती है। पत्तियाँ बड़ी सावधानी से तोड़ी जाती हैं जिससे कि मुलायम पत्तियाँ दब कर खराब न हो जावें। यही कारण है कि पत्तियों को तोड़ने के लिए विशेषकर स्त्रियों को रक्खा जाता है।

जब पत्तियाँ तोड़ कर इकट्ठी कर ली जाती हैं तब उन्हें बीस घंटे तक छाया में सुखाया जाता है। यदि वायु में बहुत नमी होती है तो

जिन कमरों में चाय सुखाई जाती है उन्हें गरम किया जाता है। इसके उपरान्त पत्तियों को रोलिंग मशीन में डाल कर (लपेटा) रोल किया जाता है। अन्त में पत्तियों को बड़े कमरों या कढ़ाहों में रख कर भूना जाता है। भूनने में बड़ी सावधानी की ज़रूरत होती है, यदि आग तेज़ जला दी जावे तो चाय खराब हो जाती है। भुन जाने के उपरान्त उसको बक्सों में भर कर भेज दिया जाता है। इस प्रकार तैयार की हुई चाय को हरी चाय (Green tea) कहते हैं। एक काली चाय (Black-tea) भी होती है। काली चाय तैयार करने में उसे भूना नहीं जाता। पत्तियों को सुखा कर कुली उन्हें पैरों से कुचलते हैं, फिर हाथों से मल कर पत्तियों को सूखने को डाल दिया जाता है। सूख जाने पर काली चाय तैयार हो जाती है।

हिन्दोस्तान और सीलोन संसार की ९० प्रतिशत चाय उत्पन्न करते हैं। आसाम, बंगाल और दक्षिण भारत में चाय बहुतायत से पैदा होती है। बर्मा भी बहुत चाय उत्पन्न करता है। संयुक्तप्रान्त में भी चाय उत्पन्न होती है। ईस्ट इंडिया-कम्पनी ने हिन्दोस्तान में चाय का धंधा शुरु किया। आरम्भ से ही अंग्रेज पूंजीपतियों ने सारे चाय के बाग़ों को अपने हाथ में ले लिया। आज भी चाय का धंधा विदेशी पूंजीपतियों के ही हाथ में है। हिन्दोस्तान प्रतिवर्ष लगभग पच्चीस करोड़ रुपए से अधिक की चाय विदेशों को मुख्यत: ब्रिटेन को भेजता है। कुछ वर्षों से चाय के धंधे की हालत अच्छी नहीं है और चाय के उत्पन्न करनेवालों को इस बात की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है कि हिन्दोस्तान में ही चाय की खपत बढ़ाई जावे। यही कारण है कि टी-सेस-कमेटी कुछ वर्षों से हिन्दुस्तानियों को चाय पीना सिखाने के लिए खूब प्रचार कर रही है।

कहवा

कहवा एक झाड़ी के फल से तैयार होता है। कहवे के लिए बहुत उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है। कहवे का वृक्ष गरमी

और अधिक जल चाहता है। किन्तु कहवे का पौधा जब कि वह छोटा होता है सूर्य की तेज़ धूप को सहन नहीं कर सकता है। इस कारण उसको बड़े बड़े पेड़ों की छाया में उत्पन्न किया जाता है। कहवे का पेड़ कोहरा पड़ने से नष्ट हो जाता है इस कारण वह ठंडे देशों में उत्पन्न नहीं हो सकता। पहाड़ों की ढाल पर ही कहवे की पैदावार होती है। एक हज़ार से पाँच हज़ार फुट की ऊँचाई पर यह पैदा किया जाता है और चालीस वर्ष तक फल देता रहता है। कहवे का पौधा जब नरसरी में एक वर्ष का हो जाता है तब उसको बाग़ में लगाया जाता है। एक वर्ष और बीत जाने पर उसको ऊपर से छाँट देते हैं जिससे कि वह अधिक न बढ़े। इसके तीन वर्ष उपरान्त वृक्ष में फल लगते हैं और प्रति वर्ष अक्टूबर से जनवरी तक फल इकट्ठे किए जाते हैं।

* कहवे के फल (जिन्हें "चैरी" कहते हैं) में गूदे के अन्दर दो बीज होते हैं। इन्हीं बीजों का कहवा बनता है। सबसे पहिले मशीन की सहायता से गूदा हटा दिया जाता है और बीज निकाल लिए जाते हैं। गूदा अलग हो जाने पर उन बीजों को भूना जाता है जिससे कि उनके ऊपर वाला एक ऐसा पदार्थ नष्ट हो जाता है जो बीज को सूखने नहीं देता। फिर बीज को तालाबों में खूब साफ किया जाता है और सूर्य की तेज धूप में सुखाने के लिए डाल दिया जाता है। एक सप्ताह तक सूख चुकने के उपरान्त बीज की भूसी मशीन के द्वारा साफ करदी जाती है। भूसी साफ करने के उपरान्त बीजों को फिर सुखाया या गरम किया जाता है, और अन्त में उनको मील में पीसा जाता है। पिसे हुए कहवे को साफ करके बाज़ार में बिकने के लिए भेज दिया जाता है।

दक्षिण के नीलगिरी पहाड़ी प्रदेश में कहवा खूब पैदा होता है। मैसूर, कुर्ग, मदरास, कोचीन, तथा ट्रावंकोर में मुख्यतया यह उत्पन्न होता है। अधिकतर भारतवर्ष से कहवा ब्रिटेन को जाता है। पहले

अंग्रेज व्यवसायियों ने सीलोन में बहुत से कहवे के बाग़ लगाये थे किन्तु कहवे के वृक्षों में कीड़ा लग गया और सारे बाग़ नष्ट हो गए। तबसे सीलोन में कहवे के स्थान पर चाय के बाग़ लगाये जाने लगे।

अफीम

अफीम की खेती के लिए उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है। अक्टूबर के महीने में बीज बोया जाता है और मार्च में अफीम इकट्ठा की जाती है। शुरू से आखीर तक फसल को सींचने की आवश्यकता पड़ती है। किसानों को सारी अफीम सरकार को बेंचनी पड़ती है। कुछ वर्षों पूर्व भारतवर्ष बहुत अधिक मूल्य की (सात करोड़ रुपए) अफीम चीन को भेजता था किन्तु चीन से समझौता हो जाने के कारण वहाँ अफीम भेजना बिलकुल बंद कर दिया गया और इस कारण अफीम की खेती भी बहुत कम हो गई। अब थोड़ी सी अफीम संयुक्तप्रान्त, बिहार, बंगाल और मध्य भारत के मालवा प्रान्त के देशी राज्यों में उत्पन्न होती है।

तम्बाकू

तम्बाकू का सर्वत्र प्रचार है। तम्बाकू का उपयोग पीने, खाने और सूंघने में होता है। गरीब और अमीर सभी तम्बाकू पीते हैं।

तम्बाकू की पैदावार के लिए भूमि बहुत उर्वरा होनी चाहिए। तम्बाकू की फसल के लिए खाद और सिंचाई की बहुत आवश्यकता होती है। तम्बाकू का पौधा यद्यपि ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) की पैदावार है परन्तु वह बहुत प्रकार की जलवायु में उत्पन्न होता है।

बंगाल में तम्बाकू बहुतायत से पैदा होती है, परन्तु संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त, मध्य-भारत, गुजरात और मदरास में भी इसकी

अच्छी पैदावार होती है। बर्मा में भी तम्बाकू खूब पैदा होती है। फसल तैयार होने पर पत्तियों को काट लिया जाता है और फिर उनको दो महीने तक छाया में सुखा लिया जाता है। सूख जाने पर उनको बाजार में बेंच दिया जाता है।

तम्बाकू में शीरा मिला कर हुक्के के लिए तम्बाकू तैयार की जाती है। हाल में बीड़ियों का भी बहुत प्रचार हो गया है और मध्यप्रान्त, मध्यभारत तथा मदरास में बीड़ी बनाने का धंधा खूब पनप रहा है। मध्यप्रान्त और मदरास में बीड़ी बनाने के बड़े बड़े कारखाने हैं ही, किन्तु जहाँ भी पलास मिलता है वहाँ यह धंधा छोटे रूप में चलता है। बीड़ी के अतिरिक्त सिगरेट बनाने के कारखाने भी कहीं कहीं स्थापित हो गए हैं। डिंडीगुल, मदरास, त्रिचनापोली, कोकोनडा, कालीकट, पाँडीचेरी और रंगून में सिगरेट बनाने के कारखाने हैं। अभी तक हिन्दोस्तान में अच्छी सिगरेट नहीं बनती है क्योंकि यहाँ की तम्बाकू बहुत अच्छी नहीं होती। अधिकतर तम्बाकू की देश में ही खपत हो जाती है, थोड़ी सी विदेशों को भी भेजी जाती है।

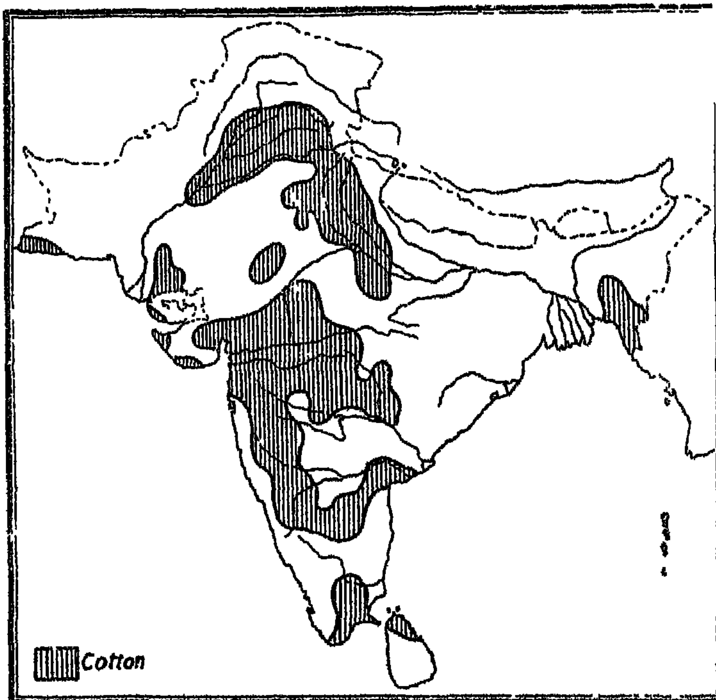
खजूर

खजूर से शक्कर तैयार की जाती है। बंगाल, मदरास, मध्यप्रान्त तथा मध्यभारत में खजूर बहुतायत से पाया जाता है। जसौर में खजूर की शक्कर तैयार करने का एक बहुत बड़ा कारखाना खोला गया है। खजूर का वृक्ष सात साल में तैयार होता है। जब वृक्ष तैयार हो जाता है तब पेड़ में खाँचे काट कर रस निकालना शुरू किया जाता है और प्रतिवर्ष रस निकाला जाता है। एक पेड़ एक रात्रि में पाँच सेर रस देता है। रस को इकट्ठा करके उसे बड़े बड़े कड़ाहों में औटाया जाता है और गुड़ तैयार हो जाता है। गुड़ से शक्कर तैयार की जाती है। किन्तु इस प्रकार शक्कर तैयार करने

से बहुत सा रस व्यर्थ नष्ट हो जाता है। यदि वैज्ञानिक ढँग से शक्कर तैयार की जावे तो अधिक और अच्छी शक्कर तैयार हो सकती है।

कपास

कपास एक झाड़ी का फूल है जिसके रेशे से सूत तैयार होता है। मनुष्य कपास का जितना उपयोग अपने कपड़ों के तैयार करने



में करता है, शायद उतना उपयोग किसी दूसरी चीज का नहीं करता।

कपास ऊष्ण कटिबन्ध (Tropics) की पैदावार है। कपास कि पैदावार के लिए गरमी और धूप की बहुत जरूरत होती है, परन्तु अधिक गरमी उसके लिए हानि-कारक है। गरमी के दिनों में साधारण वर्षा की आवश्यकता होती है किन्तु अधिक वर्षा पैदावार कम करती है। पाला कपास को नष्ट कर देता है। कपास के लिए हलकी मटियार भूमि जिसमें चूना हो उपयुक्त है। जिन देशों में समय पर वर्षा नहीं होती वहाँ सिंचाई के द्वारा फसल उत्पन्न की जाती है। संसार में संयुक्तराज्य अमेरिका, भारतवर्ष और मिस्र कपास उत्पन्न करने वालों में मुख्य हैं।

हिन्दोस्तान की कपास अच्छी जाति की नहीं होती। इसका फूल बहुत छोटा होता है जिससे बारीक सूत तैयार नहीं हो सकता। अब हिन्दोस्तान में भी अच्छी कपास (भड़ौच, सूरत इत्यादि जिलों में) उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है। यदि यहाँ अच्छी कपास उत्पन्न होने लगे तो बढ़िया कपड़ा अधिक तैयार होने लगे।

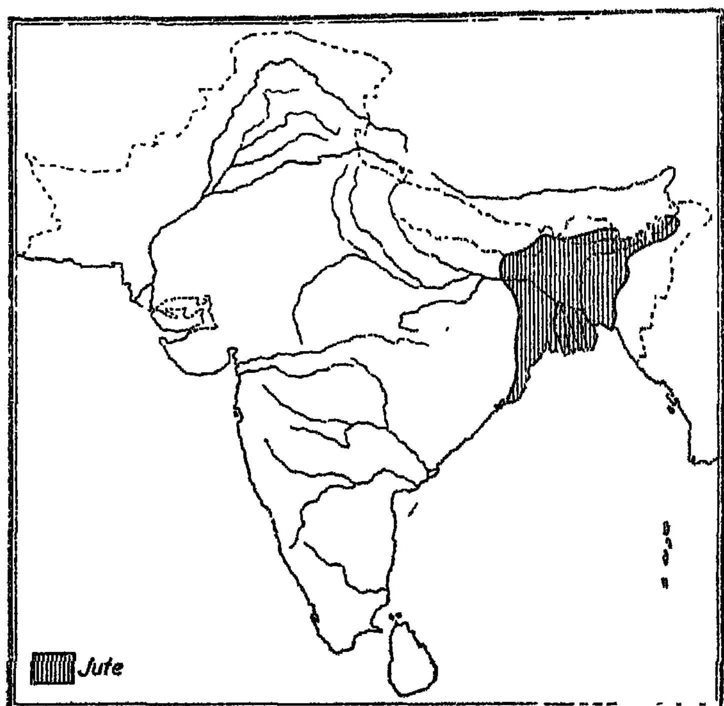
कपास उत्पन्न करने वाले प्रान्तों में बरार, खानदेश, मध्य-भारत, मध्यप्रान्त, गुजरात तथा बम्बई का उत्तर-पश्चिमी भाग मुख्य हैं। संयुक्तप्रान्त और पंजाब में भी कपास पैदा होती है।

जूट

जूट एक प्रकार के लम्बे पौधे का छिलका होता है। इस रेशेदार छिलके को कातकर सूत तैयार करते हैं और इसी के सूत से कैनवैस और टाट बुने जाते हैं। अनाज भरने के बोरे जूट के ही बने होते हैं।

जूट की खेती संसार में केवल हिन्दोस्तान के बंगाल प्रान्त में ही होती है। जूट की खेती के लिए बहुत ज्यादा पानी और गरमी की जरूरत होती है। जूट की खेती से भूमि बहुत जल्द

कमज़ोर हो जाती है। इस कारण जूट की खेती उन्हीं स्थानों पर की जा सकती है कि जहाँ हर साल नदियाँ उपजाऊ मिट्टी लाकर



खेतों पर जमा कर देती हों। जो भूमि हर-साल प्रकृति की सहायता से उपजाऊ मिट्टी पा जाती है वही जूट की खेती के लिए उपयुक्त है। बंगाल में गंगा की बाढ़ से खेतों पर नई मिट्टी बिछ जाती है। यही कारण है कि बंगाल ही अधिकतर जूट उत्पन्न करता है। पिछले वर्षों में जूट की पैदावार बंगाल में इतनी बढ़ गई कि उसका मूल्य गिर गया और फिर भी जूट की खपत नहीं

हो पाती थी। जूट के मूल्य गिरने तथा खपत न होने का एक कारण यह भी है कि अमेरिका, जर्मनी, जापान आदि देशों में कागज़ तथा एक प्रकार के बनावटी जूट के बोरे का उपयोग ज़ोर पकड़ता जा रहा है। अब बंगाल के कृषि विभाग ने जूट की खेती को कम-करवाने का प्रयत्न किया है।

दो तीहाई जूट बंगाल की जूट मिलों में ही खप जाता है और शेष डंडी (स्काटलैंड), जर्मनी और बेल्जियम को जाता है।

सन

सन के लिए बहुत उपजाऊ भूमि की आवश्यकता नहीं है, और इसकी विशेषता यह है कि जहाँ जूट नहीं उत्पन्न हो सकती है वहाँ सन उत्पन्न होता है। हिन्दोस्तान में बम्बई मदरास और मध्यप्रान्त में सन बहुतायत से उत्पन्न होता है। इनके सिवाय पंजाब, संयुक्तप्रान्त और बंगाल में भी इसकी अच्छी पैदावार होती है। सन का रस्से, जाल और कागज़ बनाने में उपयोग होता है किन्तु भारतवर्ष में सन भी बहुत अच्छी जाति का नहीं होता। क्योंकि यहाँ सन के बीज की तरफ अधिक ध्यान दिया जाता है और छिलके की तरफ कम। सन की एक विशेषता यह है कि दोनों चीज़ों अर्थात् बीज और छिलके की अच्छी पैदावार एक ही पौधे से नहीं हो सकती। यदि ऐसा बीज बोया जावेगा कि जिससे बीज अधिक उत्पन्न हो तो छिलका कम उत्पन्न होगा और यदि छिलका अधिक उत्पन्न करने वाला बीज पैदा किया जावेगा तो सन का बीज कम उत्पन्न होगा।

तिलहन

भारतवर्ष संसार में तिलहन उत्पन्न करने वाले देशों में मुख्य है और प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों का तिलहन यह विदेशों को मुख्यतः फ्रांस को भेजता है। तिलहन की मुख्य फसलें निम्नलिखित

हैं :—सरसों, लाही, सन का बीज, बिनौला, तिल, अंडी, और मूँगफली, इनके अतिरिक्त नारियल और महुआ के फलों से भी तेल तैयार होता है।

सरसों और लाही

सरसों बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम और संयुक्तप्रान्त में बहुतायत से उत्पन्न होती है। अधिकतर सरसों गेहूँ और जौ के साथ उत्पन्न की जाती है। सरसों सबसे महत्वपूर्ण तिलहन है।

सन का बीज

इसकी पैदावार अधिकतर बंगाल, बिहार, संयुक्तप्रान्त, मध्य-प्रान्त, और दक्षिण में होती है।

तिल

तिल दो प्रकार का होता है काला और सफेद। तिल की खेती कम उपजाऊ भूमि पर हो सकती है। तिल की पैदावार लगभग प्रत्येक प्रान्त में होती है।

अंडी

अंडी के पेड़ पर अंडी (रेशम) के कीड़े पाले जाते हैं और अंडी के तेल से साबुन, तथा अन्य प्रकार के मशीनों को चिकना करने वाले तेल तैयार किए जाते हैं। अंडी की पैदावार उत्तर भारत में अधिक होती है।

मूँगफली

मूंगफली के लिए रेतीली भूमि और सूखा जलवायु चाहिए। मूंगफली की पैदावार दक्षिण मे बहुत होती है। बर्मा में भी इसकी पैदावार अच्छी होती है। पश्चिमीय भारत में भी मूंगफली की पैदावार बढ़ती जा रही है। मूंगफली की खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती और न अधिक मेहनत करनी पड़ती है। मूंगफली अधिकतर फ्रांस को भेजी जाती है।

बिनौला

बिनौला कपास का बीज होता है जिससे तेल निकाला जाता है। (देखिये कपास)।

नारियल

नारियल की पैदावार दक्षिण और सीलोन में बहुत होती है। भारतवर्ष बीस लाख गैलन नारियल का तेल विदेशों को (मुख्यतः इङ्गलैंड को) भेजता है। नारियल की जटाओं के रस्से बनते हैं जो कि विदेशों को भेजे जाते हैं। नारियल भी बहुत बड़ी संख्या में बाहर जाते हैं।

महुआ

महुआ का पेड़ तराई के प्रदेश, मध्य मध्यभारत और बंगाल के उस भाग में पैदा होता है जहाँ वर्षा कुछ कम होती है।

भारतवर्ष अधिकतर तिलहन ही विदेशों को भेजता है, तेल नहीं भेजता, क्योंकि तेल निकालने का धंधा यहाँ अभी उन्नत नहीं हुआ है।

रबर के बाग

भारतवर्ष संसार का दो प्रतिशत रबर उत्पन्न करता है। रबर दक्षिण भारत में उत्पन्न होती है। मदरास, कुर्ग, मैसूर, ट्रावंकोर और कोचीन में रबर उत्पन्न होती है।

ट्रावंकोर सबसे अधिक रबर उत्पन्न करता है। भारत में उत्पन्न होने वाली रबर यूनाइटेड किंगडम, सीलोन, हालैंड, स्ट्रेटसैटिलमैंट को भेजी जाती है। कोचीन रबर को बाहर भेजने वाला मुख्य बन्दरगाह है। द्वितीय महायुद्ध के फल स्वरूप हिन्दोस्तान में रबर की उत्पत्ति बहुत बढ़ गई है।

अभ्यास के प्रश्न

१—गेहूँ की पैदावार के लिए कैसी भूमि और जलवायु चाहिये ? गेहूँ हिन्दोस्तान में कहाँ अधिक पैदा होता है ?

२—चावल उत्पन्न करने वाले देश घने आबाद क्यों हैं ?

३—चावल की पैदावार के लिए भूमि और जलवायु कैसी होनी चाहिए ?

४—फलों की पैदावार के लिए कैसी जलवायु की ज़रूरत होती है ? हिन्दोस्तान में कौन कौन से फल और कहाँ कहाँ पैदा होते हैं ?

५—चाय कैसे तैयार की जाती है ? उसका वर्णन कीजिये ।

६—चाय के बगीचे लगाने के लिए किन बातों की आवश्यकता है ?

७—हिन्दोस्तान में कहवा कहाँ उत्पन्न होता है ? कहवा के लिए उपयुक्त जलवायु कैसी होनी चाहिए ?

८—कपास, तम्बाकू, और जूट की खेती के लिए किस प्रकार की भूमि और जलवायु चाहिए ?

९—हिन्दोस्तान में कपास, तम्बाकू और जूट की पैदावार कहाँ अधिक होती है और क्यों ?

१०—भारत के रेगिस्तान और सूखे प्रदेशों में खेती की मुख्य पैदावार कौन सी हैं ?

चौथा अध्याय

पशु, जंतु और उनसे उत्पन्न होने वाली वस्तुयें

मनुष्य का पशु पक्षियों तथा अन्य जन्तुओं से घनिष्ठ सम्बंध है। बहुत सी चीजों के लिए तो हम लोग पशुओं पर बिलकुल निर्भर हैं। प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने कुछ पशुओं को पालतू बना लिया जिनका उपयोग हम आज भी करते हैं। प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने इस बात को समझ लिया कि केवल शिकार पर भोजन के लिए निर्भर रहना बुद्धिमानी नहीं है, अतएव उन्होंने पशुओं को पालतू बना कर उनकी अच्छी नस्ल को उत्पन्न करना शुरू किया। परन्तु मनुष्य केवल घास खाने वाले पशुओं को ही अधिकतर पालतू बना सका क्योंकि वे कैद में रह कर भी फलते फूलते हैं। और स्वभाव से हिंसक नहीं होते।

बाद को मनुष्य ने पशुओं का दूसरे उत्पादक कार्यों में भी उपयोग करना शुरू किया। खेती, माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, तथा अन्य कार्यों में पशुओं का ही उपयोग किया जाने लगा। यद्यपि आजकल बिजली और स्टीम से चलने वाले यन्त्रों और मशीनों का युग है फिर भी खेती का काम बिना पशुओं की सहायता के नहीं हो सकता। यद्यपि रेल और मोटर ने घोड़ों के उपयोग को बोझ ढोने और सवारी ले जाने में कम कर दिया है फिर भी पहाड़ी स्थानों में जहाँ रेल नहीं होती वहाँ आज भी घोड़ों और खच्चरों का ही उपयोग होता है। रेगिस्तान में तो ऊँट आज भी बहुत उपयोगी है। इसके अतिरिक्त पशुओं से हमें भोजन सामग्री और बहुत प्रकार का कच्चा माल मिलता है।

यह तो हम पहले अध्याय में ही कह आये हैं कि जहाँ पशुओं से हमें बहुत से लाभ हैं वहाँ बहुत से पशु-पक्षियों और कीड़ों से हमें खतरा और हानि भी है। वन के हिंसक जन्तु और साँप इत्यादि प्रतिवर्ष भारतवर्ष में हजारों की जान ले लेते हैं और इनमें भी भयंकर वे कीड़े हैं जो मलेरिया, प्लेग, हैजा तथा अन्य रोगों को फैलाते हैं जिनसे मनुष्य जीवन का नाश होता है। इनके अतिरिक्त बन्दर, चूहे, फसलों के कीड़े तथा दूसरे जानवर भी जो फसलों को नष्ट कर देते हैं मनुष्य के शत्रु हैं।

अब हम उन पशुओं के सम्बन्ध में यहाँ लिखते हैं जिनका व्यापारिक महत्व है और जिनसे मनुष्य को भोज्य पदार्थ अथवा औद्योगिक कच्चा माल मिलता है।

गाय और बैल

हिन्दोस्तान खेतिहर देश है जहाँ किसान छोटे छोटे खेतों पर खेती करता है। अस्तु यहाँ मशीनों का अधिक उपयोग हो नहीं सकता और न बिजली अथवा स्टीम का ही अधिक उपयोग हो सकता है। यही कारण है कि बैल खेती के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। खेत जोतने से लेकर फसल को मंडी में बेंचने के लिए ले जाने तक सारी क्रियायें बैल की ही सहायता से होती हैं। ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों में लगभग बीस करोड़ से अधिक गाय-बैल और भैंस हैं। संसार में जितने गाय बैल हैं उनके एक तिहाई भारत में हैं।

यद्यपि भारतवर्ष में गाय को बहुत पूज्य मानते हैं और गाय तथा बैल दूध और खेती के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं, परन्तु फिर भी गाय और बैलों की नस्ल इतनी बिगड़ गई है जिसका कुछ ठिकाना नहीं। कुछ नस्लों को छोड़ कर (जो आज भी अच्छी हैं) साधारण गाय और बैल इतने निर्बल और छोटे होते हैं कि वे

किसी काम के नहीं रहे। हिन्दोस्तान में साधारण गाय दिन में सेर डेढ़ सेर दूध देती है जबकि डैनमार्क में साधारण गाय अट्ठारह सेर से कम दूध नहीं देती। सोलह सेर से कम दूध देने वाली गाय डैनमार्क में पालना लाभदायक नहीं समझा जाता और वह माँस के कारखाने को बेच दी जाती है। भारत में साधारण बैल इतने छोटे और कमजोर होते हैं कि भारी हल तथा अन्य खेती के नये अच्छे यन्त्रों को खींच ही नहीं पाते। हाँ कुछ नस्लें ऐसी अब भी हैं जो कि अच्छी हैं।

हिन्दोस्तान में पशुओं की नस्ल बिगड़ने के मुख्य तीन कारण हैं (१) चारे की कमी, (२) नस्ल पैदा करने का गलत तरीका (३) पशुओं की बीमारियाँ। अब हम इन समस्याओं पर विचार करते हैं।

चारा

गाय और बैलों की नस्ल को ही क्या, सभी पशुओं को यथेष्ट चारा मिले बिना उनकी नस्ल अच्छी नहीं रह सकती। हिन्दोस्तान में आजकल चारे की कमी है। जनसंख्या के बढ़ जाने से चरागाह जोत डाले गए। फल यह हुआ कि चारागाहों की कमी हो गई। हिन्दोस्तान में गरमियों के तीन महीने पशुओं के लिए बहुत कठिन होते हैं। मैदानों में घास नष्ट हो जाती है और पशु आधे भूखे रहते हैं। बिना चारे के गाय और बैलों की नस्ल का सुधार नहीं हो सकता। इसलिए किसान को अपने खेतों पर चारे की फसल भी उत्पन्न करनी चाहिए। जंगल विभाग भी अपने नियमों को सरल करके, तथा मैदानों में छोटे छोटे क्षेत्रों में जङ्गल लगाकर इसमें सहायता कर सकता है। साथ ही कृषि विभाग को चारा किस प्रकार सुरक्षित रह सकता है इसका किसानों में प्रचार करना चाहिए।

नस्ल पैदा करना

केवल चारे से ही अच्छी नस्ल नहीं पैदा हो जावेगी। उसके लिए हमें अच्छे साँड़ों को उत्पन्न करके गाँवों में भेजना होगा जिससे कि अच्छी नस्ल उत्पन्न हो।

पशुओं की बीमारियाँ

अन्त में हमें इस बात का भी प्रयत्न करना होगा कि जो बहुत से पशुओं के रोग देश में फैलते हैं और जिनसे लाखों की संख्या में पशु प्रतिवर्ष मरते हैं उनको रोका जावे। इसके लिए हमें पशु-चिकित्सालयों का प्रबन्ध करना होगा।

भैंस

हिन्दोस्तान में गाय की नस्ल इतनी बिगड़ गई है कि वह दूध देने योग्य नहीं रही है। भैंस ने उसका स्थान ले लिया है। गाय तो बछड़े उत्पन्न करने के लिए पाली जाती है। भैंस के दूध में घी अधिक होता है और वह अधिक दूध भी देती है। किन्तु भैंस का खेती में उपयोग नहीं होता इस कारण उसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता, और न कोई उसे अच्छी तरह खिलाता ही है। परन्तु भैंसा बोझ ढोने का काम बहुत अच्छी तरह से करता है।

बकरी

बकरी ग़रीबों की गाय है। हर एक चीज यह खा लेती है। इस कारण इसको पालने में खर्च बहुत कम होता है। जितनी चरागाह की भूमि पर एक गाय रह सकती है उस पर बारह बकरियों का निर्वाह हो सकता है। बकरों का माँस के अतिरिक्त और कोई उपयोग नहीं होता। हाँ किसी किसी जाति के बकरे रेशम के समान मुलायम ऊन उत्पन्न करते हैं।

ढोरों से होने वाली वार्षिक आमदनी

भारतवर्ष में गाय और बैलों का खेती के लिए जो महत्व है वह तो किसी से छिपा नहीं है लेकिन यह बहुत कम लोग जानते हैं कि खेती के बाद गाय और बैलों को पालने का ही धंधा सबसे अधिक धन उत्पन्न करता है।

१९४० में गाय बैलों के द्वारा होने वाली आय का अनुमान इस प्रकार था :—

दूध और दूध से तैयार होने वाले पदार्थ का मूल्य तीन अरब रुपये (भारत में दूध की वार्षिक उत्पत्ति ८० करोड़ मन है) खाल, चमड़ा, हड्डी इत्यादि ५० करोड़ रुपये, खेती में बैल जो काम करते हैं उसका मूल्य ३ अरब और ४ अरब रुपये के बीच में कूना गया है। खाद का मूल्य लगभग तीन अरब रुपये के कूता गया है। इस प्रकार पशु धन से होने वाली वार्षिक आय का अनुमान लगभग दस अरब रुपये के किया गया है जो कि खेती से होने वाली आय का आधा है। इससे गाय और बैलों का महत्व स्पष्ट हो जाता है। लेकिन आज हमारे पशु धन की दशा अत्यन्त गिरी हुई है। यदि किसी प्रकार पशु धन की उन्नति हो सके तो देश की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है।

घी-दूध-मक्खन का धंधा (Dairy Industry)

हिन्दोस्तान जैसे देश में जहाँ बहुत सी जनसंख्या माँस नहीं खाती दूध सब उम्र के स्त्री पुरुषों और बच्चों के लिए सबसे अधिक पौष्टिक भोजन है। देश के लिए दूध का इतना अधिक महत्व होते हुए भी देश में दूध का अकाल है। गाँवों में साधारण किसान को अपने कुटुम्ब के लिए दूध नहीं मिलता। शहरों में

भी दूध की बहुत कमी है। ठीक दामों में अच्छा दूध मिलता ही नहीं। क्योंकि दूध-घी-मक्खन का धंधा बड़ी मात्रा में हमारे शहरों में भी नहीं होता। इसका मुख्य कारण यह है गाय तो बहुत कम दूध देती है, दूध देने वाला जानवर भैंस है। किन्तु गाय को पालना इसलिए आवश्यक है कि वह बैल उत्पन्न करती है। साधारण किसान गाय और भैंस दोनों को नहीं पाल सकता, इसलिए वह बिना दूध के रहता है। जिन किसानों की दशा कुछ अच्छी होती है वे भैंस पालते हैं और पास वाली मंडियों में घी बेंचते हैं। इसका फल यह होता है कि गाँवों में दूध का अभाव रहता है और घी का धंधा अधिक महत्वपूर्ण बन गया है।

बड़े नगरों में भी डेयरी का धंधा बड़ी मात्रा में नहीं होता, हाँ जहाँ छावनियाँ हैं वहाँ यह धंधा बड़ी मात्रा में होता है। नहीं तो अधिकतर नगरों में या तो पास वाले गाँवों से दूध आता है या फिर शहरों में रहने वाले ग्वाले अपनी गाय और भैंसों का दूध बेंचते हैं। मक्खन का धंधा तो देश में नाम मात्र को ही होता है और लाखों रुपए का मक्खन विदेश से आता है।

हिन्दोस्तानी किसान साल में ४ से ६ महीने तक बेकार रहता है क्योंकि उसे अपने खेत पर कोई काम नहीं रहता। यदि सहकारी दूध-घी-मक्खन समितियों का संगठन किया जावे तो कोई कारण नहीं कि गाँवों में यह धंधा क्यों न चमक उठे। यदि प्रयत्न किया जावे तो हिन्दोस्तान भी डेनमार्क और आयरलैंड की तरह ही मक्खन तथा दूध की अन्य वस्तुओं को विदेशों में भेज सकता है। इस धंधे की उन्नति हो जाने से गाँव के किसानों की दशा सुधर सकती है क्योंकि यह धंधा गाँवों के उपयुक्त है।

दूध और घी के धंधे की हालत

यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि हिन्दोस्तान में लगभग ८० करोड़ मन दूध वर्ष में उत्पन्न होता है। जनसंख्या के हिसाब से फी आदमी पीछे एक दिन में ७ औंस का औसत आता है। जब कि योरोप, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया इत्यादि महाद्वीपों के किसी भी देश में एक दिन में फी आदमी ३० औंस दूध से कम का औसत (खाने का) नहीं है। इससे यह तो साफ ही मालूम हो जाता है कि हिन्दोस्तान में दूध की उत्पत्ति बहुत कम है। मनुष्य के शरीर को तन्दुरुस्त रखने के लिए डाक्टरों की राय में ३० औंस दूध तो एक दिन में आदमी को खाना ही चाहिए। हमारे देश में गायों की संख्या संसार के सब देशों से अधिक है लेकिन यहाँ की गाय बहुत कम दूध देती है। जरूरत इस बात की है कि गाय की नस्ल की उन्नति की जावे और अधिक दूध उत्पन्न किया जाय।

भारतवर्ष में जितना दूध उत्पन्न होता है उसका ५२१ फी सदी घी बनाने के काम आता है, ३१ फीसदी पीने के और बाकी का दूध खोआ, दही, रबड़ी, कुल्फी इत्यादि में खपता है। इससे यह ज्ञात होता है कि यहाँ घी का धंधा किसानों के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है। परन्तु वनस्पति घी के चल जाने से इस धंधे के नष्ट हो जाने का डर है। इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि वनस्पति घी को सरकार कानून बना कर रंगीन ही तैयार होने दे जिससे कि वह असली घी में मिलाने के काम न आ सके।

माँस का धंधा

हिन्दोस्तान में अधिकांश हिन्दू माँस नहीं खाते और जो हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य जातियाँ माँस खाने से परहेज नहीं करतीं उन जातियों के लोग भी कभी कभी थोड़ा सा माँस खा पाते हैं

क्योंकि अधिकतर लोग निर्धन हैं और मांस महँगा है। योरप में साधारण व्यक्ति के भोजन में भी आधा माँस होता है, इस हिसाब से तो हिन्दोस्तानी बहुत कम माँस खाते हैं। यही कारण है कि मांस का धंधा इस देश में महत्वपूर्ण नहीं है। बात यह है कि घनी आबादी वाले देशों में माँस का धंधा हो ही नहीं सकता। इसका कारण स्पष्ट है। जितनी भूमि पर एक गाय पाली जा सकती है उतनी ही भूमि पर यदि फसल पैदा की जावे तो चार या पाँच मनुष्यों का निर्वाह हो सकता है। अतएव कोई घनी आबादी वाला देश अपनी भूमि का इस प्रकार दुरुपयोग नहीं करेगा। यही कारण है कि योरुप के देश जो घने आबाद हैं मांस उत्पन्न नहीं करते। वरन् संयुक्तराज्य अमरीका, कनाडा, तथा अरजनटाइन, से मँगाते हैं, जहाँ आबादी बहुत कम है और भूमि बहुत है। भारतवर्ष निर्धन देश है इस कारण वह विदेशों से माँस मंगा कर भी नहीं खा सकता, और न स्वयं अधिक माँस उत्पन्न कर सकता है। यही कारण है कि यहाँ माँस का धंधा महत्वपूर्ण नहीं है। बड़े बड़े शहरों और छावनियों के केन्द्रों में माँस का धंधा अवश्य होता है। पिछले दिनों फौजों की अत्यधिक माँस की माँग के कारण यहाँ का बहुत सा पशुधन काट डाला गया जिससे कि देश को हानि पहुँची है। और खेती के लिए अच्छे बैल मिलना कठिन हो गया है।

मुर्गियों को पालने का धंधा (Poultry farming)

अन्य देशों में किसान मुर्गियों को पालते हैं और अंडों को बेंच कर अपनी आय बढ़ाते हैं। आमदनी के साथ साथ उन्हें भोजन के लिए भी अंडे मिल जाते हैं। खेती मौसमी धंधा है। कभी खेतों पर बहुत काम होता है तो कभी किसान के लिए कोई काम ही नहीं होता। इसलिए खेती के अतिरिक्त किसान को सहायक

धन्धे की आवश्यकता रहती है। मुर्गी को पालने का धंधा मुख्य सहायक धंधा है। किन्तु हिन्दोस्तान में हिन्दू लोग अपने धार्मिक विचारों के कारण मुर्गी को नहीं पालते। केवल मुसलमान और ईसाई ही अपने घर की आवश्यकताओं के लिए मुर्गी पालते हैं। शहरों में अवश्य अंडे बेचने के लिए कुछ लोग मुर्गियाँ पालते हैं। पशुओं की ही तरह हिन्दोस्तान की मुर्गियों की नस्ल भी बहुत खराब हो गई है। मुर्गियों की नस्ल को सुधारने के लिए यह जरूरी है कि विदेशों से अच्छी नस्ल के मुर्गे मंगवाये जावें और उनसे मुर्गियों की नस्ल की उन्नति की जावे। डैनमार्क और चीन में यह धंधा बड़ी उन्नति दशा में है वहाँ से प्रति वर्ष लाखों रुपये के अंडे विदेशों को भेजे जाते हैं। यदि हिन्दोस्तान में यह धंधा पनप जावे तो यहाँ से भी विदेशों को अंडे भेजे जा सकते हैं। संयुक्तप्रान्त तथा अन्य प्रान्तों के उद्योग विभाग (Industries Departments), मुर्गियों की नस्ल को सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं।

भेंड़ (ऊन का धंधा)

भेड़ बहुत उपयोगी जानवर है। भेंड़ें भिन्न भिन्न जाति की होती हैं। कुछ अच्छा और अधिक ऊन उत्पन्न करती हैं, दूसरी माँस अधिक उत्पन्न करती हैं। भेंड़ शीतोष्ण कटिबन्ध (Temperate-zone) में खूब फलती फूलती हैं। बहुत गरम देशों में ऊन खराब हो जाता है। वास्तव में भेंड़ पहाड़ी प्रदेश का जानवर है इसलिए उसको मैदानों की जरूरत नहीं होती। वह पहाड़ों पर ही अपना भोजन प्राप्त कर लेती है। इस दृष्टि से भेंड़ें पालने का धंधा बहुत सस्ता है क्योंकि उनके लिए वह भूमि खराब नहीं करनी पड़ती जिस पर खेती हो सकती है। यही कारण है कि भेंड़ें पालने का धंधा ऐसे प्रदेशों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है जहाँ की (भौगोलिक परिस्थिति) जलवायु तथा भूमि अच्छी नहीं है।

हिन्दोस्तान की भेंड़ें खराब नस्ल की हैं। मद्रास, राजपूताना, पंजाब और काश्मीर ही हिन्दोस्तान में ऊन पैदा करने वाले प्रान्त हैं। क्योंकि यहाँ वर्षा अधिक नहीं होती। वर्षा अधिक होती है वहाँ भेंड़ रह ही नहीं सकती, इसी कारण पूर्वी प्रान्तों में भेंड़ नहीं पाई जाती। हिन्दोस्तान की भेंड़ बहुत खराब होती है। साल में एक भेंड़ दो पौंड से अधिक ऊन उत्पन्न नहीं करती और ऊन भी बहुत खराब होता है। हाँ राजपूताना (बीकानेर में) मद्रास और पंजाब में कुछ अच्छी जाति की भेंड़ें भी मिलती हैं जो कुछ अच्छा ऊन उत्पन्न करती हैं। हिमालय प्रदेश में पट्टू नाम का एक बकरा मिलता है जिसका बाल ऊन के समान होता है। राजपूताना, सिंध और बलुचिस्तान में ऐसे बकरे मिलते हैं जो कि बाल उत्पन्न करते हैं। काश्मीर महाराजा अपने राज्य के भेंड़ों की नस्ल को सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसके लिए उन्होंने इङ्गलैंड से एक विशेषज्ञ भी बुलवाया है।

भारतवर्ष में फारस, अफगानिस्तान, मध्य एशिया, तिब्बत, नैपाल, और आस्ट्रेलिया से ऊन आता है। आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त और सब देशों से खुश्की के रास्ते से ऊन आता है। क्वेटा, शिकारपूर, अमृतसर, और मुलतान उनकी प्रसिद्ध मंडियाँ हैं। आस्ट्रेलिया का ऊन बहुत बढ़िया होता है, और उसकी अधिकतर खपत भारतवर्ष के ऊनी कपड़े के कारखानों में होती है।

ऊनी कपड़े का धंधा

हिन्दोस्तान में ऊनी कपड़े गलीचे, कम्बल, और शाल बनाने का धंधा बहुत पुराना है। मुगल शासन काल में गलीचे बहुत बढ़िया बनाये जाते थे, किन्तु मुगल साम्राज्य के छिन्न भिन्न हो जाने पर यह धंधा गिरने लगा। यद्यपि अब भी हिन्दोस्तान से गलीचे विदेशों को जाते हैं, परन्तु बाहर सस्ते गलीचों की ही माँग

है इस कारण सस्ते और घटिया गलीचे ही तैयार किए जाते हैं। आज भी अमृतसर, मुलतान, जैपुर, बीकानेर, आगरा, मिर्जापुर, और बहुत से जेलों में गलीचे बनते हैं और अधिकतर विदेशों को भेजे जाते हैं।

मुग़ल समय में हिन्दोस्तान में शाल बनाने का धन्धा बहुत उन्नत दशा में था और बहुत अच्छे शाल बनाए जाते थे। उस समय भारतवर्ष योरोप को बहुत कीमती शाल भेजता था, किन्तु अँग्रेजी शासन काल में यह धंधा भी गिरने लगा। अब तो यह धंधा करीब करीब नष्ट हो चुका है। केवल देश की माँग को पूरा करने के लिए काश्मीर में यह धधा चल रहा है।

इनके अतिरिक्त कम्बल बनाने का धंधा तो हिन्दोस्तान भर के गाँवों में होता है। जहाँ भी ऊन पैदा होता है वहाँ कोरी मोटे और सस्ते कम्बलों को बनाते हैं। इन कम्बलों की गाँवों में बहुत माँग रहती है। कम्बल के अतिरिक्त काश्मीर में पट्टू बनाने का धंधा अच्छी दशा में है। देश में पट्टू की काफी खपत होती है।

ऊपर लिखे हुए गृह-उद्योग-धंधों (हाथ से चलने वाले धंधे) के अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में यहाँ ऊनी कपड़ा बनाने की फैक्टरियाँ भी खुल गईं जो कि अच्छा ऊनी कपड़ा तैयार करती हैं। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि हिन्दोस्तान का ऊन इतना घटिया होता है कि उससे अच्छा कपड़ा बन ही नहीं सकता। हिन्दोस्तान का ऊन तो कम्बल, रग, गलीचा, फैल्ट तथा दूसरी मोटी चीजें बनाने के काम में आता है। जो कारखाने बढ़िया कपड़ा तैयार करते हैं वे आस्ट्रेलिया से ऊन मँगवाते हैं। बम्बई, कानपुर और पंजाब की ऊनी कपड़े की मिलें बढ़िया सर्ज, फलालैन, पट्टी, मोजे इत्यादि तैयार करती हैं। हिन्दोस्तान की मिलें देश की माँग को पूरा करने के ही लिए कपड़ा तैयार करती हैं।

यह धंधा अधिक बढ़ नहीं रहा है क्योंकि ऊनी कपड़े की देश में गरम जलवायु होने के कारण माँग कम है। जो कुछ माँग उत्तर भारत में होती है वह अधिकतर हाथ से बुने हुए मोटे ऊनी कपड़े से पूरी हो जाती है। यही कारण है कि ऊनी कपड़े के कारखाने देश में अधिक नहीं हैं।

चमड़े का धंधा

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि हिन्दोस्तान में गाय, बैल, भैंस, बकरी और भेड़ों की संख्या बहुत है और जानवरों की बीमारियों के कारण हर साल लाखों की संख्या में पशु मरते हैं। इस कारण हिन्दोस्तान संसार में खाल बाहर भेजने वाले देशों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। हिन्दोस्तान लगभग दस करोड़ रुपए की खाल हर साल बाहर भेजता है।

चमड़ा कमाने का धंधा हिन्दोस्तान में बहुत पुराना है। हिन्दोस्तान में चमार पुराने ढंग से चमड़े को कमा कर जूते तथा अन्य आवश्यक चमड़े की चीज़ों को बनाकर आज भी बेंचते हैं। सबसे पहले नये ढंग से चमड़ा कमा कर कारखानों में चमड़े की चीज़ें बनाने का काम इस देश में सेना विभाग ने किया। सेना विभाग को अपनी आवश्यकताओं के लिए बढ़िया कमाया हुआ चमड़ा चाहिये था। इस कारण कानपुर में एक सरकारी कारखाना खोला गया। इसके उपरान्त अन्य व्यवसायियों ने भी कारखाने खोले और कानपुर चमड़े के धन्धे का केन्द्र बन गया। टैनरीज़ और चमड़े के कारखाने मदरास और बम्बई में भी खोले गए। दक्षिण भारत जहाँ कि चमड़ा कमाने के लिए तुरवद तथा बबूल की छाल बहुतायत से मिलती है इस धधे के लिए अधिक उपयुक्त था। यही कारण है कि मदरास इस धंधे का सबसे बड़ा केन्द्र बन

गया। भारतवर्ष में मैरीबोलन नामक फल भी बहुत अधिक उत्पन्न होता है जो चमड़ा कमाने के काम आता है।

योरोपीय महायुद्ध के समय सरकार ने इस धंधे को बहुत प्रोत्साहन दिया क्योंकि उस समय युद्ध के लिए बढ़िया चमड़े तथा चमड़े की बनी हुई चीजों की बहुत जरूरत थी। मदरास सरकार ने मदरास के कारखानों में क्रोम रीति के अनुसार चमड़ा कमाना आरम्भ करवाया और उसमें सफलता भी मिली। योरोपीय महायुद्ध के समय से हिन्दोस्तान में क्रोम चमड़ा बनने लगा है। अनुसंधान से पता लगा है कि भारतवर्ष में बहुत बढ़िया क्रोम बन सकता है। महायुद्ध के उपरान्त यह डर होने लगा था कि विदेशी माल के मुकाबिले में यहाँ का धंधा गिर न जावे, परंतु सरकार ने विदेशों से आने वाले चमड़े पर टैक्स लगा दिया जिससे यह डर जाता रहा।

रेशम के कीड़े पालने का धंधा (Sericulture)

रेशम को एक कीड़ा उत्पन्न करता है। यह रेशम के कीड़े बहुत तरह के होते हैं। भारतवर्ष में यह चार तरह के होते हैं; रेशम (जो शहतूत की पत्ती पर रहता है), टसर, अंडी, और मूंगा। शहतूत पर पलने वाला रेशम का कीड़ा फ्रांस, जापान और चीन में बहुत पाला जाता है।

रेशम के कीड़ों को दो तरह से पाला जाता है, एक बाहर पेड़ों पर दूसरे मकानों के अन्दर कमरों में। बाहर पेड़ों पर कीड़ों को पालने के लिए रेशम के कीड़े का बीज व्यापारियों से ले लेते हैं। रेशम का कीड़ा जब सो जाता है और अपने चारों तरफ एक रेशम की झिल्ली (Cocoon) पैदा कर लेता है तब उसे मौथ (moth) अर्थात् रेशम के कीड़े का बीज कहते हैं। यह सोये हुए रेशम के कीड़े (बीज) मौसम आने पर अपनी झिल्ली

(Cocoon) काटकर बाहर निकलते हैं और बहुत थोड़े समय में असंख्य अंडे उत्पन्न कर देते हैं। यह अंडे पत्तियों में रख दिये जाते हैं। नवें दिन अंडे से बच्चे निकलते हैं और वे तुरन्त शहतूत के पेड़ की पत्तियों और डालों पर रख दिए जाते हैं। कीड़े पालने वाले कीड़ों की बहुत चौकसी रखते हैं नहीं तो चिड़ियाँ और चीटियाँ कीड़ों को खा जावें। पेड़ के तने को साफ रक्खा जाता है जिससे कि कोई दूसरे कीड़े पेड़ पर न चढ़ जावें। जब कि कीड़े एक पेड़ की पत्तियों को खाकर खतम कर देते हैं तो पेड़ की डालियाँ काट ली जाती हैं, इन्हीं डालियों पर कीड़े होते हैं। ये कीड़े वाली डालियाँ नये पत्तों वाले पेड़ में बाँध दी जाती हैं। कीड़े डालियों पर से रेंग कर पत्तियों पर पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार पेड़ बदले जाते हैं जब तक कि कीड़े रेशम का ककून (Cocoon) नहीं बना देते। (कुछ बड़े होने पर कीड़े अपने मुँह से रेशम उत्पन्न करते हैं। यह रेशम उनको चारों तरफ से ढक लेता है और कीड़ा सुप्त अवस्था में पहुँच जाता है। इस रेशम सहित कीड़े को ककून (Cocoon) कहते हैं)।

जो कीड़े कमरों में पाले जाते हैं उनका मौथ (बीज) बाँस के डलों अथवा बाँस की चटाई पर रक्खा जाता है। ६ या १० दिन में कीड़े ककून (झिल्ली) को काटकर निकल आते हैं और ६ या १० दिन में असंख्य अंडे पैदा कर देते हैं। जब अंडों से बच्चे निकलते हैं तो कोमल शहतूत की पत्तियाँ उन पर डाल दी जाती हैं। कुछ समय बाद कीड़े पत्तियों सहित मचान पर रख दिये जाते हैं। कीड़े पालने वाले को दिन में पाँच बार नई पत्तियाँ रखनी पड़ती हैं, और खाई हुई पत्तियों को फेंकना पड़ता है। मकान में सफाई हवा और रोशनी का ठीक प्रबन्ध होना चाहिए, नहीं तो कीड़ों में बीमारी फैल जाने का डर रहता है। जब कीड़े रेशम उगलने वाले होते हैं तो वे खाना बन्द कर देते हैं, बेचैन

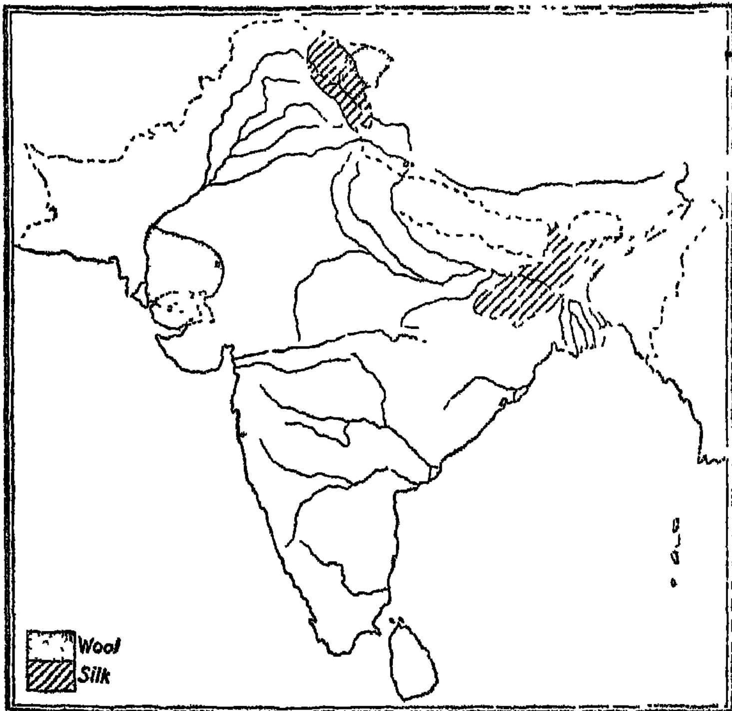
हो जाते हैं और रेशम उगलने लगते हैं। उसी समय पालने वाले कीड़ों को मचान से हटा कर एक पर्दे पर रख देते हैं। जब ककून बन जाते हैं तो उन्हें इकट्ठा करके बाजार में या तो बेंच दिया जाता है अथवा भाप से मार डाला जाता है।

रेशम के कीड़े को पालने के लिए शहतूत का पेड़ बहुत जरूरी है। क्योंकि रेशम का कीड़ा केवल शहतूत की पत्ती पर ही पाला जा सकता है। काश्मीर से लेकर आसाम तक हिमालय के साथ साथ शहतूत का पेड़ जङ्गली अवस्था में पैदा होता है और उस पर जङ्गली रेशम का कीड़ा मिलता है। बंगाल, मैसूर और काश्मीर में शहतूत के बड़े बड़े बाग (Plantations) लगाये गये हैं। हिन्दोस्तान में शहतूत के वृक्ष अन्य देशों से किसी तरह भी खराब नहीं होते वरन अच्छे होते हैं। एक बार पेड़ लग जाने पर फिर उसकी अधिक देखभाल करने की जरूरत नहीं रहती। वर्ष में दो बार पत्तियाँ तोड़ी जाती हैं (फरवरी-मार्च और अक्टूबर-नवम्बर में)। रेशम के कीड़े पालने वाले इन बागों की पत्तियों को मोल ले लेते हैं। हर तीसरे वर्ष पेड़ों को कलम कर दिया जाता है जिससे कि और अधिक पत्तियाँ निकलें।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि ककून (Cocoon) इकट्ठा कर लेने पर उन्हें भाप दी जाती है फिर रीलिंग (reeling) (अर्थात् रेशम के तार को निकालने की क्रिया) की जाती है। भारतवर्ष में रेशम के कीड़े की नस्ल खराब हो गई है, और भाप देने तथा रीलिंग की क्रिया भी आधुनिक ढंग से नहीं की जाती। इस कारण हिन्दोस्तान का रेशम घटिया होता है। मैसूर तथा काश्मीर दरबार ने विदेशों से अच्छे रेशम के कीड़ों के बीज मँगवा कर रेशम के धंधे की उन्नति करने का प्रयत्न किया है।

भारतवर्ष से पहले रेशम तथा रेशमी कपड़े विदेशों को भेजे जाते थे, किन्तु इङ्गलैंड के रेशमी कपड़ा बनाने वालों के विरोध

करने पर ईस्ट इंडिया कंपनी ने रेशमी कपड़े को विदेश भेजने में असुविधायें खड़ी कर दीं तब से रेशम ही बाहर जाने लगा। कुछ



भारत में ऊन और रेशम उत्पन्न करने वाले देश

समय उपरान्त जापान, चीन तथा संयुक्तराज्य अमरीका भी योरोप को रेशम भेजने लगे। तभी से भारत के रेशम का धंधा गिर गया।

आज कल देश में रेशम का धंधा बहुत गिरी हुई दशा में है। विदेशों में भारतीय रेशम की बहुत कम पूँछ होती है। विदेशी व्यापारी भारत से रेशम मँगाने के बजाय ककून मँगाना

अधिक पसन्द करते हैं। क्योंकि यहाँ रीलिंग खराब होती है। यहाँ तक कि हिन्दोस्तान के रेशम बुनने वाले भी चीन और जापान के रेशम को काम में लाते हैं। प्रति वर्ष चीन, इटली और जापान से बहुत सा रेशम भारतवर्ष में आता है और उसका रेशमी कपड़ा तैयार होता है।

आसाम और बंगाल सरकार ने भी अपने अपने प्रान्तों में रेशम के धंधे को उन्नति करने का प्रयत्न किया है। दो स्कूल इस धंधे की शिक्षा देने के लिए खोले गए हैं। मैसूर राज्य ने जापान से रेशम के कीड़े पालने के विशेषज्ञ बुलाये हैं, जो मैसूर राज्य में इस धंधे की उन्नति करने का प्रयत्न कर रहे हैं। काश्मीर राज्य ने फ्रांस से विशेषज्ञ बुलवाये हैं जो काश्मीर में इस धंधे की उन्नति करने का प्रयत्न कर रहे हैं। काश्मीर राज्य की राजधानी श्रीनगर में एक बहुत बड़ी सिल्क फैक्टरी है। मुर्शिदाबाद, ढाका, बनारस, शान्तीपूर तथा कुछ अन्य स्थानों पर हाथ के कर्घों पर रेशमी कपड़ा आज भी बुना जाता है, परन्तु इस धंधे की दशा बहुत गिरी हुई है। अब तो नकली रेशम का कपड़ा विदेशों से बहुत आने लगा है इस कारण इस धंधे की दशा और भी खराब हो रही है।

मछलियों का धन्धा

मछली एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भोज्य पदार्थ है, और संसार के देशों में इसकी बहुत मांग है। जापान समुद्र, नार्थ-सी (North Sea) इङ्गलैंड और योरोप के बीच का समुद्र तथा संयुक्तराज्य अमरीका का पूर्वी समुद्र तट मछलियों के लिए प्रसिद्ध हैं। वहाँ लाखों आदमी इस धंधे में लगे हुए हैं।

भारतवर्ष की नदियों और समुद्र में अच्छी जाति की मछलियाँ पाई जाती हैं, परन्तु यहाँ इस धंधे की दशा अच्छी नहीं

है। इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दुओं में ऊँची जाति के लोग तो इस धंधे से घृणा करते हैं। केवल नीच जाति के लोग ही मछलियों को पकड़ने का धंधा करते हैं। उनमें न तो शिक्षा होती है, और न उनके पास पूँजी ही होती है। इस कारण वे पुराने ढंग को नहीं छोड़ते। मछलियों को पकड़ने का आधुनिक वैज्ञानिक ढंग उन्हें मालूम ही नहीं है। सरकारी मछली विभाग इस ओर प्रयत्नशील है।

हिन्दोस्तान के पूर्वी प्रान्तों (बिहार, उड़ीसा, बंगाल और आसाम) तथा बर्मा में मछली बहुत खाई जाती है। वहाँ ९० फी सदी लोग मछली रोज खाते हैं। चावल और मछली उनका मुख्य भोजन है। हिसाब लगाने से यह पता चलता है कि मछली की माँग इतनी अधिक है कि वह पूरी नहीं हो सकती। बंगाल में नदियों, झीलों, और तालाबों में बहुत मछली उत्पन्न होती है हर एक गाँव के तालाब में मछली पैदा होती है। बंगाल में लगभग आठ लाख आदमी इस धंधे में लगे हुए हैं। बंगाल और बिहार में मछली पकड़ने वाले जमींदारों से तालाब या झील लगान पर ले लेते हैं, और मछली पकड़ पकड़ कर मछली के व्यापारियों को बेंचते हैं। कुछ वर्षों से बंगाल में मछलियों की धीरे धीरे कमी होती जा रही हैं। बंगाल में समुद्र की मछलियाँ बहुत कम पकड़ी जाती हैं। बंगाल की नदियों, झीलों, और तालाबों में यदि आधुनिक ढंग से मछलियों को उत्पन्न किया और पकड़ा जावे तो मछलियों की विशेष उन्नति हो सकती है। इस समय जो मछलियों की उत्पत्ति कम हो रही है उसका मुख्य कारण यह है कि भागीरथी, जेलाँगी, मधुमती, मात्रभंगा, तथा गंगा की धारायें रेती से पटती जा रही हैं। इसका प्रभाव झीलों पर भी पड़ता है। गाँव के जमींदार गाँवों को छोड़ गए हैं, इस कारण तालाब भी पटते जा रहे हैं। साथ ही मछली पकड़ने वाले छोटी छोटी नवजात मछलियों को भी पकड़

लेते हैं, इस कारण उनकी उत्पत्ति कम होती जा रही है। यही नहीं तालाबों में मछली पैदा करने का ढंग भी पुराना और खराब है। यदि मछली विभाग आधुनिक ढंग से तालाबों में मछली उत्पन्न करने तथा उनके पकड़ने का तरीका मछुओं को सिखादे तो बंगाल में मछलियों की बहुत उन्नति हो सकती है। बंगाल में हिलसा, रोहू, कटला, भिंगेला, प्रॉस (Prawns) श्रिम्पस, (Shrimps) नदियों में तथा बेकती, और मुलेत नदियो के मुहानों में मिलने वाली मुख्य मछलियाँ हैं।

समुद्र की मछलियों के लिए मदरास प्रसिद्ध है। मदरास का १७५० मील लम्बा तट छिछले समुद्र के समीप होने से वहाँ मछलियों का भंडार है। मदरास समुद्र तट पर लगभग एक लाख से अधिक मनुष्य इस धंधे में लगे हुए हैं। सार्डिन (Sardines) मैकेरैल (Makcarel) ज्यू (jew) प्रामफ्रेट (Promfret) कैट फिश (Cat fish) रिबन फिस (Ribbon fish) गागिल्स (Goggles) और सफेद पेट वाली मछलियाँ (Silver bellies.) वहाँ की मुख्य मछलियाँ हैं। सार्डिन तो वहाँ इतनी अधिक पकड़ी जाती है कि उसका उपयोग तेल और खाद बनाने में भी होता है।

मदरास मछली विभाग मछली पकड़ने वालों को मछली पकड़ने का आधुनिक ढंग, मछलियों का तेल निकलना, तथा उनको सुरक्षित रखना इत्यादि आवश्यक बातें सिखाता है। इसके लिए मछली विभाग ने समुद्र तट के गाँवों में स्कूल खोल दिये हैं। मदरास में नदियों और तालाबों की मछलियाँ बंगाल के समान महत्वपूर्ण नहीं हैं।

बम्बई के समुद्र तट पर भी बहुत से मछली पकड़ने का धंधा करते हैं। बम्बई का समुद्र तट अच्छा है और वहाँ मौसम भी

अच्छा रहता है। इस कारण वहाँ मछली पकड़ने की अधिक सुविधा है।

प्राममफ्रेट (Promfrets) सोल (Soles) और सी-पर्च (Sea-perches) वहाँ की मुख्य मछलियाँ हैं। बम्बई के मछुये अपनी नावों पर एक हफ़्ते का खाने का समान लेकर समुद्र में मछली पकड़ने चले जाते हैं। कभी कभी वे हफ़्तों समुद्र पर ही मछली पकड़ते रहते हैं। सिंध में मछलियाँ नदियों में बहुत पाई जाती हैं। करांची के समुद्र तट पर अधिक मछली नहीं मिलती।

बर्मा में मछली पर सरकार का अधिकार है। मछलियों से सरकार को बहुत आमदनी होती है। नदियाँ, झीलें, और तालाब सब सरकार नीलाम कर देती है।

इरावदी डिविज़न मछलियाँ बहुत उत्पन्न करता है। बर्मा में भी हज़ारों की संख्या में मनुष्य इस धंधे में लगे हुए हैं। यद्यपि बौद्ध लोग मछली पकड़ते नहीं हैं परन्तु वे मछली खाते खूब हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—हिन्दोस्तान में गाय और बैलों की नस्ल क्यों खराब हो गई?

२—गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने के लिए कौन से उपाय करना चाहिए?

३—हिन्दोस्तान में दूध, मक्खन और घी के धंधे की कैसी दशा है?

४—हिन्दोस्तान में ऊन पैदा करने तथा ऊनी कपड़े बनाने का धंधा कैसी दशा में है?

५—भेड़ किस प्रकार के जलवायु तथा प्रदेश में पनप सकती है? हिन्दोस्तान में ऊन कहाँ पैदा होता है?

६—चमड़े के धंधे की उन्नति के लिए किन चीज़ों की आवश्यकता होती है? क्या वे चीज़ें हिन्दोस्तान में मिलती हैं?

७—कानपूर और मदरास चमड़े के धन्धे के केन्द्र क्यों बन गये ?

८—रेशम का कीड़ा किस प्रकार पाला जाता है ?

९—रेशम के कीड़े हिन्दोस्तान में किन प्रान्तों में पाले जाते हैं ?

१०—हिन्दोस्तान में मुर्गी पालने के धंधे की कैसी दशा है और इस धंधे की उन्नति किस प्रकार हो सकती है ?

११—हिन्दोस्तान के समुद्र में कौन सी मछलियाँ पाई जाती हैं ? मछलियों के धंधे की दशा यहाँ कैसी है ?

१२—बंगाल में नदियों और झीलों में पाई जाने वाली मछलियाँ क्यों अधिक होती हैं और इस धंधे की वहाँ कैसी दशा है ?

पाँचवाँ अध्याय

खनिज पदार्थ

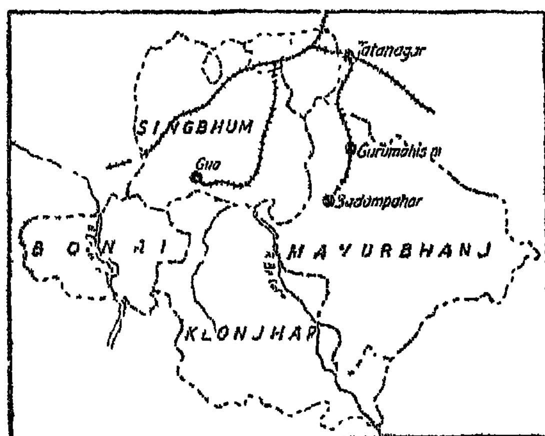
लोहा

हिन्दोस्तान के बहुत से प्रान्तों में लोहा पाया जाता है किन्तु बंगाल, बिहार, और उड़ीसा लोहा उत्पन्न करने वालों में प्रधान हैं। सिंगभूमि, क्योंझर, बोनाई, मयोरभंज और उड़ीसा की अन्य रियासतों में अनन्त राशि में लोहा भरा पड़ा है। ऊपर लिखी लोहा की खाने संसार की सबसे धनी खानों में से हैं। इनके अतिरिक्त मध्यप्रान्त के चाँदा और द्रुग जिलों में और बस्तर राज्य में लोहे की अच्छी खाने हैं। मैसूर के कादूर जिले में, शानस्टेटस् और बर्मा में भी लोहे की खाने हैं। विशेषज्ञों का मत है कि भारतवर्ष जहाँ तक लोहे का प्रश्न है बहुत धनी है।

बिहार और उड़ीसा की खानों में अनन्त राशि में लोहा भरा हुआ है। सिंगभूमि, क्योंझर, बोनाई तथा म्योरभंज की रियासतें वास्तव में भारत का लौह प्रदेश है। इन खानों की गणना संसार की अत्यन्त धनी खानों में होती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन खानों में २८३० लाख टन कोयला भरा हुआ है। साथ ही इनमें बहुत अच्छी जाति का लोहा है। इन खानों में लोहा बहुधा ऊपर की सतह में ही मिल जाता है इस कारण उसको खोद कर निकालने में कम खर्च होता है। कहीं कहीं तो मैदान में ही लोहा निकलता है। इनके अतिरिक्त उड़ीसा की रियासतों में भी लोहे की खाने हैं। इनमें "बोनाई" रियासत की "कामपिलाई"

पहाड़ी अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसकी समीपवर्ती पहाड़ियों में भी बहुत अधिक लोहा निकाला जाता है। इस प्रदेश में अच्छी जाति का हैमेटाइट कच्चा लोहा ही पाया जाता है।

उड़ीसा के लोहे की खानों का नक़्शा



भारतवर्ष में ताता आयरन स्टील कम्पनी जिसका कारखाना जमशेदपुर में है, इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी जिसका कारखाना आसनसोल में है और बंगाल आयरन कम्पनी जिसका कारखाना कुल्टी में है, कच्चे लोहे का अधिक उपयोग करते हैं। इंडियन आयरन कम्पनी सिंगभूमि जिले के "गुआ" की खानों से कोयला लेती है। ताता कम्पनी की लोहे की खानें सिंगभूमि जिले के "कोल्हन" लौह प्रदेश तथा क्योंझर रियासत में हैं, किन्तु ताता कम्पनी मयूरभंज रियासत की खानों से लोहा अधिक लेती रही क्योंकि वे समीप हैं। लेकिन अब वह "कोल्हन" लौह प्रदेश और नौआमुंडी की खानों से लोहा अधिक निकालती है।

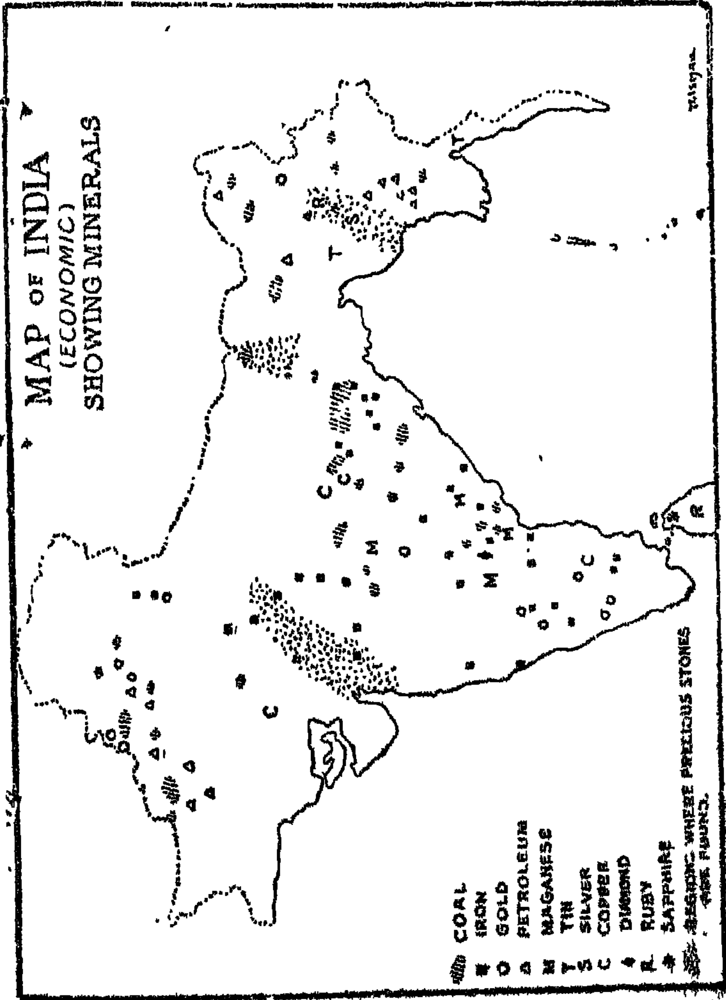
बंगाल आयरन कम्पनी भी सिंगभूमि जिले के "कोलहन" लौह प्रदेश की "पनसिरा बुरु" और "बुदाबुरु" खानों से लोहा निकालती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि "पानसिरा बुरु" में एक करोड़ टन और "बुदाबुरु" में १५ करोड़ टन लोहा भरा है और लोहा हैमेटाइट जाति का है तथा कच्चे लोहे में ६४ प्रतिशत शुद्ध लोहा है।

मैसूर राज्य में भद्रावती के कारखाने में कादूर जिले "केमान गुंडी" की खानों से निकाला हुआ लोहा काम में लाया जाता है। इन खानों में कच्चे लोहे में ६४ प्रतिशत शुद्ध लोहा है। वैसे मैसूर राज्य में "बाबुदाना" की खानों में हैमेटाइट जाति का बहुत लोहा भरा है।

मध्यप्रान्त के दुर्ग जिले में "राजाहारा" की पहाड़ियों में काफी हैमेटाइट जाति का लोहा भरा है। चाँदा जिले की "लोहारा" पहाड़ियों में लोहा पाया जाता है किन्तु मध्यप्रान्त की कोयले की खानों से दूर है इसलिये उनका उपयोग नहीं होता।

मद्रास प्रान्त के सलेम और नेलोर जिले में इतना अधिक लोहा भरा पड़ा है जिसका ठीक ठीक अनुमान ही नहीं किया जा सकता। यह लोहा मैगनेटाइट जाति का है। किन्तु यहाँ भी कोयले के न होने से उसका उपयोग नहीं हो सकता।

ऊपर दिये हुए विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ तक लोहे का प्रश्न है भारतवर्ष बहुत धनी है। यहाँ का लोहा अच्छी जाति का है और कच्चे लोहे में शुद्ध लोहे का प्रतिशत ६०% से भी अधिक है। अभी तक लोहे का धंधा पूरी तरह से यहाँ उन्नत नहीं हुआ है इस कारण उसका पूरा उपयोग नहीं हो सका। जितना लोहा इस समय भारतवर्ष में निकाला जाता है उसका आधे के लगभग सिंगभूमि की खानों से निकाला जाता है और अधिकांश कच्चा लोहा ताता के कारखाने में काम आता है।


MAP OF INDIA
(ECONOMIC)
SHOWING MINERALS
COAL
IRON
GOLD
PETROLEUM
MAGANESE
TIN
SILVER
COPPER
DIAMOND
RUBY
SAPPHIRE
REGIONS WHERE PRECIOUS STONES ARE FOUND.

मैंगनीज़

हिन्दोस्तान संसार को मैंगनीज भेजने वालों में मुख्य है। संसार में सबसे अधिक मैंगनीज हिन्दोस्तान में ही निकलता है। स्टील तैयार करने में मैंगनीज का उपयोग होता है इस कारण यह धातु बहुत महत्वपूर्ण है। मैंगनीज की खानें मदरास, बिहार, उड़ीसा, बम्बई, मध्यभारत, मध्यप्रान्त और मैसूर में पाई जाती हैं। बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रान्त तीनों प्रान्तों में फैला हुआ एक मैंगनीज प्रदेश है जिसमें मैंगनीज भरा पड़ा है। यही तीन प्रान्त सबसे अधिक मैंगनीज उत्पन्न करते हैं। हिन्दोस्तान में मैंगनीज की बहुत कम खपत होती है। अधिकांश मैंगनीज ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य अमरीका, जर्मनी, फ्रांस, इटली, जापान, बैल्जियम और हालैंड को भेजा जाता है।

मैंगनीज़ की खानें

मदरास :—गंजाम, विजगापट्टम, बैलारी और संदूर।

बिहार-उड़ीसा :—गंगपुर, सिंगभूमि, और क्योंझर

बम्बई :—नामकोट, पंच महल, छोटा उदयपुर, रत्नागिरी और धारवार।

मध्य भारत:—झाबुआ राज्य।

मध्य प्रान्त :—बालाघाट, भंडारा, छिंदवाड़ा, नागपुर, सिवनी और जबलपुर।

मैसूर :—चीतल दुर्ग, कादूर, शिमोगा और तुमकुर।

भारत से अधिकतर मैंगनीज ब्रिटेन को जाता है।

अबरख (Mica)

हिन्दोस्तान संसार का लगभग आधा अबरख उत्पन्न करता है। अबरख उत्पन्न करने वाले तीन क्षेत्र हैं। बिहार में हजारीबाग,

गया और मुंगेर जिलों में अबरख की बहुत खानें हैं। मदरास का निलौर जिला और राजपूताने में अजमेर मेरवाड़ा और उदयपुर (मेवाड़) राज्य में अबरख निकलता है। अबरख का उपयोग बिजली के काम में होता है। हिन्दुस्तान अधिकतर अबरख संयुक्त-राज्य अमरीका और ब्रिटेन को भेजता है।

सोना

हिन्दोस्तान में मैसूर राज्य की कोलार की सोने की खानों से ही अधिकतर सोना निकलता है। पाँच कंपनियाँ वहाँ सोना निकालने का धंधा कर रही हैं और लगभग २५००० मजदूर इन खानों में काम करते हैं। किन्तु ये खानें शीघ्रतापूर्वक खतम हो रही हैं। इसके अतिरिक्त हैदराबाद में हुट्टी की खानों में से भी सोना निकाला जाता था किन्तु अब सोना निकाला जाना बंद कर दिया गया है, क्योंकि खानें लाभदायक नहीं रहीं। मदरास के अनन्तपुर स्थान में तथा बर्मा के काथा जिले में भी सोने की खाने हैं। इन खानों के अतिरिक्त बर्मा, आसाम, बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रान्त की नदियों के रेत में सोना मिलता है जिसको किसान रेत धो कर निकाल लेते हैं। किन्तु रेत में सोना इतना नहीं होता है कि आधुनिक ढंग से सोना निकालने का प्रयत्न किया जावे।

बाक्साइट (Bauxite)

बाक्साइट का एलूमीनियम बनाने में बहुत उपयोग होता है। मध्यप्रान्त के बालाघाट और कटनी की खानें हिन्दोस्तान में सबसे अच्छी हैं और इन खानों से बहुत सा बाक्साइट प्रति वर्ष निकाला जाता है। इनके अतिरिक्त सरगूजा राज्य तथा मंडला (मध्य प्रान्त), छोटा नागपूर, बिहार और उड़ीसा, भूपाल, मैसूर, काश्मीर और रीवा राज्य तथा बम्बई के केरा और सतारा जिलों में भी बाक्साइट पाया जाता है, परन्तु अभी इन स्थानों से धातु

निकाली नहीं जाती। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि बाक्साइट एलूमीनियम बनाने के काम आता है परन्तु हिन्दोस्तान में अभी एलूमीनियम के बर्तनों का प्रचार कम है, साथ ही यहाँ बिजली सस्ते दामों पर नहीं मिलती जिसके बिना एलूमीनियम का धंधा पनप ही नहीं सकता। फिर भी कुछ एलूमीनियम के कारखाने खोले गए हैं।

क्रोमियम (Chromium)

क्रोमियम का उपयोग विशेषतः स्टील बनाने में होता है। यह धातु तीन जगह पाई जाती है बलूचिस्तान, मैसूर, और बिहार तथा उड़ीसा का सिंगभूमि ज़िला। हिन्दोस्तान संसार के क्रोमियम उत्पन्न करने वालों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अधिकतर यह धातु विदेशों को भेजी जाती है।

ताँबा

हिन्दोस्तान में ताँबा बिहार और उड़ीसा के सिंगभूमि ज़िले की खानों से निकाला जाता है, और यहीं धातु गला कर साफ किया जाता है। इसके अतिरिक्त हज़ारीबाग़ ज़िले, कमायूं डिविज़न (संयुक्त प्रान्त) तथा सिक्किम में भी ताँबे की खानों का पता चलता है परन्तु अभी तक इन खानों को खोदा नहीं गया है।

सीसा, चाँदी और (Zinc) जस्ता

ये सब धातुयें केवल बर्मा* में पाई जाती हैं। शान-राज्य (Northern Shan States) की बाडविन खानें ही इन धातुओं को निकालती हैं। बर्मा कारपोरेशन नामक एक बहुत बड़ी कंपनी इन खानों से इन धातुओं को निकालती है। थोड़ी सी चाँदी कोलार और अन्तपूर की सोने की खानों से भी निकलती है।

* बर्मा अब हिन्दोस्तान से पृथक् कर दिया गया है।

चाँदी और सीसा उदयपुर राज्य की जवार तहसील में भी पायी जाती है किन्तु निकाली नहीं जाती। चाँदी का उपयोग तो सिक्का बनाने में होता है। बर्मा भारतवर्ष को ही सारी चाँदी देता है, परन्तु सीसा और जस्ता विदेशों को भी भेजा जाता है। जब बाडविन की खानें पूरी तरह से खुदेंगी तो बर्मा अधिक राशि में सीसा और जस्ता विदेशों को भेज सकेगा।

टिन

टिन बर्मा में ही पाया जाता है। टवाय और मरगुई जिलों में टिन की बहुत अच्छी खानें हैं जहाँ से टिन निकाला जाता है।

वोलफ्रम (wolfram)

टंगस्टन (Tungsten) नामक धातु वोलफ्रम से ही निकलता है। टंगस्टन आजकल बहुत महत्वपूर्ण धातु है। क्योंकि बहुत बढ़िया स्टील जिससे कि लोहा काटने वाली, स्टील में छेद करने वाली, और लोहे पर रंदा करने वाली मशीनों और और युद्ध के अस्त्र-शस्त्र तैयार किए जाते हैं, बिना टंगस्टन से नहीं बन सकते। वोलफ्रम मुख्यत: बर्मा के क्यानकी और यामेथिन जिलों में शान राज्यों (Shan States) में, अमहर्स्ट, मरगुई और टवाय जिलों में निकाला जाता है। टवाय सबसे अधिक टंगस्टन उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त सिंगभूमि (बिहार) अगरगाँव (मध्य-प्रान्त) और दागान (जोधपुर राज्य) में भी टंगस्टन पाया जाता है परन्तु निकाला नहीं जाता।

इमारत का पत्थर

हिन्दोस्तान की इमारतों में पत्थर का खूब उपयोग होता है। देश की सब प्रसिद्ध इमारतें पत्थर की बनी हुई हैं। ताजमहल, विक्टोरिया मैमोरियल तथा राजपूताने के राज्यों के प्रसिद्ध महल पत्थर के ही बने हुए हैं। हिन्दोस्तान में विंध्यापर्वत माला के

प्रदेश से इमारतों के लिए पत्थर सबसे अधिक और उत्तम निकलते हैं। राजपूताना और मध्यभारत ही विंध्यापर्वत माला का प्रदेश है, और यही उत्तर भारत को पत्थर देता है। मद्रास, तथा मैसूर में भी इमारत योग्य पत्थर निकलते हैं। बम्बई, हैदराबाद और मध्यप्रान्त में बासल (Basal) पत्थर निकाला जाता है।

संगमरमर

संगमरमर विंध्यापर्वत माला के प्रदेशों में पाया जाता है और इमारत के लिए सबसे उत्तम पत्थर है। जबलपूर, बैतूल, नागपूर और छिंदवाड़ा (मध्यप्रान्त में) जोधपूर, किशनगढ़ और अजमेर में सफेद संगमरमर का पत्थर निकलता है। किशनगढ़ और जोधपूर का संगमरमर हिन्दोस्तान में मशहूर है। प्रसिद्ध ताजमहल और कलकत्ते का विक्टोरिया मैमोरियल जोधपूर की मकराना की खानों से निकाला हुआ है। जैसलमेर, मेवाड़ तथा जयपूर राज्यों में भी पीला, सफेद और काला संगमरमर निकलता है। इतना पत्थर देश में होने पर भी हमारे देश में इटली से संगमरमर आता है क्योंकि ईटली का संगमरमर सस्ता होता है।

सीमेंट के लिए आवश्यक चीज़ें

हिन्दोस्तान में सीमेंट की बहुत खपत होती है। परन्तु पिछले योरोपीय महायुद्ध के पूर्व बहुत कम सीमेंट देश में उत्पन्न होता था। अधिकतर बाहर से ही आता था, योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त सीमेंट की माँग देश में बहुत बढ़ गई और सीमेंट बनाने के कारखाने भी खोले गए। अब हिन्दोस्तान के कारखाने देश की माँग को पूरा कर देते हैं, बाहर से बहुत कम सीमेंट आता है।

सीमेंट बनाने के लिए खड़िया, चूना, चौका मिट्टी, तथा ऐसे ही अन्य पदार्थों की आवश्यकता होती है। इन सब वस्तुओं को फूंक कर पीसा जाता है।

योरोपीय महायुद्ध के पूर्व मदरास में सीमेंट फेक्टरी थी और वहाँ सीमेंट बनता था किन्तु १९१३—१४ से हिन्दोस्तान में कारखानों की संख्या बढ़ने लगी। लाखेरी (बूंदी राज्य), कटनी और पोरबन्दर (काठियावाड़) के कारखाने इसी समय स्थापित हुए। महायुद्ध के काल में विदेशों से सीमेंट आना बंद हो गया इस कारण और भी कारखाने खोले गये साथ ही पुराने कारखानों ने अपनी उत्पत्ति बढ़ा ली। सरकार ने भी इस धंधे को सहायता दी इससे धंधा खूब पनपा। सीमेंट के कारखानों के अधिक संख्या में स्थापित होने का फल यह हुआ कि विदेशों से सीमेंट बहुत कम आने लगा। अभी थोड़ा समय हुआ १३ सीमेंट के कारखानों ने अपना एक संघ एसोशियेटेड सीमेंट कम्पनी (As·ociated Cement Company) नाम से बना लिया है। सीमेंट का धंधा भारतवर्ष में अच्छी अवस्था में है और यहाँ अच्छा सीमेंट तैयार होता है। सीमेंट के कारखानों को केवल एक ही अड़चन है, कोयले की खानों का दूर होना। अभी हाल में सिंध, बिहार तथा अन्य प्रान्तों में भी सीमेंट के कारखाने खुले हैं।

शीशे का धंधा

शीशे का धंधा हिन्दोस्तान का बहुत पुराना धंधा है। सैकड़ों वर्षों से शीशे की चूड़ियाँ और शीशियाँ यहाँ बनती रही हैं। अब भी बहुत से स्थानों पर यह घरेलू-उद्योग-धंधे (Cottage-Industry) के रूप में होते हैं किन्तु आधुनिक ढंग के कारखाने पिछले चालीस वर्षों में खुले हैं।

शीशा बनाने के लिए रेत, सोडा, चूना और राख की आवश्यकता होती है। आरम्भ में जो भी कारखाने खोले गए वे नहीं चल सके क्योंकि शीशे के योग्य रेत नहीं मिली। अभी थोड़ा समय हुआ बंगाल की राजमहल पहाड़ियों में, संयुक्तप्रान्त में

नैनी के समीप लोघरा और बरगढ़ स्थानों में, बीकानेर तथा बड़ौदा राज्यों में, उपयुक्त रेत मिली है। अधिकतर रेत के पत्थर मिलते हैं जिन्हें पीस लिया जाता है। सन् १९०५ से १९१३ तक बहुत से कारखाने खोले गए किन्तु वे चल न सके। आरम्भ में केवल साधारण शीशे के बर्तन, शीशियाँ तथा चिमनी इत्यादि ही यहाँ तैयार होती थीं। वैज्ञानिक अपरेटस् तथा खिड़कियों के लिए शीशे (Glass pan) तथा ग्लास शीट, यहाँ तैयार नहीं हो पाते थे। अब कुछ कारखाने इन वस्तुओं को तैयार करने लगे हैं। हिन्दोस्तान में एक दर्जन से कुछ अधिक शीशे के कारखाने हैं। बम्बई, जबलपूर, इलाहाबाद (नैनी), बहजोई, अम्बाला, लाहौर और कलकत्ता इसके केन्द्र हैं।

महायुद्ध के समय बहुत से कारखाने ऐसे स्थानों पर खोल दिए गए जहाँ आवश्यक कच्चे माल की सुविधा नहीं थी। इस दृष्टि से नैनी का कारखाना बहुत अच्छे स्थान पर स्थापित किया गया है। शीशे के कारखानों को कुछ असुविधायें हैं जैसे कोयले का महँगा होना, (यदि बिजली सस्ते दामों पर मिल सके तो यह असुविधा दूर हो सकती है) कुशल कारीगरों की कमी, (शीशे के धंधे में कुशल कारीगर ही काम कर सकते हैं) और रेलों के द्वारा माल भेजने की असुविधा। (रेलवे कंपनियाँ माल भेजने के लिए विशेष प्रबंध नहीं करतीं) इन कारखानों के खुल जाने पर भी हिन्दोस्तान में विदेशों से विशेष कर जापान, ब्रिटेन, जर्मनी, बैल्जियम और चेकोस्लोवाकिया से बहुत सा शीशे का माल आता है।

आधुनिक ढंग के कारखानों के अतिरिक्त संयुक्तप्रान्त के फीरोजाबाद और दक्षिण में बेलगाँव केन्द्र में पुराने ढंग से चूड़ियाँ बनाने का धंधा होता है। इन केन्द्रों से हिन्दोस्तान भर में चूड़ियाँ भेजी जाती हैं और सैकड़ों घर चूड़ियाँ बनाने में लगे हुए हैं।

नमक

नमक एक अत्यन्त आवश्यक भोज्य पदार्थ है। हिन्दोस्तान में नमक तीन तरह से निकाला जाता है। अधिकांश नमक बम्बई, मद्रास, और बर्मा के समुद्र तटों पर समुद्र के पानी को भाप बना-कर उड़ाने से प्राप्त होता है। राजपूताना की साँभर झील तथा अन्य छोटी छोटी झीलों से भी नमक निकाला जाता है। कोहाट और मंडी राज्य (पंजाब) में कुछ नमक की पहाड़ी हैं, अस्तु उनमें से नमक खोदा जाता है जिसे सेंधा नमक कहते हैं। कोहाट की पहाड़ियों में अनन्त राशि में नमक मौजूद है और प्रति वर्ष खेरवा (Kherwa) (कोहाट में) की खानों से बहुत सा नमक निकाला जाता है। नमक का धंधा सरकार ने अपने हाथ में रख छोड़ा है।

मिट्टी के बर्तन बनाने का धंधा (Pottery Works)

हिन्दोस्तान में मिट्टी के बर्तनों का बहुत उपयोग होता है। हर एक घर में थोड़े बहुत मिट्टी के बर्तन देखने को जरूर मिलते हैं। मिट्टी की सुराही, घड़ा, चिलम, हाँडी, कुल्हड़, तश्तरी तथा दावात हिन्दोस्तान के घर घर में काम लाई जाती हैं, और हर एक गाँव और शहर मे कुम्हार इस धंधे को करते हुए अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यद्यपि कहीं कहीं के कुम्हार सुंदर बर्तन और खिलौने बनाने के कारण प्रसिद्ध हो गए हैं, परन्तु साधारणतः कुम्हार तालाब या नदी की मिट्टी से अपने चाक पर इन बर्तनों को बनाकर और उन्हें आग में पक्का करके अपने गाँव या शहर में बेचते हैं। यह बर्तन शीघ्र टूटने वाले होते हैं और हिन्दुओं की रीति के अनुसार एक बार उनका खाने या पीने में काम आ जाने पर फेंक दिए जाते हैं। बर्तन इतने सस्ते दामों पर बिकते हैं कि इनके बनाने के लिए कोई बड़ा कारखाना नहीं खोला जा सकता।

चीनी मिट्टी के बर्तन

कुछ समय से चीनी मिट्टी के बर्तनों का भी उपयोग बढ़ने लगा है और यह धंधा बड़े पैमाने पर चलाया जा सकता है। चीनी मिट्टी के बर्तनों के कारखाने (Pottery Works) के लिए अच्छी मिट्टी का समीप ही पाया जाना, कोयले के मिलने की सुविधा, तथा रेलवे की सुविधा आवश्यक है। हिन्दोस्तान के कुछ प्रान्तों में अच्छी मिट्टी बहुतायत से मिलती है, इसी कारण बहुत से चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के कारखाने खुल गए हैं। कलकत्ता, रानीगंज और झरिया तथा ग्वालियर में बहुत से कारखाने हैं। कलकत्ता तथा रानीगंज और झरिया के कारखाने बहुत बड़ी राशि में बर्तन तैयार करके देश को देते हैं।

ईंट बनाने का धंधा

हिन्दोस्तान में ईंटों का इमारतों में बहुत उपयोग होता है। हर एक शहर और क़स्बे के पास ईंटों के भट्टे दिखलाई देते हैं। इन भट्टों में अधिकतर मज़दूर ईंटें हाथ से तैयार करते हैं और उन्हें भट्टी में पकाते हैं। बंगाल और बिहार के भट्टों में अधिकतर कोयले का उपयोग होता है, किन्तु संयुक्तप्रान्त तथा पंजाब में लकड़ी का ही उपयोग अधिक होता है। इन भट्टों में अच्छी ईंटें तैयार नहीं हो सकतीं क्योंकि भट्टे शहर के पास ही होना चाहिये इस कारण मिट्टी अच्छी मिल जावे यह ज़रूरी नहीं है। कच्ची ईंटें धूप में पड़ी रहने के कारण चटक जाती हैं और हाथ से बनाये जाने के कारण उनके किनारे ठीक नहीं होते। मशीन से बनाई जाने वाली ईंटों में यह दोष नहीं होता किन्तु ईंट बनाने के बड़े बड़े भट्टे वहीं खड़े किए जा सकते हैं कि जहाँ अच्छी मिट्टी हो और कोयला और लकड़ी के मिलने की सुविधा हो। यह आवश्यक नहीं है कि ये सुविधायें शहर के पास ही मिल जावें। उस दशा में ईंटों का दूर से ढोने की

कठिन समस्या उठ खड़ी हो जाती है। मोटर लारी के अधिक उपयोग में लाए जाने का यह परिणाम हो सकता है कि शहरों से दूर मशीन से ईंटे तैयार करने का धंधा पनप उठे।

कोयला और मिट्टी के तेल

इस अध्याय में कोयले और मिट्टी के तेल के सम्बन्ध में इसलिए कुछ भी नहीं लिखा जारहा है क्योंकि इनके सम्बन्ध में "शक्ति के साधन" (Power-Resources) नामक अध्याय में विस्तार पूर्वक लिखा जायगा।

शोरा (Saltpetre)

शोरे का बहुत से धंधों में उपयोग होता है। शीशा बनाने में, भोजन को सुरक्षित रखने में, खाद में, तथा बारूद और विस्फोटक पदार्थ बनाने में इसका बहुत उपयोग होता है। भारतवर्ष में यह धातु केवल बिहार, संयुक्तप्रान्त और पंजाब में निकाला जाता है। पहले हिन्दोस्तान ही संसार को यह धातु भेजता था किन्तु सरकार के कर लगा देने में इसकी मांग विदेशों में कम हो गई। अब भी दस ग्यारह लाख रुपये के मूल्य का शोरा विदेशों को भेजा जाता है।

अन्य धातुयें

ऊपर लिखी हुई धातुओं के अतिरिक्त जेड (Jade), पोटाश (Potash), ऐम्बर (Amber), हीरा (Diamonds) लाल, और गंधक भी हिन्दोस्तान में मिलती हैं परन्तु ये धातुयें बहुत कम पाई जाती हैं इस कारण उनका अधिक महत्व नहीं है।

अभ्यास के प्रश्न

१—हिन्दोस्तान में लोहा कहाँ कहाँ पाया जाता है ?

२—लोहे के धन्धे का संक्षिप्त इतिहास लिखिए।

३—लोहे के धंधे की उन्नति के लिए किन किन चीज़ों की ज़रूरत होती है ?

४—मैंगनीज हिन्दोस्तान में कहाँ कहाँ मिलता है और उनका क्या उपयोग होता है ?

५—नमक किस प्रकार तैयार किया जाता है ? नमक का धंधा हिन्दोस्तान में कहाँ कहाँ होता है ?

६—सीमेंट किन चीज़ों से बनता है और किस काम आता है ?

७—हिन्दोस्तान में सीमेंट कहाँ बनता है ? इस समय इस धंधे की दशा कैसी है ?

८—शीशे के धंधे का संक्षिप्त इतिहास लिखिये और उसकी वर्तमान दशा क्या है यह बतलाइये ।

९—शीशे के धंधे की उन्नति के लिए किन चीज़ों की ज़रूरत होती है ?

१०—चीनी के बर्तन कहाँ बनते हैं और इस धंधे के लिए किन चीज़ों की जरूरत पड़ती है ?

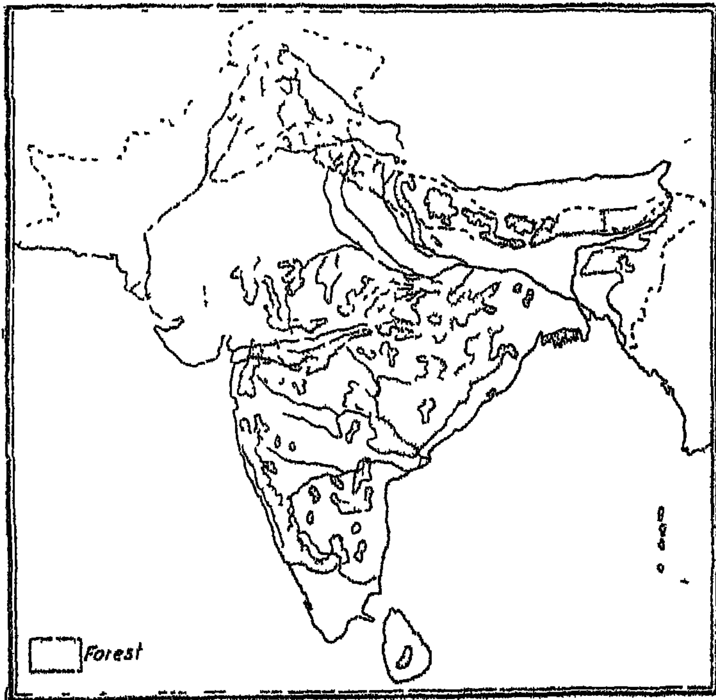
११—इमारत के लिए पत्थर हिन्दोस्तान में कहाँ से मिलता है ?

१२—चाँदी, सोना, अभ्रक और वोलफ्रम हिन्दोस्तान में कहाँ मिलते हैं ?

छठवाँ अध्याय

वन प्रदेश

जबकि मनुष्य समाज आदिम अवस्था में था इस पृथ्वी का



अधिक भाग वनों से ढका हुआ था। जैसे जैसे मनुष्य सभ्य होता

गया और उसकी संख्या बढ़ती गई वैसे वैसे जंगलों को काट कर मैदान साफ किये जाने लगे। जंगलों को इस प्रकार नष्ट करने का क्रम दो सौ वर्ष पूर्व तक बराबर चलता रहा। आज से दो सौ वर्षों से कुछ अधिक हुए, फ्रेंच तथा जर्मन वैज्ञानिकों ने अपनी खोज के आधार पर यह सत्य प्रकट किया कि आधुनिक उद्योग धंधे वनों के ऊपर इतने अधिक निर्भर हैं कि यदि वनों को नष्ट कर दिया गया तो ये धंधे चल ही न सकेंगे। यही नहीं उन्होंने इस बात का भी पता लगाया कि किसी देश के जलवायु का वहाँ के जंगलों से बहुत निकट सम्बन्ध है। यदि जंगल काट डाले गए तो उससे देश के जलवायु में हानिकर परिवर्तन होना जरूरी है। तभी से योरोप में वनों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया और प्रत्येक देश में जंगल विभाग (Forest Department) कायम किए गए।

बात भी ठीक है, आज प्रत्येक पढ़ा लिखा व्यक्ति यह जानता है कि जंगल हमारे लिए कितने लाभदायक हैं। जितनी अधिक आवश्यकता आज हमें जंगल की वस्तुओं की है उतनी कभी नहीं थी। बड़े बड़े शहरों में रहने वाले आज जितना जंगलों की चीजों का उपयोग करते हैं उतना जंगल में रहने वाली जंगली जातियाँ भी नहीं करती थीं।

जंगलों से होने वाले लाभ

जंगलों से हमें बहुत लाभ है, बहुमूल्य लकड़ी जिससे भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुयें बनती हैं जंगलों की ही उपज हैं। कागज, दियासलाई, खिलौने (लकड़ी के), तेल और वार्निश के धन्धे जंगल में उत्पन्न होने वाली लकड़ी या घासों पर निर्भर हैं। जंगल चारे का भण्डार है, जहाँ से जरूरत पड़ने पर पशुओं के लिए चारा मिलता है और पशुओं को पालने वाले अपने पशुओं को वहाँ

लेजा कर चराते हैं। लकड़ी के अतिरिक्त जंगलों से हमें बहुत तरह की वनस्पति तथा फल जो दवाइयों के काम आते हैं मिलते हैं। जंगल के पेड़ प्रति वर्ष बहुत सी पत्तियाँ पृथ्वी पर डाल देते हैं वे मिट्टी में मिल जाती हैं। इस प्रकार लगातार सैकड़ों वर्षों तक पत्तियों के मिट्टी में मिलते रहने से मिट्टी में वनस्पति का अंश बढ़ जाता है और वह उपजाऊ हो जाती है। वनों में बहुत से जंगली जानवर मिलते हैं जिनकी खाल और सींग का उपयोग किया जाता है।

ऊपर लिखे हुए लाभ तो प्रत्यक्ष लाभ हैं, परन्तु जंगलों से हमें बहुत अप्रत्यक्ष लाभ हैं जो अधिक महत्वपूर्ण हैं। जंगल पानी के बादलों को अपनी ओर खीचते हैं। जहाँ जंगल होता है वहाँ वर्षा अधिक और निश्चित रूप से होती है। ईजिप्ट के नील नदी के डेल्टा में पहले वर्ष भर में वर्षा के दिनों का औसत ६ दिन था किन्तु करोड़ों की संख्या में वृक्ष लगाने से वहाँ अब वर्ष में बरसात के दिनों का औसत चालीस है। यदि जङ्गल साफ कर दिये जावें तो पानी कम बरसेगा और समय पर नहीं बरसेगा। पेड़ों की जड़ें सारे वनप्रदेश को एक बहुत बड़े स्पंज के समान बना देती हैं? इसका लाभ यह होता है कि जब पानी बरसता है तो वन प्रदेश बरसात के पानी को खूब सोख लेता है और पृथ्वी के अन्दर बहने वाले जलस्रोत में हर साल और पानी मिलता रहता है। यदि जंगल साफ कर दिए जावें तो पृथ्वी बहुत कम जल सोख सके और मैदान में पानी बहुत गहरे पर मिलने लगे। किसानों ने सिंचाई के लिए जो कुएँ बनवाये हैं वे बेकार हो जावें। पहाड़ों पर वन खड़े होने से एक और भी बहुत बड़ा लाभ होता है, वे बरसात के पानी को तथा नदियों को मनमाने ढंग से नहीं बहने देते। यदि पहाड़ों पर वन न हों तो वर्षा का पानी बड़े वेग से मैदानों की तरफ दौड़े, इसका फल भयंकर होता है। बड़े बड़े चट्टान

कट कर रास्ते रोक देते हैं, इन चट्टानों के लुढ़कने से बहुत हानि होती है। बहुत से आदमी मर जाते हैं। केवल यही हानि नहीं होती मैदानों में भीषण बाढ़ आ जाती है। पहाड़ों में नदियों के किनारे पेड़ों के न होने से मैदान में नदियाँ मनमाने ढंग से अपनी धार बदलती हैं, कटाव करती हैं और इनमें भीषण बाढ़ आती है। चीन ने अपने पहाड़ों के जंगलों को साफ कर दिया उसका फल आज वह बाढ़ों के द्वारा त्रस्त हो कर सह रहा है। हर साल लाखों स्त्री-पुरुष बे घर बार हो जाते हैं और बहुत से मर जाते हैं। वनों से एक लाभ और भी यह होता है कि वे प्रति दिन हवा में बहुत सा जल देते रहते हैं जिससे गरमियों में आस पास का प्रदेश ठंढा रहता है। एक विद्वान ने ठीक ही कहा है कि जंगल देश की बहुमूल्य सम्पत्ति हैं और हमें अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उनकी नितान्त आवश्यकता है।

भारत के वनप्रदेश

अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत में बहुत जंगल थे। किन्तु अंग्रेजों के शासन काल में जनसंख्या के बढ़ने के कारण लकड़ी की माँग बढ़ गई और खेती के लिए भी अधिक भूमि की आवश्यकता हुई अतएव बहुत से जंगल साफ कर दिए गए। सिपाही विद्रोह (गदर) के बाद सरकार ने वनों का महत्व समझा और जंगलों की रक्षा करने की आवश्यकता का अनुभव किया। तभी जंगल विभाग (Forest Department) प्रान्तों में खोले गए। तब से हर एक प्रान्त में जंगल विभाग जंगलों की देख भाल करते हैं। जंगल विभाग ने जंगलों को चार किस्मों में बाँटा है १—वे जंगल जिनका जलवायु तथा देश की प्राकृतिक अवस्था को देखते हुए सुरक्षित रहना आवश्यक है। २—दूसरे प्रकार के वे जंगल हैं जिनसे बहुमूल्य व्यापारिक लकड़ी मिलती है। ३—तीसरे प्रकार के वे जंगल हैं

जिनमें घटिया लकड़ी उत्पन्न होती है, यदि उनमें बढ़िया लकड़ी मिलती भी है तो बहुत कम। ४—चौथे प्रकार के जंगल केवल नाम मात्र के जंगल हैं, अधिकतर उनमें केवल थोड़े से पेड़ और घास ही होती है।

हिन्दोस्तान और बर्मा को मिलाकर देश में लगभग एक चौथाई भूमि प्रान्तों के जंगल विभागो के अधीन है। परन्तु भिन्न भिन्न प्रान्तों में जंगलों से ढकी हुई भूमि बराबर नहीं है। किसी किसी प्रान्त, जैसे आसाम में जंगल बहुत अधिक हैं और किसी किसी प्रान्त में जैसे पंजाब में जगल आवश्यकता से बहुत कम हैं। यही नहीं बहुत सी भूमि जो कि जंगल मान ली गई है केवल घास उत्पन्न करती है, इस कारण कुछ प्रान्तों में लकड़ी की बहुत कमी है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि जंगल विभाग ने जंगलों को उनके उपयोग के अनुसार भिन्न भिन्न श्रेणियों में बाँट दिया है। जो जंगल जलवायु की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं उन्हें रिज़र्वड वन (Reserved Forest) कहते हैं, इनमें पशुओं को चरने नहीं दिया जाता। दूसरे प्रकार के जंगलों को रक्षित-वन (Protected Forest) कहते हैं। इन जंगलों में मनुष्यों को अपने पशुओं को चराने तथा लकड़ी काटने की सुविधायें दी जाती हैं परन्तु उनपर कड़ी देख-भाल रहती है, जिससे जंगलों को नुकसान न पहुँचे। शेष जंगलों को अनक्लास्ड (Unclassed) फारेस्ट कहते हैं, इनमें लकड़ी काटने और पशुओं के चराने पर कोई रोक थाम नहीं है केवल सरकार कुछ फीस लेती है।

हिन्दोस्तान एक बहुत बड़ा देश है इसलिए यहाँ बहुत तरह के जंगल मिल सकते हैं. किन्तु निम्नलिखित प्रकार के जंगल मुख्य हैं।

सूखे वन-प्रदेश

यह वन उन प्रदेशों में पाये जाते हैं जहाँ वर्षा २०" इंच से कम होती है। इस प्रकार के वन अधिकतर राजपूताना, सिंध, दक्षिण पंजाब और बिलोचिस्तान में पाये जाते हैं। इन वनों में बबूल अधिक पाया जाता है।

सदा हरे रहने वाले वन (Ever Green Forest)

यह वन उन प्रदेशों में पाये जाते हैं जहाँ वर्षा बहुत होती है। दक्षिण प्रायद्वीप का पश्चिमी समुद्र तट, पूर्वी हिमालय का प्रदेश और आसाम का वह प्रदेश जहाँ कि वर्षा अधिक होती है इन वनों से भरे हैं। इन जंगलों में वनस्पति बहुत सघन होती है। बाँस और बेंत इनमें बहुतायत से पाये जाते हैं।

पर्वतीय वन (Mountain Forest)

इन वनों में वृक्ष पहाड़ की ऊँचाई और वर्षा के अनुसार भिन्न होते हैं। मध्य तथा उत्तर पश्चिमी हिमालय में ऊँचाई के अनुसार एक से वृक्ष पाये जाते हैं। यह वन संयुक्तप्रान्त, पंजाब, काश्मीर तथा सीमाप्रान्त में हैं। भारतवर्ष के ये वन बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये बहुत अच्छी लकड़ी उत्पन्न करते हैं। इनमें पाये जाने वाले वृक्षों में कुछ का विवरण नीचे दिया जाता है।

देवदार

इस पेड़ की लकड़ी बहुत अच्छी होती है इसकी लकड़ी से रेलवे स्लीपर बनते हैं और तेल निकाला जाता है।

पाइन

पाइन बहुत तरह का होता है। इसकी लकड़ी से फरनीचर बनता है, और तारपीन का तेल तथा बीरोजा (Turpentine and Resin) तैयार किया जाता है।

स्प्रूस

स्प्रूस का वृक्ष बहुत बड़ा होता है, इसकी ऊँचाई डेढ़ सौ फुट तक होती है। इस वृक्ष की लकड़ी संयुक्तराज्य अमेरिका तथा अन्य देशों में अधिकतर कागज बनाने के काम आती है, परन्तु हिन्दोस्तान में अभी तक इसका उपयोग इस धंधे में नहीं हुआ है।

सफेद सनोवर (Silver Fir)

इस वृक्ष की लकड़ी भी स्प्रूस की तरह ही होती है।

इनमें से बहुत से वनों को अभी तक छुआ भी नहीं गया है। यदि इनकी लकड़ी का उपयोग किया जावे तो बहुत से धंधे इन प्रदेशों में पनप सकते हैं। इन जंगलों में देवदार के साथ बलूत (Oak) के जंगल भी पाये जाते हैं।

पूर्वी हिमालय के वन जो कि आसाम और बर्मा में हैं मध्य और उत्तम पश्चिमी हिमालय के वनों से भिन्न हैं। इनमें बलूत (Oak), सुनहली लकड़ी का पेड़ (Mangolias), लारेल (Laurels) और खासिया पाइन बहुत मिलता है।

पतझड़ वाले वन (Deciduous Forest)

इन वनों में ऐसे वृक्ष हैं कि जो वर्ष में कुछ समय के लिए बिना पत्तियों के हो जाते हैं। ये वन भारतवर्ष में बहुतायत से पाये जाते हैं। हिमालय का निचला प्रदेश (Sub-Himalyan Tract) दक्षिण प्रायद्वीप, और बर्मा में इस प्रकार के वन बहुत हैं। इन वनों में नीचे लिखे हुए वृक्ष मिलते हैं।

साल (Sal)

यह बहुत मूल्यवान वृक्ष होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है, इसी कारण इसका अधिकतर उपयोग इमारतों

और रेल के डिब्बों को बनाने में होता है। हिमालय के निचले प्रदेश (तराई) के अतिरिक्त साल बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रान्त और बरार के जगलों में भी बहुत मिलता है।

सागवान (Teak)

सागवान भी बहुत मूल्यवान पेड़ है, इसकी लकड़ी भी बहुत मजबूत होती है, अधिकतर बर्मा और मदरास के जगलों में पाया जाता है।

साल और सागवान के अतिरिक्त इन जगलों में शीशम, हलदू, खैर और बबूल मुख्य वृक्ष हैं।

समुद्र तट के वन

ये बन अधिकतर समुद्र से निकली हुई भूमि पर ही मिलते हैं, इनकी लकड़ी अधिक उपयोगी नहीं होती इस कारण ये केवल ईंधन के ही काम आते हैं।

ऊपर के विवरण से यह तो मालूम ही हो गया होगा कि भारतवर्ष वनों की दृष्टि से धनी देश है। यहाँ के वनों में बहुमूल्य लकड़ी उत्पन्न होती और तरह तरह की अन्य बहुमूल्य वस्तुयें मिलती हैं। परन्तु जिस प्रकार अन्य देशों में वनों की सम्पत्ति का खूब उपयोग किया जाता है और बहुत से धंधे वनों पर निर्भर रहकर चलते हैं वह बात हिन्दुस्तान में नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारतवर्ष के जगल अधिकतर ऊँचे पहाड़ों पर हैं। बहुत से वन तो ऐसे हैं कि जिनके विषय में हमारे जगल विभाग भी कुछ नहीं जानते। उन ऊँचे पर स्थित सघन बनों की लकड़ी खड़ी खड़ी व्यर्थ में नष्ट हो जाती है, उसका कोई उपयोग ही नहीं होता। इसका कारण यह है कि हमारे वनों में गमनागमन के साधन बहुत कम उपलब्ध हैं। ऊँचे और सघन वनों की लकड़ी को नीचे मैदानों में लाने के लिए नदियों, सड़कों,

ट्राम, तार के रस्सों का रास्ता, तथा लकड़ी के शहतीरों को खींचने वाले छोटे छोटे ऐंजिनों का अन्य देशों में खूब उपयोग होता है। परन्तु भारतवर्ष में लकड़ी को पहाड़ से मैदान में लाने की सुविधायें बहुत कम हैं इस कारण हमारे जंगलों का ठीक उपयोग नहीं हो पाता। अब सरकार इस ओर प्रयत्न कर रही है। किन्तु केवल गमनागमन के साधन उपलब्ध हो जाने से ही वन-उद्योग-धंधों की उन्नति नहीं हो सकती। जब तक व्यवसायियों और पूंजीपतियों को यह न मालूम हो जावे कि हमारे जगलों में पाई जाने वाली लकड़ी का क्या उपयोग हो सकता है तब तक धंधे कैसे चलाये जा सकते हैं। अभी तक जंगल विभाग की बहुत सी लकड़ियों के सम्बन्ध में यह भी ज्ञान नहीं था कि उनका उपयोग किस धंधे में हो सकता है। फिर जंगल विभाग व्यवसायियों को क्या सलाह दे सकता था? इस कमी को पूरा करने के लिए सरकार ने देहरादून में एक फारेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट (Forest Research Institute) स्थापित की है, जहाँ विशेषज्ञ हिन्दोस्तान के जंगलों में पाई जाने वाली लकड़ियों का क्या व्यावसायिक उपयोग हो सकता है इसका अनुसंधान करते रहते हैं।

वन-उद्योग-धंधे

हिन्दोस्तान के जंगल प्रतिवर्ष बहुत अधिक मूल्य की लकड़ी, घास, फल, बीज, पत्तियाँ तथा अन्य प्रकार की वस्तुयें, देते हैं। इनमें से कुछ का उपयोग कुछ धंधों में होता है। हम यहाँ वन धन्धों का हाल लिखते हैं कि जो अपने कच्चे माल के लिए वनों पर निर्भर हैं।

तारपीन का तेल और बीरोज़ा (Pine Resin Industry)

पाइन का रेज़िन (Resin) पाइन के पेड़ में गहरे खाँचे काट कर पीपों में इकट्ठा कर लिया जाता है। इसका उपयोग तारपीन

का तेल निकालने तथा बीरोजा बनाने के अतिरिक्त लाख, कागज, साबुन, ग्रामोफोन रेकार्ड, छापने की स्याही, आयल क्लाथ, तथा बिजली के काम में होता है। पाइन रेजिन गाढ़ा रस भी होता है। उसको साफ करके तारपीन का तेल निकालते हैं और बीरोजा बच जाता है। पहले हिन्दोस्तान में तारपीन का तेल और बीरोजा विदेश से ही आता था। संसार का ६५ प्रतिशत तारपीन का तेल और बीरोजा संयुक्तराज्य अमेरिका और फ्रांस में तैयार होता है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में संयुक्त-प्रान्त तथा पंजाब के जगलों में फ्रैंच पद्धति के अनुसार पाइन के जंगलों से रेजिन इकट्ठा किया गया और प्रान्तीय सरकारों ने तारपीन का तेल निकालने के कारखाने स्थापित किये। इसका फल यह हुआ कि अब देश के बने हुए कारखानों से ही तारपीन की सारी माँग पूरी हो जाती है। बाहर से तारपीन का तेल लगभग नहीं आता। हिन्दोस्तान में बना हुआ तारपीन का तेल बहुत अच्छा होता है, यदि विदेशों में विज्ञापन किया जावे तो हिन्दोस्तान के बने हुए तारपीन के तेल की माँग विदेशों में भी बहुत हो सकती है। ब्रिटिश साम्राज्य में हिन्दोस्तान ही ऐसा देश है जो तारपीन का तेल और बीरोजा तैयार करता है। संयुक्तप्रान्त मे बरेली में टरपैन्टाइन फैक्टरी है जो तारपीन का तेल और बीरोजा बनाती है। पंजाब में भी तारपीन का तेल बनाने का कारखाना है।

कागज़ का धंधा

कागज बनाने का धंधा हिन्दोस्तान में बहुत पुराना है और अब भी बहुत से स्थानों पर हाथ से कागज बनाया जाता है। (संयुक्तप्रान्त में कालपी और मथुरा में हाथ का कागज बनता है) किन्तु कागज़ बनाने के आधुनिक ढंग के कारखाने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में स्थापित हुए।

कागज़ बनाने के लिये हिन्दोस्तान की मीलें अधिकतर सबाई तथा भाबर घास का, जो बंगाल, छोटा नागपुर, उड़ीसा, नेपाल तथा संयुक्तप्रान्त में मिलती हैं उपयोग करती हैं। इन घासों के अतिरिक्त फटे पुराने कपड़े, सन, जूट, जूट के बोरे, रद्दी कागज़ और पुरानी रस्सियाँ इत्यादि का भी कागज़ की लुब्दी बनाने में उपयोग होता है। ऊपर लिखी हुई चीज़ों को मशीन से छोटे छोटे टुकड़े करके पानी में गलाया जाता है और मसालों के द्वारा उस लुब्दी को तैयार किया जाता है। लुब्दी बन जाने पर उसे बड़े बड़े रोलरों में दबा कर कागज़ बनाया जाता है। भारतवर्ष में अभी तक बहुत बढ़िया कागज़ तैयार नहीं होता। जो कुछ भी बढ़िया कागज़ तैयार होता है उसके लिये लकड़ी की लुब्दी विदेशों से मंगानी पड़ती है। भारतवर्ष के जंगलों में स्प्रूस और सफेद सनोवर (silver fir) बहुत पाया जाता है। और इन्हीं पेड़ों की लकड़ी से बढ़िया कागज़ तैयार होता है, परन्तु जंगलों में लकड़ी नीचे लाने की सुविधा न होने के कारण उनका उपयोग कागज़ बनाने के लिए नहीं हो पाता। अभी कुछ वर्ष हुए देहरादून की फारेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट में बाँस और एलिफैंट (Elephant) घास के विषय में अनुसंधान किया गया, और विशेषज्ञों ने बाँस और एलीफैंट घास से सफलता पूर्वक अच्छा कागज़ तैयार कर लिया। बाँस बम्बई, चीटगाँव और बर्मा में बहुतायत से उत्पन्न होता है। बहुत से नये कारखानों ने बाँस की लुब्दी बनाना आरम्भ कर दिया है। बाँस की लुब्दी से कागज़ तो बहुत अच्छा बनता है किन्तु खर्चा कुछ ज्यादा होता है। इस कारण अभी इसका अधिक उपयोग नहीं होता। भविष्य में आशा है कि बाँस और एलीफैंट घास का कागज़ बनाने में उपयोग होगा। एलीफैंट घास आसाम, बंगाल, बर्मा और संयुक्त-प्रान्त के वनों में बहुतायत से उत्पन्न होती है। एलीफैंट घास

से लुब्दी बनाने में खर्चा भी अधिक नहीं पड़ता है इस कारण भविष्य में इसका उपयोग होगा।

हिन्दोस्तान में सबसे पहला कागज का कारखाना बैली पेपर मिल हुगली नदी पर १८७० में स्थापित की गई। क्रमशः टीटागढ़ तथा अन्य कागज के कारखाने भी बाद को वहाँ पर स्थापित किये गए। टीटागढ़ पेपर मिल्स बहुत सफलता पूर्वक कार्य कर रही है। अभी थोड़ा समय हुआ निहाटी में इण्डियन-पेपर-पल्प-प्राइवेट कंपनी ने बाँस से लुब्दी बनाने का काम शुरू किया है। हुगली के समीपवर्ती यह भाग कागज के धन्धे का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अतिरिक्त आसाम और चीटागाँव में भी बाँस से लुब्दी बनाकर कागज बनाने के लिए दो नये कारखाने खोले गये किन्तु अधिक सफल नहीं हुए। बंगाल के अतिरिक्त बम्बई, पंजाब, ट्रावंकोर, मैसूर में भी कागज के कारखाने खोले गए हैं। उत्तर भारत में लखनऊ और रानीगंज की पेपर मिल्स उल्लेखनीय हैं।

जैसे जैसे भारतवर्ष में शिक्षा बढ़ती जावेगी कागज की माँग तो बढ़ेगी ही और कागज की लुब्दी बनाने के लिए देश में बहुत सी घासें, लकड़ी और बाँस मौजूद ही हैं। ऐसी दशा में यह धन्धा भविष्य में अवश्य उन्नति करेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है। फिर भी अभी तक बहुत सा कागज देश में बाहर से ही आता है। सरकार ने देश के कागज के धन्धे के प्रोत्साहन देने के लिए विदेशों से आने वाले कागज पर संरक्षण टैक्स (प्रटेक्टिव ड्यूटी) लगा दिया है।

लाख

लाख की संसार में बहुत माँग है क्योंकि यह बहुत से धन्धों में काम आती है। लाख को उत्पन्न करने वाले छोटे छोटे कीड़े

होते हैं जो कि कुछ पेड़ों के रस को चूस कर लाख उत्पन्न करते हैं। लाख का कीड़ा अधिकतर कुसुम, पलास, बेर, पीपल, बरगद, गूलर, फालसा, बबूल, और कोठन की नरम डालों पर लाख उत्पन्न करता है। बहुत से स्थानों पर लाख पेड़ों पर जगली अवस्था में पाई जाती है, जिन स्थानों पर लाख का कीड़ा बिना पाले हुए मिले उस स्थान को लाख के लिए अधिक उपयुक्त समझा जाता है। परन्तु अधिकतर लाख को उत्पन्न करना पड़ता है। कहीं कहीं लाख उत्पन करना गाँव वालों का एक मुख्य धन्धा हो गया है। लाख उत्पन्न करने के लिए ऊपर लिखे हुए पेड़ों में ऐसी छोटी छोटी लकड़ियाँ बाँध दी जाती हैं जिनमें लाख के कीड़ों के बीज होते हैं। ये कीड़े जो लाल होते हैं शीघ्र ही सारे पेड़ पर फैल जाते हैं। जून और नवम्बर में नवीन पेड़ों पर लाख का कीड़ा फैलाया जाता है और फसल ६ महीने बाद इकट्ठी कर ली जाती है। जब लाख पेड़ों पर से इकट्ठी कर ली जाती है तो उसे पीस कर चलनियों से छान लिया जाता है, जिससे कि लाख साफ हो जावे। फिर लाख को कई बार धोया जाता है जिससे कि लाख का रंग धुल जावे और केवल लाख रह जावे।

भारतवर्ष ही संसार में ऐसा देश है जो लाख उत्पन्न करता है। प्रति वर्ष आठ करोड़ रुपए की लाख यहाँ से विदेशों को जाती है। सब से अधिक लाख उड़ीसा प्रान्त उत्पन्न करता है। लाख उत्पन्न करने वाले प्रदेशों में उड़ीसा, बिलासपुर, संथाल परगना, सिंहभूमि, छोटा नागपुर के जिले मोरभंज राज्य, सारन और मध्य प्रान्त हैं।

कत्था

कत्था की भारतवर्ष में सर्वत्र माँग है। यह खैर नामक पेड़ की लकड़ी से बनता है। हिमालय की तराई में तथा बर्मा में खैर का पेड़ बहुतायत से उत्पन्न होता है। खैर की लकड़ी से दो चीजें

तैयार होती हैं—कत्था और कच। कत्था सारा का सारा हिन्दोस्तान में ही खा लिया जाता है, क्योंकि पान खाने की आदत यहाँ सभी को है। यद्यपि पान में बहुत थोड़ा कत्था लगता है फिर भी हजारों टन कत्था प्रति वर्ष खप जाता है। अस्तु कत्था तो विदेशों को बिलकुल नहीं भेजा जाता किन्तु कच (खाकी कत्थे का रंग) सारा का सारा योरोप को भेज दिया जाता है जहाँ उसका कपड़ा रंगने में उपयोग होता है।

कत्था बनाने के लिए खैर की लकड़ी के छोटे छोटे टुकड़े कर लिए जाते हैं और उन्हें बड़े बड़े बर्तनों में उबाला जाता है। उबले हुए पदार्थ को छान कर कत्था और कच (रंग) अलग कर लिया जाता है। बरेली में कत्था बनाने का एक आधुनिक ढंग का बड़ा कारखाना भी है।

८ दियासलाई

दियासलाई बनाने के पहले लोग चकमक पत्थर से आग जलाते थे, किन्तु जब से दियासलाई बनने लगीं तबसे चकमक पत्थर का उपयोग इस काम के लिए नहीं होता। क्योंकि उसमें आग जलाने में बहुत कठिनाई होती थी। आज निर्धन और धनी सभी दियासलाई का आग जलाने के लिए उपयोग करते हैं।

हिन्दोस्तान में दियासलाई बनाने के लिए सभी आवश्यक वस्तुयें मौजूद हैं। हिन्दोस्तान के वनों में दियासलाई के लिए उपयुक्त लकड़ी पर्याप्त मात्रा में मिलती है और कम मजदूरी पर मजदूर हिन्दोस्तान में चाहे जितने मिल सकते हैं। फिर भारतीय पूँजीपतियों (व्यवसायियों) ने दियासलाई के कारखाने खोलने का साहस नहीं किया। इसका मुख्य कारण यह है कि भारतवर्ष में दियासलाई के कारखानों का संगठन करने वाले विशेषज्ञ नहीं मिलते और भारतीय वनों में स्प्रूस और स्फेद सनोवर जो

दियासलाई के लिए बहुत उपयुक्त लकड़ी है जंगलों में गमनागमन के साधन न होने से ऊँचे पर से मैदानों में नहीं लाई जा सकती। यही कारण है कि भारतीय व्यवसायियों ने इस धंधे में अपनी पूँजी लगाने का साहस नहीं किया। इसका फल यह हुआ कि स्वीडन के व्यवसायी जो अपने देश में बहुत समय से दियासलाई के कारखानों को चला रहे थे यहाँ आये, और हिन्दोस्तान में भी अपने दियासलाई के कारखाने स्थापित कर दिए। बम्बई, बरेली, बिलासपूर, खुलना और कलकत्ता में दियासलाई के कारखाने खुले हुए हैं। खुलना और कलकत्ते के कारखानों में सुन्दरवन की लकड़ी काम में आती है। शेष कारखानों में सेमल की लकड़ी का उपयोग होता है। भौगोलिक परिस्थिति को देखते हुए संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, बर्मा और आसाम के पहाड़ी जंगलों के समीपवर्ती जिलों में दियासलाई के कारखाने स्थापित किए जा सकते हैं।

दियासलाई के धन्धे का भविष्य बहुत आशाजनक है क्योंकि देश में लकड़ी और मजदूरों की कमी नहीं है, साथ ही इस विशाल देश की जनसंख्या इतनी अधिक है कि दियासलाई की खपत यहाँ बेहद होती है। हिसाब लगाने से पता चलता है कि इस देश में हर एक व्यक्ति वर्ष भर में सात दियासलाई की डिबियाँ खर्च करता है। १९२१ तक भारतवर्ष लगभग दो करोड़ रुपये की दियासलाई मुख्यत: जापान और स्वीडन से मंगाता था किन्तु अब बहुत कम दियासलाई बाहर से आती है। अधिकतर देश में चलने वाले कारखाने ही माँग पूरी कर देते हैं। परन्तु एक बात ध्यान में रखने की है कि यहाँ जितने भी दियासलाई के कारखाने हैं वे सभी विदेशी व्यवसायियों के हैं। सारा का सारा लाभ उन्ही को मिलता है इस दृष्टि से वे भी विदेशी ही हैं।

चमड़े कमाने के लिए आवश्यक पदार्थ (Tanning Materials)

भारतीय जंगल चमड़ा कमाने के लिए आवश्यक चीजें भी उत्पन्न करते हैं। मेरीबोलन्स का फल चमड़ा कमाने के लिए बहुत उपयोगी चीज है जो कि हिन्दोस्तान के जंगलों में बहुत पैदा होता है और प्रति वर्ष लगभग सत्तर लाख रुपए के मेरीबोलन्स (Myrobolans) विदेशों को भेजे जाते हैं। इस फल के अतिरिक्त बबूल की छाल और तुरवद पेड़ की छाल का चमड़ा कमाने में बहुत उपयोग होता है। तुरवद का वृक्ष दक्षिण और पश्चिम में पाया जाता है।

ऊपर के विवरण से यह तो ज्ञात हो गया होगा कि हिन्दोस्तान में वन-सम्पत्ति अपार है परन्तु उसका ठीक ठीक उपयोग नहीं हो रहा है। जब कभी इसका ठीक उपयोग होगा तब देश में बहुत से वन-उद्योग-धन्धे पनप उठेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारतवर्ष के बनों से हमें क्या क्या मिलता है?

२—वनों से हमें कौन से लाभ होते हैं?

३—पहाड़ों पर खड़े हुए वन यदि काट डाले जावें तो उसका क्या परिणाम होगा?

४—हिन्दुस्तान में सरकारी विभाजन के अनुसार कितने प्रकार के वन हैं?

५—हिमालय के वनों में कौन से पेड़ मिलते हैं और उनका क्या उपयोग होता है?

६—पतझड़ वाले वनों में कैसी लकड़ी पैदा होती है? उनके नाम लिखो।

७—हिन्दोस्तान के वनों का ठीक ठीक उपयोग क्यों नहीं हो पाता?

८—कागज़ किन चीज़ों से बनाया जाता है ? क्या वे चीज़ें हिन्दोस्तान में मिलती हैं ?

९—कागज़ के धन्धे की इस देश में कैसी दशा है ?

१०—दियासलाई के धन्धे के लिए किन चीज़ों की जरूरत होती है ? हिन्दोस्तान में दियासलाई के कारखाने कहाँ कहाँ हैं ?

११—लाख किस तरह पैदा की जाती है और उसका उपयोग किस काम में होता है ?

१२—भारतवर्ष में लाख कहाँ कहाँ अधिक उत्पन्न होता है ?

१३—कत्था किस चीज से बनता है ? हिन्दोस्तान में कत्था कहाँ तैयार होता है ?

१४—दियासलाई के धन्धे के विषय में क्या जानते हो ?



सातवाँ अध्याय

शक्ति के साधन

शक्ति और उसके साधन

यह तो तुमको मालूम ही है कि रेलगाड़ी कोयला और पानी से चलती है। समुद्र में चलने वाले जहाज भी कोयले से ही अपना काम निकालते हैं। मिल और कारखानों में मशीन चलाने के लिए कोयले और पानी का उपयोग किया जाता है। हाँ, यह बात जरूर है कि बिजली के चल जाने से अब इसी को काम में लाया जाता है। परन्तु बिजली को पैदा करने में तो कोयला-पानी ही खर्च होता है। कोयले को जला कर पानी को भाप में बदला जाता है और भाप बिजली पैदा करने वाली मशीन को घुमाती है। अब तो मशीन को घुमाने का काम तेजी से बहते हुए पानी से लिया जाने लगा है। जहाँ तहाँ बाँध (Dam) बना कर पानी को ऊपर से सैकड़ों फुट नीचे गिराया जाता है। नीचे आते आते पानी की चाल काफी तेज हो जाती है। इस पानी के दबाव के कारण मशीन घूमने लगती है। परन्तु मोटर या हवाई जहाज का एंजिन चलाने के लिए न तो कोयला काम आता है, और न पानी और न बिजली ही। मोटर में पेट्रोल नामक तेल का उपयोग किया जाता है। हवाई जहाज में भी पेट्रोल ही खर्च होता है। इनके अलावा जानवरों से भी मशीनें चलवाई जाती हैं। कोयले की जगह लकड़ी भी काम में लाई जा सकती है।

अस्तु, कोयला, पानी, पेट्रोल आदि क्या काम करते हैं? दर असल हम इनसे किसी तरह की मशीन चलाने में मदद लेते हैं।

कोयले को जला करके पानी को भाप में बदलते हैं, भाप के जोर से पहिए चलाए जाते हैं। पानी को ऊपर से गिरा कर मशीन चलाने के लिए दबाव उत्पन्न किया जाता है। पेट्रोल के जलाने से एंजिनों में गैस पैदा होती है, उसके दबाव से मोटर का एंजिन चलने लगता है। इस प्रकार हम हर तरह से मशीन चलाने वाली शक्ति को पैदा करते हैं। इस बात को बताने की कोई जरूरत नहीं कि आजकल शक्ति का पैदा करना कितना आवश्यक और अनिवार्य है। बिना इस शक्ति के जो तरह तरह के माल हम बाजार में बिकते देखते हैं वे सब गायब हो जायँ। हाथ से छोटे छोटे खिलौने बनाने वालों को भी किसी न किसी रूप में शक्ति से काम लेना होता है। कहा जाता है जापान के बच्चे खेल ही खेल में टीन की छोटी मोटर बना डालते हैं। जिस टीन को वे अपने काम में लाते हैं वह कहाँ से आता है? खान से लोहा निकाल कर जब उसे कोयले की आँच में गला कर टीन की चद्दर बनाई जाती है तभी तो बच्चों को वह चद्दर मिलती है। अस्तु, तुम जान गए कि जानवर, लकड़ी, कोयला, पानी, तेल आदि पदार्थ शक्ति को पैदा करने के काम में आते हैं।

शक्ति और जानवर

यद्यपि यूरप, इंगलैंड, अमरीका आदि देशों में जानवरों से काम लेने का रिवाज कम हो गया, परन्तु भारतवर्ष में बैल, ऊँट, घोड़े आदि जानवरों से अब भी शक्ति की जगह काम लिया जाता है। हिन्दोस्तान में बैल तो किसान की जान है। उसके बिना वह खेती कर ही नहीं सकता। बैल हल खींचते हैं, फसल माँड़ते हैं, बोझा ढोते हैं। कुए से पानी निकालने में भी बैलों का ही उपयोग किया जाता है। गाँवों में कुएँ से पानी निकालने के लिए मशीनें लग गई हैं। इन मशीनों को चलाने की शक्ति की जगह बैलों से ही काम लिया जाता है। तेल निकालते समय तेली बैल से ही कोल्हू

चलवाता है। ऊँट घोड़े अधिकतर माल लाने ले जाने के काम में आते हैं। लेकिन जानवरों से काम लेने में खर्च बहुत पड़ता है। इसलिये उनका हर जगह उपयोग नहीं किया जा सकता।

लकड़ी

शक्ति का सबसे अच्छा साधन कोयला है और एक प्रकार का कोयला लकड़ी जला कर भी बनाया जाता है। लकड़ी के कोयले से काम लेने से तो बेहतर यही होगा कि लकड़ी से काम लिया जाय। कोयला या लकड़ी से ज्यादातर पानी से भाप बनाने का काम लिया जाता है। इस भाप से शक्ति का काम निकाला जाता है। लेकिन इस तरह लकड़ी से काम लेने में माल बेकार बहुत जाता है। हिन्दोस्तान में एक बात का और दुख है। यहाँ का जंगल अधिकतर पहाड़ियों की ढाल पर हैं। इसलिये लकड़ियों को वहाँ से लाने का खर्चा इतना अधिक हो जाता है कि लकड़ी की जगह शक्ति के किसी अन्य साधन का मुँह ताकना पड़ता है। यही नहीं इन जंगलों से आने वाली लकड़ी की मात्रा बढ़ाई नहीं जा सकती और इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि नए जंगल लगाए जाएं। कोरोमंडल-तट और नीलिगिरि की पहाड़ियों पर सफलता पूर्वक जंगल लगाए जा चुके हैं। परन्तु लकड़ी को काम में लाने से जंगल कटते जाते हैं। इससे बाढ़ अधिक आती हैं। उपजाऊ मिट्टी नदी के साथ बह जाने का डर बढ़ जाता है। इससे खेती में बड़ी गड़बड़ी पड़ती है। इन कारणों से शक्ति को पैदा करने में लकड़ी बेकार ही सिद्ध होती है।

कोयला

कोयले से हमारा मतलब खान से निकलने वाले पत्थर के कोयलों से है। पुराने जमाने में जैसे जैसे पेड़ गिर कर जमीन

में गड़ते गए, सैकड़ों साल के बाद इन पेड़ों की लकड़ियों का कोयला बन गया। भारतवर्ष में अन्य देशों की अपेक्षा कोयला सतह के पास ही मिलता है।

भारत में कोयले का वितरण ठीक नहीं है। हिन्दोस्तान का नब्बे फी सदी कोयला बंगाल और बिहार से मिलता है। कुल कोयले का आधा भाग झरिया से और एक-तिहाई रानीगंज से आता है। मध्य-प्रान्त और मध्य-भारत में छोटी खानें हैं जिनमें घटिया किस्म का कोयला निकलता है। पंजाब, आसाम, हैदराबाद और बलोचिस्तान में भी कोयले की खानें हैं। हैदराबाद रियासत में मध्यम किस्म का कोयला निकलता है। यह भाप बनाने के काम में बहुत बढ़िया सिद्ध हुआ है। उत्तरी पूर्व आसाम की कुछ खानों में बहुत अच्छा कोयला निकलता है। लेकिन उन खानों की स्थिति बहुत गड़बड़ है। आसाम की बहुत सी खानों तक रेल ही नहीं गई है।

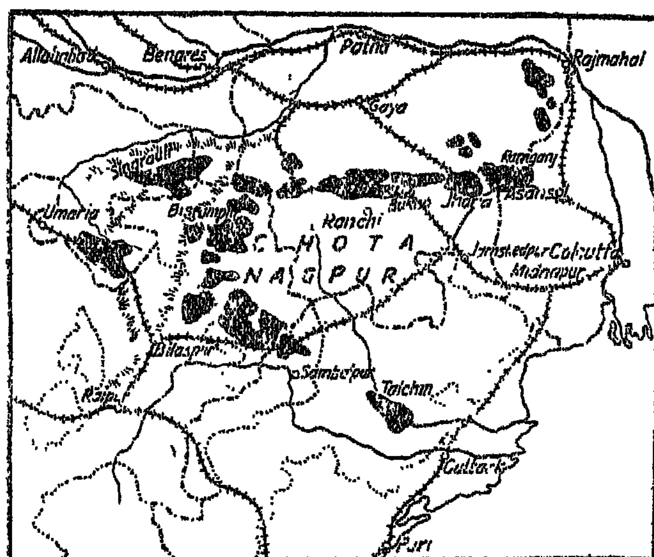
अच्छा कोयला बंगाल और आसाम की कुछ खानों में ही पाया जाता है। इसके अलावा ये खानें जिन औद्योगिक क्षेत्र के पास हैं वहाँ पर आजकल के ढंग पर औद्योगिक उन्नति की जा सकती है। इसलिए दिनोंदिन बंगाल और आसाम से निकलने वाले कोयले की माँग बढ़ती ही जा रही है। मध्यप्रान्त की खानों से निकलने वाला कोयला भी घटिया किस्म का होने के कारण केवल भाप बनाने के काम में ही आता है।

कोयला कई किस्म का होता है। सबसे बढ़िया कोयला कोक कहलाता है। इसकी आँच बड़ी तेज होती है। सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा आदि धातु जब खान से निकलते हैं तो वे कूड़े मिट्टी से भरे होते हैं। खान से निकाले वाले माल को गरम करके धातु को गलाकर अलग किया जाता है। जब धातु की खान के-

पास ही कोयला पाया जाता है तो धातु सस्ते में तैयार हो जाती है। जहाँ पर कोई कोयले की खान पास नहीं होती वहाँ कारखाना नहीं खोला जाता बल्कि धातु को खोदकर कोयले की खान के पास वाले किसी कारखाने में भेजते हैं। होने को तो यह भी हो सकता है कि कारखाना धातु की खान के पास खोलकर कोयला वहाँ पर पहुँचाया जाए। परन्तु ऐसा करने में खर्च बहुत अधिक पड़ जाता है। मध्यम तथा घटिया किस्म का कोयला भाप बनाने के काम आता है। इस भाप के जरिए बड़े बड़े इंजन और मशीनें चलाए जाते हैं। क्या कपड़े का कारखाना क्या बिजली की कम्पनियाँ, सब में कोयला काफी काम आता है।

भिन्न भिन्न स्थानों के कोयले के भाव में काफी अन्तर होता है। इसका कारण कोयले का गुण, खान की गहराई, काम में आने वाली मशीन, मजदूरी आदि के व्यय का अन्तर होता है। हिन्दोस्तान की कुछ खानों में मजदूरी सम्बन्धी झगड़े चलते ही रहते हैं और जैसा कि पहले बता चुके हैं यहाँ पर कोयले की खानों की भी कमी है। इन सब कारणों से भारत में मिलने वाला कोयला यहाँ के लिए काफी नहीं होता। फलत स्वरूप हिन्दोस्तान में अफ्रीका आदि विदेशों से भी कोयला मँगाया जाता है। भारतवर्ष में सब प्रकार का कोयला (अच्छा और घटिया) ५४,०००,०००,००० टन है। इसमें केवल पाँच प्रतिशत कोयला कठोर कोक बनाने के योग्य है। झरिया के क्षेत्र में २० अरब टन, रानीगंज के क्षेत्र में २१ अरब टन और उत्तरी करनपुरा में लगभग ९ अरब टन कोयला भरा पड़ा है। भारतवर्ष में कठोर कोक बनाने योग्य बढ़िया कोयला अधिकतर झरिया की खानों से ही निकलता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बढ़िया कोयला १०० वर्षों में चुक जावेगा और साधारण कोयला २५० वर्षों तक चलेगा।

भारतवर्ष में कोयला इतना अधिक नहीं है जितना कि लोहा परन्तु साधारण रूप से कोयला नीचे के नक़शे में दिये स्थानों में मिलता है।



बंगाल, बिहार और मध्य-प्रान्त की कोयले की खानों का नक़शा

तेल

यों तो शक्ति के साधनों में कोयले के बाद पानी की ही गिनती पहले होनी चाहिए। परन्तु पानी के साथ बिजली का सवाल पैदा होगा और बिजली तेल* से कहीं बेहतर समझी जाती है। अतएव पहले बिजली से घटिया साधन को ही लेना चाहिए। कोयला और तेल के माँ बाप एक ही हैं। फ़र्क़ केवल इतना है कि

---

* याद रखिए कि तेल से हमारा मतलब ज़मीन से निकलने वाले तेल से है।

कोयला ठोस पदार्थ है और तेल तरल द्रव्य। मरे हुए जानवरों और गिरे हुए पेड़ों पर जब पृथ्वी के अंदर की गर्मी और दबाव का जोर पड़ा तो उनमें एक बहता हुआ तेल निकला। तेल निकल जाने के बाद जो बच रहता है वह कोयला कहलाता है।

मिट्टी से निकलने वाला तेल कई कई सौ फुट जमीन के नीचे बलुई मिट्टी अथवा बलुई चट्टानों के बीच पाया जाता है। तेल को निकालने के लिए जमीन में पाइप गाड़े जाते हैं। अक्सर तेल के साथ एक प्रकार की गैस बंद रहती है, इसलिए जब पहले पहल पाइप इसके पास पहुँचता है तो यह बड़ी तेजी के साथ ऊपर उछलता है, यहाँ तक की हवा में सौ डेढ़ सौ फुट ऊँचा काले तेल का फव्वारा छूट उठता है। यह तेल बहुत भड़काला होता है। दूर से ही आँच दिखाने पर भी यह जल उठता है।

जिस हालत में पृथ्वी से यह तेल निकलता है उस हालत में यह किसी काम के लायक नहीं रहता। इसे मिलों में साफ किया जाता है और जमीन से निकले हुए काले तेल से चार पाँच किस्म के तेल और पदार्थ निकाले जाते हैं। मिट्टी का तेल, पेट्रोल, मोबिल आयल, मोम आदि। मिट्टी के तेल को आप लालटेन में जलाते हैं। खाना पकाने वाले स्टोव (Stove) में भी यही तेल काम देता है। मोम से मोमबत्तियाँ बनाई जाती हैं। बाद में एक तरह का गाढ़ा तेल बचता है जो मशीन में दिया जाता है। परन्तु सब से अधिक महत्व पेट्रोल का है। जितना उपयोग इसका किया जाता है उतना किसी का नहीं होता। मेलकम केम्पबेल ने इसी तेल से मोटर की दौड़ में तीन सौ मील से फी घंटा अधिक रफ्तार का रिकार्ड (Record) हासिल किया था। दिल्ली मद्रास दौड़ में प्रथम पुरस्कार पाने वाले स्वर्गीय लेफ्टनेन्ट मिसरीचन्द्र जी के हवाई जहाज में भी पेट्रोल का ही बोल बाला है। अमेरिका में तेल निकलने की जगह से हजारों मील लम्बे पाइप तेल को साफ करने के कारखानों

में ले जाते हैं जहाँ से पेट्रोल लोहे का माल तैयार करने वाले तथा शीशा बनाने वाले व्यापारियों के हाथ बेचा जाता है।

मिट्टी की संतान तेल अमरीका के अलावा कनाडा, मेक्सिको, ईजिप्ट, ईरान, सुमात्रा, जावा आदि स्थानों में पाया जाता है। बर्मा में इस तेल के कुएँ काफी हैं। ये कुएँ इरावदी नदी पर ऊपर की ओर हैं। इनकी सफाई रंगून में होती है। उत्तरी आसाम में ब्रह्मपुत्र की घाटी में कुछ कुएँ हैं। सिन्धु नदी के किनारे अटक में भी तेल के कुएँ पाए जाते हैं। बिलोचिस्तान में भी तेल निकाला जाता है। परन्तु भारत में निकलने वाले तेल की मात्रा कम होने के कारण उद्योग-धन्धों के कारखानों में तेल की शक्ति का उपयोग करना खतरनाक है। कोयले की भाँति जमीन की संतान होने के कारण हम अनंत काल तक तेल नहीं निकाल सकते। बर्मा के कुएँ धीरे धीरे खाली होते जा रहे हैं। जर्मनी आदि पश्चिमी देशों में इस डर से पेट्रोल की जगह अन्य तेलों का आविष्कार हो रहा है। अभी हाल में सिद्ध किया गया है कि शराब (Alcohol) से पेट्रोल की जगह अच्छी तरह काम लिया जा सकता है। परन्तु तेल हो अथवा शराब, कारखानों में इन सब का स्टाक रखने में काफी जगह चाहिए। इसके साथ और भी अनेक झंझट लगे हुए हैं। वहाँ पर तो शक्ति का कोई ऐसा साधन चाहिए जो नहीं के बराबर जगह घेरे और ऐसी वस्तु बिजली है।

पानी और बिजली

बिजली पैदा करने के लिए किसी साधन द्वारा डाइनमो को घुमाना पड़ता है। यह काम पेट्रोल जला कर किया जा सकता है। यदि कोयला के जरिए पानी से भाप बनाई जाय और फिर भाप तेजी से डाइनमो के पहिए पर पड़े तब भी वह घूमने लगेगा। परन्तु सोचने की बात तो यह है कि बिजली सुविधा-जनक होते

हुए भी यदि बहुत महँगी पड़े तो वह किस काम की होगी। अतएव बिजली को और सस्ते दामों में तैयार करने के लिए प्रकृति के अनन्त खजाने पानी से काम लिया जाने लगा है।

यों तो नदियों में बहने वाले पानी का उपयोग पहले भी होता था, परन्तु बिजली बनाने के लिए नहीं। अधिकतर नदियों के किनारे पनचक्कियाँ खोली जाती थीं। पनचक्की का एक पहिया पानी में रहता था। पानी के बहाव के कारण यह पहिया घूमने लगता। इसके साथ ही साथ चक्की का पाट भी चलने लगता। ऐसी पनचक्कियाँ यूरप आदि देशों में भी पाई जाती थीं और अब भी काफी तादाद में मिलती हैं। भारतवर्ष में यदि किसी प्रकार पानी से शक्ति का काम लिया जाता था तो वह नावों का चलाना। पानी के बहाव के साथ नाव अपने आप बहती जाती थी।

कुछ साल पहले मद्रास सरकार परियार नदी पर पत्थर का बाँध बनवा कर नदी का पानी दूसरी ओर सिंचाई के लिए ले गई थी। बाद में सोचने पर यह निश्चय किया गया कि पानी को लोहे के पाइप के भीतर से ऊँचे से नीचे पर गिराया जाय। पाइप में डाइनमो से मिला हुआ पहिया लगा रहता है। तेजी से गिरते हुए पानी के दबाव से पहिया चलने लगता है। हिन्दोस्तान में कोयले और तेल की कमी के कारण यह निहायत जरूरी है कि यहाँ पर शक्ति का कोई सस्ता साधन निकाला जाय। भारत में पानी की तो भरमार है। गंगा, ब्रह्मपुत्र, कावेरी, सिन्धु आदि नदियों में अटूट जल भरा रहता है। यदि इस पानी का उपयोग करके बिजली बनाई जाय तो कोयला, लकड़ी या तेल से बिजली पैदा करने में अगर एक रुपया लगता है तो पानी की सहायता से केवल चार आना ही खर्च होता है। इन सब बातों को देखते हुए सन् १९१८-१९ में सरकार ने एक कमेटी द्वारा इस बात की जाँच

कराई कि कहाँ कहाँ पानी बिजली बनाने के काम में लाया जा सकता है। तब से दिनों दिन पानी से बिजली बनाने के कारखाने बढ़ते ही जाते हैं।

इस प्रकार बिजली तैयार करने का काम बम्बई प्रांत में बड़े ज़ोर शोर से चल रहा है। पहले पहल श्री जमशेद जी ताता ने लोनावाला नामक स्थान में टाटा हाइड्रो-इलेक्ट्रिक वर्क्स की नींव डाली। पश्चिमी घाट की पहाड़ियों के ऊपर तीन बड़े बड़े हौज़ बनाए गए जिसमें बरसाती पानी इकट्ठा होता है। ऊपर बतलाए तरीके से पानी मशीनों में होता हुआ बम्बई चला जाता है। वहाँ पर कुछ तो पीने के काम में आ जाता है और कुछ वहाँ के बाग़ों की सिंचाई में खर्च होता है। लोनावाला से बिजली बम्बई शहर को भेजी जाती है। क्या रुई की मिल क्या शहर की रोशनी सब का इन्तज़ाम इसी बिजली से होता है। मैसूर रियासत में कावेरी नदी पर मेथूर बंध बना है। यहाँ से कोलार की सोने की खानों में बिजली पहुँचाई जाती है। इसके अलावा बंगलौर को भी, जो कि उनसठ मील की दूरी पर है बिजली भेजी जाती है ताकि वहाँ के कारखाने आसानी से चल सकें। काश्मीर में झेलम नदी पर दो स्टेशन बने हुए हैं। पंजाब में अमृतसर, धारीवाल व शिमला नामक स्थानों पर बिजलीघर बने हुए हैं।

संयुक्त प्रांत में हरद्वार के पास बहादुराबाद में जहाँ गंगा पहाड़ियों को छोड़ती है डाइनमो लगा हुआ है। बिजली इतनी सस्ती तैयार होती है कि मामूली से मामूली आदमी भी बिजली काम में लाता है। रोज़मर्रा के कामों के अलावा यह बिजली खेतों तथा कारखानों दोनों में काम आती है। नदी के अलावा अब तो नहरों के पानी से भी बिजली बनाई जाती है। जहाँ तहाँ नहरों पर बंध (Dam) बना कर बिजली की मशीन लगा दी जाती है। अभी हाल में संयुक्त प्रांत में गंगा की नहर पर कई स्टेशन बनाए

गए हैं और इस ओर जोर शोर से काम जारी है। यह बिजली घरेलू, औद्योगिक और खेती के कार्यों में खर्च की जाएगी। यू० पी० की सरकार ने गाँवों में ट्यूब गाड़ कर कुएं खोदे हैं। उसमें से पानी खींचने के लिए जो मोटर लगाई गई हैं वे सब बिजली से चलती हैं। इस प्रकार से जो पानी निकलता है उससे खेतों की सिंचाई की जाती है। देहरादून, मंसूरी, नैनीताल आदि स्थानों में रोशनी करने के लिए वहाँ ऐसे छोटे छोटे स्टेशन बने हुए हैं।

पटियाला और हैदराबाद रियासत में भी छोटे बिजली घर बने हुए हैं। नीलगिरि में पैकारा नदी पर और ट्रावनकोर रियासत में कल्लर नदी के किनारे पानी की बिजली बनाने का इंतजाम है। आसाम के शिलांग शहर में इस तरह बिजली पैदा की जाती है। वहाँ के चाय के जिलों में चाय की फैक्टरियों को बिजली पाने की गरज से दो तीन जगहों पर इंतजाम किया जा रहा है।

भारत में इस प्रकार बिजली के फैल जाने का असर यह होगा कि कारखाने कहीं भी खोले जा सकेंगे। अब तक यह आवश्यक था कि कारखाने जहाँ तक हो कोयले की खान के पास हों क्योंकि मिट्टी का तेल तो कोयले से भी कम पाया जाता है। परन्तु आगे से यह बंधन जाता रहेगा। कारखानों का स्थान निश्चय करने में शक्ति के साधन के अलावा और भी कई कारणों का हाथ रहता है। अगले अध्याय में हम कारखानों के स्थानीय-करण के बारे में विचार करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—शक्ति के साधनों का क्या महत्व है?

२—हिन्दोस्तान में मुख्यतः शक्ति के साधन क्या हैं? हाइड्रोइलेक्ट्रिक बिजली का देश में कितना प्रचार हुआ है?

३—क्या अब वह जमाना आ गया जब हम बिना कोयले के काम कर सकते हैं? विस्तार पूर्वक विवेचना करिए।

४—भारत में कोयला कहाँ कहाँ तथा किस किस्म का पाया जाता है ? भारतीय उद्योग-धन्धों को स्थिति निश्चय करने में कोयले का क्या स्थान है ?

५—कोयले और तेल में क्या सम्बन्ध है ? तेल के मुख्य उपयोग क्या हैं ?

६—भारत में तेल कहाँ पाया जाता है ? शराब का तेल के स्थान में उपयोग किए जाने की आशंका कहाँ तक ठीक है ?

७—पानी की बिजली किस प्रकार तैयार की जाती है ? भारत में इसका भविष्य क्या होगा ?

८—भारत में शक्ति के साधनों की भरमार है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि उनका उचित लाभ उठाया जाय। आपका क्या मत है ?

९—भारत में कहाँ कहाँ पानी से बिजली बनाई जाती है ? इससे देश की उन्नति तथा ग्राम-सुधार में किस प्रकार सहायता मिलेगी ?

आठवाँ अध्याय

उद्योग-धन्धों का स्थानीयकरण

पिछले अध्याय में हमने तुमको मशीनों को चलाने के लिए भिन्न भिन्न प्रकार की शक्ति के बारे में बतलाया था। जब कोई व्यापारी या धनी आदमी अपने लिए किसी उद्योग-धंधे का काम शुरू करना चाहता है, तो उसके सामने बहुत सी समस्याएँ आ खड़ी होती हैं। परन्तु सबसे बड़ा सवाल उसके सामने यह रहता है कि वह उस धंधे के खोलने के लिए कौन सी जगह को चुने। स्थान के चुनाव में जलवायु तथा प्राकृतिक स्थिति का ख्याल रखना, उतना ही जरूरी है जितना इस बात का कि काम करने वाले और कच्चा माल किस जगह अच्छा व आसानी और किफायत से मिल जायगा। स्थान ऐसा होना चाहिए कि वहाँ से माल ले जाने और ले आने की पूरी सुविधा हो। इसी प्रकार वह आदमी तरह तरह की बातों का ख्याल करता है और विविध जगहों की उपयोगिता की तुलना करता है। यह जरूरी नहीं कि एक ही उद्योग धन्धा करने वाले भिन्न भिन्न मनुष्य एक सा मत रक्खें या एक ही स्थान को अपने धन्धे के लिए चुनें। अधिकतर उनका मत व उनके सोचने के ढंग बिलकुल भिन्न होते हैं और कोई व्यक्ति एक जगह को अच्छी समझता है तो कोई किसी दूसरे स्थान को।

परन्तु एक बात है। व्यवहार में यह देखा जाता है कि जिस प्रकार कुछ आदमी किसी खास तरह की ट्रेनिंग पाए रहने के कारण किसी खास भाँति के काम को ही कर सकते हैं वैसे ही कुछ खास खास स्थान उद्योग-धन्धों और व्यवसायों के केन्द्र बन जाते हैं। एक

प्रकार के काम के कारखाने किसी एक स्थान के आस-पास चलने लगते हैं। शाहजहाँपुर के पास चीनी की मिलें अधिक हैं। बम्बई और अहमदाबाद में अधिकतर कपड़ों के कारखाने ही हैं। इसी प्रकार कलकत्ता जूट के कारखानों का केन्द्र है। इगलैंड में इसी तरह लंकाशायर और मैनचेस्टर कपड़े की मिलों के लिए मशहूर हैं। इन जगहों में तैयार किये जाने वाले पदार्थ कुल अपने नगर में ही नहीं खप जाते। माल इतनी अधिक मात्रा में तैयार किया जाता है कि उसे दूर दूर सैकड़ों हजारों मील के फासले पर बसे देशों में भेजना पड़ता है। इगलैंड का माल हिन्दोस्तान, अफ्रीका, पूर्वी द्वीपसमूह आदि देशों में जाता है और इस प्रकार वहाँ रहने वाले आदमियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है।

स्थानीयकरण के कारण

कोई उद्योग-धन्धा जिन कारणों से किसी अमुक जगह में स्थानीय हो जाता है उन्हें हम दो तीन मुख्य भागों में बाँट सकते हैं। कुछ दशाओं में प्राकृतिक कारण बहुत प्रभाव रखता है। कहीं कहीं आर्थिक या राजनैतिक आदि कारणों का बहुत असर पड़ता है। कभी कभी दो या अधिक बातों का एक साथ प्रभाव पड़ता है।

प्राकृतिक कारण

उद्योग-धन्धों के स्थानीयकरण में प्राकृतिक दशा का बहुत कुछ असर पड़ता है। किसी जगह की जलवायु गरम है या ठंडी भूमि कठोर तथा ऊसर है अथवा मुलायम और उर्वरा अर्थात् उस जमीन में किसी वस्तु विशेष को पैदा करने के लिए जिन गुणों की जरूरत है वे सब हैं या नहीं या आस-पास में किसी धातु या कोयले की खान है या नहीं, इन सब बातों का प्रभाव उद्योग धंधों की स्थिति निश्चित करने पर पड़ता है। उदाहरण

के लिए टाटा नगर के पास स्थित सिंहभूमि को ले लीजिए। वहाँ पर लोहे की खान है। इसलिए लोहे की चीजें बनाने के लिए जो टाटा का कारखाना खोला गया उसे उस खान के पास ही रहना पड़ा। इसी प्रकार जो पदार्थ जहाँ पैदा होता है उससे सम्बन्ध रखने वाले उद्योग-धन्धे को अधिकतर उसी जगह चलाने से आसानी पड़ती है। हाँ किसी अन्य जगह काम चालू करने से कोई विशेष लाभ मिलता हो तो बात दूसरी है। दक्षिण में काली मिट्टी होने के कारण वहाँ की ज़मीन रुई की खेती करने के लिए अति उत्तम है। इसलिए वहाँ रुई पैदा होने के कारण बंबई, अहमदाबाद आदि जगहों में रुई के कारखानों की भरमार है। बंगाल की उर्वरा भूमि में जूट और चावल बहुतायत से पैदा किया जाता है। कारखानों के लिए इन कच्चे मालों की आवश्यकता के कारण ही बंगाल में जूट और चावल की मिलें बहुत हैं। आजकल बिजली से बहुत कुछ काम लिया जाने लगा है, तथापि कुछ उद्योग-धन्धों में कोयले की अब भी बहुत आवश्यकता पड़ती है।

प्राकृतिक कारणों में नदी, नहर आदि के होने की भी गिनती की जाती है। पहले जमाने में नदी के जल के प्रभाव से किसी मशीन का पहिया चलवाया जाता था। अधिकतर ये मशीनें आटा पीसने की चक्कियाँ होती थीं। आजकल पनचक्की भाप से या तेल से अथवा बिजली से चलाई जाती हैं। परन्तु इसके यह मतलब नहीं कि जलशक्ति का उपयोग ही उड़ गया। बिजली पैदा करने की मशीनें अधिकतर पानी से ही चलाई जाती हैं। जहाँ पर जोर से जलप्रपात होता है अथवा जहाँ पर पानी कुछ ऊँचाई से जोर से गिरता है वहाँ पर बिजली पैदा करने की मशीनें लगाई जाती हैं। इस तरह जलशक्ति से पहले बिजली पैदा की जाती है और फिर बिजली अन्य मशीनों के चलाने के काम में आती है। अस्तु जलवायु पर भी उद्योग-धन्धों का

स्थानीयकरण निर्भर रहता है। भारतवर्ष में रुई की मिलें बम्बई में क्यों अधिक स्थित हैं अथवा लंकाशायर में क्यों कपड़ों के कारखाने का नम्बर बढ़ा हुआ है ? अन्य कारणों में एक कारण यह भी है कि इन जगहों की जलवायु नम है तथा यह जगह समुद्र के पास है। फिर नम जलवायु से मजदूरों और कारखाने में काम करने वाले अन्य लोगों की कार्य-क्षमता और अधिक बढ़ जाती है।

आर्थिक कारण

चाहे प्राकृतिक कारण हो अथवा आर्थिक कारण हो सब की तह में यही सिद्धान्त छिपा रहता है कि कारखाने की जगह ऐसी होवे जहाँ पर माल के तैयार करने में सबसे कम खर्चा होवे और तैयार माल को बाजार में पहुँचाने तक की पूरी सुविधा हो, जिससे कि मालिक अन्य प्रतियोगियों के माल के मुकाबले में अपना माल सफलता-पूर्वक बेच सके। इसलिए किसी भी उद्योग-धन्धे का कारखाना ऐसी जगह नहीं खोला जाता जहाँ पर माल लाने ले जाने की पूरी पूरी सहूलियत नहीं होती। इसके विपरीत जिन स्थानों में रेल, जहाज आदि से यातायात की सुविधा होती है, वहीं पर कारखानों के खोले जाने की अधिक सम्भावना रहती है। बम्बई प्रांत में बम्बई ही कारखानों के लिए क्यों चुना जाता है ? अथवा बंगाल में कलकत्ता क्यों इतने महत्व तथा विशेषता का स्थान रखता है ? इसका कारण यह है कि कलकत्ता और बम्बई में दूर दूर से माल मंगाने और तैयार माल को दूर दूर भेजने की पूरी सुविधा रहती है। दोनों समुद्र तट पर बसे हैं तथा एक ईस्ट इंडियन रेलवे का प्रधान केन्द्र है तो दूसरा ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवे का। फलस्वरूप बाहर से आने वाला माल भी फौरन देश के प्रत्येक कोने में पहुँचाया जा सकता है और देशी माल बाहर भेजा जा सकता

है। इन जगहों से माल लाने ले जाने का खर्च बहुत कम हो जाता है।

अतएव यह तो आप समझ गए कि जिस जगह में सामान मंगाने व भेजने की सुविधाएं अधिक होंगी और खर्च कम पड़ेगा, वहाँ उद्योग-धन्धों का स्थानीयकरण अधिक होगा। इसके अलावा मालिक इस बात का भी ख्याल करता है, कि किस जगह पर काम करने वाले यथेष्ट संख्या में मिलते हैं। जब मिल-मालिक यह देखता है कि और सब बातों में कई स्थान बराबर से पड़ते हैं तो, वह उसी जगह को अपने काम के लिए चुनता है जहाँ पर श्रमी पूरी तौर पर तथा और जगहों की बनिस्बत कम तनख्वाह पर मिल जायँगे। ख्याल रखिए कि ये दोनों शर्तें जरूरी हैं। क्योंकि यदि किसी जगह मजदूरी तो बहुत सस्ती हो परन्तु वहाँ पर मिल में काम करने के लिए पर्याप्त आदमी न मिलें तो इस जगह मिल का काम ही न चल सकेगा। इसके विपरीत मजदूरों की संख्या भी अधिक हो और मजदूरी भी कम हो तो खर्च कम पड़ सकता है।

श्रम के अलावा आजकल एक बात की और जरूरत पड़ती है। वह है पूँजी। पहले कोई अपने पास की ही पूँजी लगाकर काम चालू करता था। परन्तु आजकल की दशा में कोई व्यक्ति बिना उधार की पूंजी लगाए हुए अपना काम चला ही नहीं सकता। पूंजी कल-कारखानों का जीवन-प्राण बनी हुई है। इसलिए जिस जगह पूँजी काफी मात्रा में तथा कम सूद पर मिल सकेगी वहीं पर उद्योग-धन्धों के स्थित हो जाने तथा कारखानों के खुलने की सम्भावना अधिक रहती है।

अन्य कारण

कभी कभी राजाओं और सरकार की नीति के कारण उद्योग-धन्धे का किसी विशेष जगह में स्थानीयकरण हो जाता है। हिन्दू

और मुसलमान राजाओं के राज्यकाल में कुछ शहरों में खास व्यवसाय आरम्भ हुआ। धीरे धीरे उस व्यवसाय में बढ़ती हुई। उस नगर की भी वृद्धि हुई। वहाँ पर उसी कार्य के और कारखाने खुल गए और अन्त में वह उस व्यवसाय का केन्द्र बन गया।

किसी किसी उद्योग-धन्धों के केन्द्र के पिछले इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि उक्त धन्धे के वहाँ केन्द्रित हो जाने का ऊपर बताए कारणों में से कोई नहीं था। वहाँ पर पहले किसी व्यक्ति ने उस धन्धे का श्रीगणेश किया था। बाद में उसे हद से ज्यादा सफलता प्राप्त हुई। यह तो सब को मालूम है कि जहाँ एक काम में किसी आदमी ने फायदा उठाना शुरू किया नहीं कि बीसों और लोग उस काम को करना आरम्भ कर देते हैं। उस जगह के काम करने वाले कुछ ऐसे निपुण हो गए और उस जगह से आने वाला माल लोगों को इतना पसन्द आया कि वहाँ पर अन्य कारखानों के खुलने में कोई दिक्कत नहीं हुई। इसी प्रकार कुछ दिनों में यह जगह उस धन्धे का केन्द्र बन गई। इसके अलावा यह मानी बात है कि माल का बेचने वाला—चाहे वह कच्चा माल बेचता हो अथवा तैयार माल—अपना माल वहीं भेजता है जहाँ इसके बिकने की आशा रहती है। इसी प्रकार काम करने वाले मजदूर भी जो उस धन्धे में काम कर सकते हैं उस जगह अपने आप पहुँच जाते हैं। इस प्रकार मजदूर, कच्चा माल तथा ग्राहकों की भरमार होने के कारण उस जगह वह व्यवसाय चमकने लगता है। और फिर बाद जब कोई उस व्यापार को करना चाहता है तो अपने आप उसका ध्यान उसी शहर की ओर जाता है। और वह भी वहीं कारखाना खोल देता है।

स्थानीयकरण के विरोधी कारण

जैसा कि आर्थिक कारण का बयान करते समय कहा गया था,

स्थानीयकरण का मूलमन्त्र है किसी ऐसी जगह को ढूंढ निकालना जहाँ पर किसी विशेष उद्योग-धन्धे को करने से कम से कम खर्च और अधिक से अधिक लाभ होवे। पिछले सालों में कुछ ऐसी शक्तियों का व्यवहार होने लग गया है जो उद्योग-धन्धों के स्थानीयकरण को रोकती हैं। इनमें पहले तो बिजली ही है। जब से यह ढूंढ निकाला गया है कि बिजली से मशीनें भी चलाई जा सकती हैं तब से भाप आदि की कोई जरूरत ही नहीं रह गई। बिजली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सैकड़ों मील की दूरी पर पैदा करके कारखाने को भेजी जा सकती है। बम्बई की ओर लोनावाला नामक स्थान में बिजली पैदा की जाती है और वहाँ से वह तमाम बम्बई तथा आसपास के जगहों में भेजी जाती है। बिजली के निकल आने से अब यह जरूरी नहीं रहा कि कारखाना कोयले की खान के पास खोला जाय, चाहे वह जगह स्वास्थ्यप्रद न हो। अब उद्योग-धन्धों को दूर दूर स्वास्थ्यप्रद स्थानों में खोला जा सकता है। बिजली की भाँति ही माल लाने ले जाने की सुविधाएँ स्थानीयकरण की प्रकृति को रोकती है। यातायात की सुविधा की वृद्धि होने से, गाड़ी भाड़ा व माल को भेजने में लगने वाले समय में बहुत कमी होगई है। इसलिए अब बिना हानि के कारखाना मंडी व कच्चे माल की उत्पत्ति के स्थान से दूर खोला जा सकता है। एक बात और। जैसे जैसे नगरों की वृद्धि होती जाती है वैसे वैसे वहाँ की जमीन का दाम और किराया बहुत बढ़ता जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि पहले तो शहरों में कारखाना स्थापित करना बड़ा मुश्किल होता है। और यदि चल जाय तो बाद में उसके विस्तार में बड़ी दिक्कत पड़ती है। अतएव कारखाने अधिकतर शहरों के बाहर खोले जाने लगे हैं। परन्तु अभी मिलें बिलकुल गाँवों में भी नहीं खोली जा सकतीं क्योंकि वहाँ

पर मिल में काम करने के लिए विशेष योग्यता-प्राप्त मजदूर काफी संख्या में नहीं मिल सकते।

स्थानीयकरण के लाभ

स्थानीयकरण के कारण जान लेने पर आप पूछ सकते हैं कि स्थानीयकरण से क्या क्या लाभ होते हैं। पहली बात तो यह है कि कारखानों के एक ही जगह में होने से एक कारखाने वाले दूसरे कारखाने वालों से मिलजुल सकते हैं तथा आपस में अपनी दिक्कतों को दूर करने के लिए सहयोग कर सकते हैं। इसके अलावा पास पास होने के कारण, एक कारखाने में जो उन्नति की जाती है वह दूसरे कारखानों में भी पहुँच जाती है। इस प्रकार सब कारखानों को होने वाली उन्नति से लाभ होता है। दूसरी बात यह है कि हर एक उद्योग-धन्धे में कुछ न कुछ बेकार माल (Bye-product) निकलता है। बेकार से यहाँ पर हमारा मतलब माल तैयार करते समय निकलने वाले मैल कटन आदि से है। कारखानों के दूर दूर रहने से प्रत्येक कारखाने में थोड़ा थोड़ा बेकार माल निकलता है जो कि काम मे नहीं लाया जा सकता। इसके विपरीत बहुत से कारखानों के पास पास होने से उन सबसे एकत्र किया हुआ बेकार माल काम में लाया जा सकता है। इस प्रकार बेकार माल से कोई उपयोगी वस्तु बनाने के लिए एक कारखाना खोला जा सकता है।

कभी कभी मजदूरों की दृष्टि से भी प्रधान कारखानों के अलावा दूसरे कारखाने खोलने पड़ते हैं। उदाहरण के लिए मान लीजिए किसी नगर में लोहे के बहुत से कारखाने हैं। इनमें मजबूत मजदूरों की जरूरत पड़ती है। अधिकतर मजदूर अपनी गृहस्थियों के साथ काम करने को निकलते हैं। ऐसी हालत में मजदूर इतनी मजदूरी चाहते हैं जिससे उनकी गृहस्थी भर का

पेट पालन हो जाय। परन्तु यदि लोहे के कारखानों के पास कपड़े या अन्य किसी वस्तु की मिलें खुल जायँ जहाँ पर औरतें वगैरह काम कर सकें तो कपड़े और लोहे दोनों प्रकार के कारखाने वालों को सस्ते में मजदूर मिल जायँगे। इसके अलावा उद्योग-धन्धों के स्थानीयकरण से उस जगह के श्रमी उस धन्धे के काम में निपुण हो जाते हैं।

स्थानीयकरण की बुराइयाँ और उपाय

जैसे अन्य वस्तुओं या बातों में अच्छाई बुराई होती है वैसे ही उद्योग-धन्धों के स्थानीयकरण से लाभ भी है और हानि भी। लाभ तो हम जान गए। हानियाँ नीचे लिखे अनुसार हैं। सबसे बड़ी हानि यह है कि ऐसी जगह में जहाँ पर केवल एक ही उद्योग-धन्धा चलता है, इस बात का बड़ा डर रहता है कि कहीं तैयार माल की माँग घट न जाय, अथवा कच्चा माल प्राप्त करना कठिन न हो जाय। दोनों हालत में मजदूरों के वेतन घटाने पड़ेंगे। कुछ काम करने वाले निकाल दिए जायेंगे। शायद दो चार मिलें बन्द हो जाएँ। व्यापार मंदा होने के साथ साथ बेकारी भी बढ़ जाएगी। दूसरी बात जो ध्यान देने योग्य है वह यह है कि उस क्षेत्र में एक ही प्रकार के दक्ष आदमियों की अधिक माँग होती है। जैसा कि पहले उदाहरण दिया गया था लोहे के कारखानों के क्षेत्र में मजबूत मनुष्य अधिक मजदूरी मागेंगे जब तक कि उनकी औरतें और लड़कों को भी काम न मिल जाए।

परन्तु इन बुराइयों में अधिक तत्व नहीं मालूम पड़ता। पहले तो ऐसा बहुत कम होता है कि कोई ऐसा उद्योग-धन्धा केन्द्रित बन जाय जिसकी वस्तु की माँग अत्यधिक घट बढ़ सकती हो। स्थानीयकरण के लिए यह परमावश्यक है कि तैयार माल की माँग प्रचुर परिमाण में तथा स्थिर होवे। इसके साथ ही वह वस्तु

ऐसी होनी चाहिए जो आसानी से बिना बिगड़े हुए दूर तक भेजी जा सके। अस्तु पहली हानि का डर तो बहुत कुछ कम हो जाता है। परन्तु दूसरी को दृष्टि में रखते हुए यह कहना ही पड़ता है कि मुख्य उद्योग-धन्धे के कारखानों के अलावा बेकार माल को काम में लाने के लिए तथा औरतों और लड़कों को काम देने के लिए भी अन्य उद्योग-धन्धों के कारखाने होने चाहिए। दूसरे कारखानों के रहने से मुख्य धन्धे में मन्दी आने के समय मजदूरों को भी कुछ सहारा रहेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—उद्योग-धन्धा आरम्भ करने के पहले कौन कौन सी बाधाएँ खड़ी होती हैं? स्थानीयकरण द्वारा यह समस्या कैसे हल की जाती है?

२—स्थानीयकरण में प्रकृति का क्या स्थान है? भारत को विशेष जलवायु, मिट्टी आदि के कारण यहाँ के कौन कौन से कारखाने कहाँ कहाँ स्थित हैं?

३—बम्बई, कलकत्ता आदि स्थानों में मिलों तथा कारखानों के खुलने के मुख्य कारण क्या हैं?

४—यदि सरकार चाहे तो भारत के उद्योग-धन्धे शीघ्रता से उन्नत हो जाय। बताइए कि राजनैतिक कारण किस प्रकार उद्योग-धन्धों के स्थानीयकरण में बाधक होते हैं।

५—बीसवीं सदी की किन किन शक्तियों ने स्थानीयकरण में प्राकृतिक शक्तियों का महत्व घटा दिया है? उदाहरण द्वारा समझाइए।

६—स्थानीयकरण से होने वाले लाभों को विस्तार पूर्वक बतलाइए।

७—क्या स्थानीयकरण से बुराइयाँ भी पैदा हो सकती हैं? उदाहरण सहित उनके दूर करने के उपायों पर विचार कीजिए।

नवाँ अध्याय

भारत के उद्योग-धंधे

(Industries)

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। देश की लगभग तीन चौथाई जनसंख्या खेती पर ही निर्भर है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के आने के पूर्व भारतवर्ष के धन्धे बहुत अच्छी दशा में थे। भारतवर्ष में वस्त्र व्यवसाय, लोहे का धन्धा, जहाज बनाने का धन्धा, लकड़ी का समान इत्यादि धन्धे बहुत उन्नत अवस्था में थे। देश के राजनैतिक पतन के साथ यहाँ ईस्ट-इंडिया कंपनी का प्रभुत्व स्थापित हो गया। ईस्ट-इंडिया कंपनी ने भारतवर्ष के धन्धों को नष्ट करने का जैसा घृणित प्रयत्न किया वह किसी से छिपा नहीं है। इधर ईस्ट-इंडिया कंपनी ने देश के धन्धों को नष्ट करने का प्रयत्न किया उधर इङ्गलैंड की सरकार ने भारतीय वस्त्र पर १५% चुंगी लगाकर तथा भारतीय जहाजों को टेम्स में न आने देने का नियम बनाकर भारतीय व्यवसाय को गहरा धक्का लगाया। उसी समय इंगलैंड में औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) हुई और वहाँ बड़े बड़े पुतली घर और कारखाने स्थापित हुये। अब क्या था भारत सरकार ने मुक्त-द्वार (Free Trade) नीति को अपना कर भारतवर्ष को इंगलैंड के पुतली घरों में बने हुए तैयार माल का बाजार बना डाला। भारत के रहे-सहे धन्धे भी नष्ट हो गये। भारतवर्ष पूर्णतः कृषि प्रधान देश बन गया।

आधुनिक ढंग के कारखानों की स्थापना भारतवर्ष में वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य हुई। आरम्भ में ईस्ट-इंडिया कंपनी

के रिटायर्ड कर्मचारियों तथा ब्रिटिश व्यवसायियों ने ही वस्त्र तथा जूट के कारखाने स्थापित किये। बाद में क्रमशः भारतीय व्यवसायियों ने भी कारखाने स्थापित करना आरम्भ कर दिये। फिर भी आज तक अधिकांश भारतीय धन्धों पर विदेशी पूँजीपतियों का ही प्रभुत्व है।

आरम्भ में कलकत्ता और बम्बई के कारखाने खोले गये। यही कारण है कि आज भी वे देश के प्रमुख औद्योगिक केन्द्र हैं। बम्बई और कलकत्ता बन्दरगाह थे। इन्हीं व्यापारिक केन्द्रों का पश्चिम से अधिक सम्बन्ध था। देश का कच्चा माल विदेशों को जाने के लिए यहाँ इकट्ठा होता था। रेलवे लाइनों के द्वारा यह व्यापारिक केन्द्र भीतरी भाग से जुड़े हुये थे। रेलवे कम्पनियों ने अत्यन्त दोषपूर्ण किराये की नीति (Rate Policy) को अपना रक्खा था। अर्थात् जो माल देश के भीतरी भाग से बन्दरगाह की ओर तथा बन्दरगाह से भीतर की ओर जाता था उस पर कम किराया लिया जाता था। इस नीति का उद्देश्य यह था कि इंगलैंड का तैयार माल कम खर्च में आ जाये और भारत का कच्चा माल बाहर चला जाये। इस दोषपूर्ण नीति के कारण सभी कारखाने आरम्भ में बन्दरगाह में स्थापित हुये।

यद्यपि भारतवर्ष में आधुनिक ढंग के बड़े कारखानों का श्री गणेश सन् १८५० के बाद होने लगा था, फिर भी बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक उद्योग-धन्धों की प्रारम्भिक अवस्था थी। १९१४ के योरोपीय [illegible] आरम्भ होने के समय भारतवर्ष में सूती वस्त्र के कारखानों और जूट के कारखानों के अतिरिक्त अन्य कारखाने स्थापित नहीं हुये थे। सूती वस्त्र के कारखाने भी बहुत मोटा कपड़ा बनाते थे। अधिकांश वस्त्र बाहर से आता था। योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त लोहा, स्टील, सीमेंट, कागज, दियासलाई, शक्कर, शीशा तथा वस्त्र व्यवसाय की उन्नति शीघ्रता से हुई। किन्तु फिर

भी औद्योगिक दृष्टि से भारतवर्ष आज भी बहुत पिछड़ा हुआ है। आज भी भारतवर्ष विदेशों से अधिकतर पक्का माल मँगाता है और कच्चा माल बाहर भेजता है। भारतवर्ष के औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े रहने के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं।

(१) देश का एक विदेशी सरकार के आधीन होना जो कि भारतवर्ष की औद्योगिक उन्नति के प्रति सहानुभूति पूर्ण दृष्टि कोण नहीं रखती और न उन्हें प्रोत्साहन देना ही पसंद करती है। (२) भारतवर्ष में यन्त्र बनाने का धंधा तथा रसायनिक धंधे (Chemical Industries) का न होना। बिना यंत्र बनाने के धंधे तथा रसायनिक धंधों की उन्नति हुये कोई देश औद्योगिक या आर्थिक उन्नति नहीं कर सकता क्योंकि अन्य धंधे इन पर निर्भर रहते हैं। यह आधारभूत धंधे (Key Industries) हैं। (३) भारतवर्ष में यथेष्ट उत्तम कोयले की कमी और उसका देश के सुदूर पूर्व में केन्द्रित होना। देश के अधिकांश भाग में कोयला मिलता ही नहीं और बंगाल तथा बिहार की कोयले की खानों से मँगाने में व्यय बहुत होता है। यही नहीं भारतवर्ष में कोक बनाने योग्य कोयले की बहुत कमी है। इसी कारण भारत में अधिकतर वह धंधे स्थापित किये गये हैं जिनमें कोयले की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती। उदाहरण के लिए वस्त्र व्यवसाय, जूट, शक्कर, कागज, इत्यादि (४) भारतवर्ष में औद्योगिक अनुसंधान (Industrial Research) का अभाव। बहुत सा कच्चा माल हमारे यहाँ ऐसा है जिसका औद्योगिक उपयोग क्या हो सकता है। हम यह जानते ही नहीं। उदाहरण के लिए कुछ समय पूर्व किसी को भी यह ज्ञात नहीं था कि बाँस से कागज बनाया जा सकता है। (५) भारतवर्ष में कुछ पूँजीपति मैनेजिंग एजेंट हैं जो कि नये कारखाने स्थापित करते हैं। जब वे कोई कंपनी स्थापित करते हैं तो साधारण जनता उनके नाम से प्रभावित होकर हिस्से खरीद

होती है परन्तु एक साधारण व्यक्ति फिर वह चाहे कितनी ही व्यवसायिक योग्यता क्यों न रखता हो यदि कोई कारखाना स्थापित करना चाहे तो उसे पूँजी नहीं मिल सकती। अधिकांश मैनेजिंग एजेंसी फर्में अँग्रेजों की हैं। कुछ भारतीय व्यवसायियों की हैं। जब तक औद्योगिक बैंकों के द्वारा प्रतिभावान व्यवसायिक योग्यता वाले व्यक्तियों को प्रोत्साहन नहीं मिलता और पूँजी प्राप्त होने में सुविधा नहीं होती तब तक औद्योगिक उन्नति शीघ्रतापूर्वक नहीं हो सकती। (६) भारतवर्ष में कुशल मजदूरों की कमी भी देश की औद्योगिक उन्नति में एक रुकावट है।

अब हम देश के मुख्य धन्धों का संक्षिप्त विवरण लिखते हैं।

सूती वस्त्र व्यवसाय (Cotton Textile)

भारतवर्ष अत्यन्त प्राचीन काल से सूती वस्त्र बनाने के लिए प्रसिद्ध था। ढाका, मुर्शिदाबाद के बने हुये कपड़े योरोपीय राजधानियों में ऊँची कीमत पर बिकते थे। किन्तु ऊपर लिखे हुये कारणों से देश का यह प्रमुख धन्धा नष्टप्राय हो गया और भारतवर्ष लंकाशायर और मैंचेस्टर शायर से सूती कपड़ा मँगाने लगा। क्रमशः भारतवर्ष में भी आधुनिक ढंग के कारखाने स्थापित हुये और यह धंधा उन्नति करता गया। सर्व प्रथम १८१५ में श्री कबास जी मनाभाई डावर महोदय ने बम्बई में बम्बई स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल के नाम से एक सूती कपड़े का कारखाना खोला। लगभग उसी समय एक कारखाना भड़ौच में स्थापित हुआ। इन कारखानों को दो बड़ी सुविधायें थीं एक तो कपास समीप ही थी और बाजार भी समीप ही था जहाँ कपड़े की खपत थी। इस कारण यह सफल हुए। फलस्वरूप अन्य व्यवसायियों ने भी कारखाने स्थापित करना आरम्भ कर दिये। कुछ वर्षों के ही उपरान्त अहमदाबाद में पहली मिल

खुली और धीरे धीरे वहाँ भी मिलों की संख्या बढ़ने लगी। सन् १९१४ में जब प्रथम योरोपीय युद्ध आरम्भ हुआ उस समय देश में २३९ वस्त्र तैयार करने के कारखाने चल रहे थे जिनमें २४०,००० मजदूर काम करते थे। योरोपीय युद्ध के समय मैंचेस्टर शायर का कपड़ा नहीं आ रहा था। इस कारण भारतीय धंधा खूब चमका। यहाँ तक कि भारतवर्ष समीपवर्ती एशियाई देशों को कपड़ा भेजने लगा किन्तु युद्ध के समाप्त होने पर धंधे को भयंकर परिस्थिति का सामना करना पड़ा। जापान और मैंचेस्टर की प्रतिस्पर्द्धा के कारण भारतीय-व्यवसाय को घाटा होने लगा। बहुत आन्दोलन के पश्चात् भारत सरकार को विवश होकर धंधे को संरक्षण (Protection) प्रदान करना पड़ा। साथ ही देश में विदेशी वस्त्र बहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलन के फल स्वरूप भारतीय वस्त्र व्यवसाय को बहुत सहायता और प्रोत्साहन मिला। जिससे व्यवसाय खूब चमक उठा।

सूती वस्त्र व्यवसाय देश का सबसे महत्वपूर्ण धंधा है। सूती कपड़े के कारखानों में ५ लाख मजदूरों से अधिक काम करते हैं। देश के सब कारखानों में जितने मजदूर काम करते हैं उनके एक चौथियाई से अधिक केवल वस्त्र व्यवसाय में लगे हुये हैं। इसी से इस धंधे की महत्ता प्रतीत होती है।

भारतवर्ष के वस्त्र व्यवसाय को दो बड़ी सुविधायें प्राप्त हैं। एक तो कपास भारत में ही उत्पन्न होती है दूसरे भारतवर्ष कपड़े की खपत का बहुत बड़ा बाजार है। भारतवर्ष कपड़े की खपत का इतना बड़ा बाजार है कि जिसका ठीक ठीक अनुमान करना भी कठिन है। भारतवर्ष के बाजार की विशालता तो इसी से ज्ञात होती है कि यद्यपि जापान और ब्रिटेन से जितना कपड़ा आता वह देश की उत्पत्ति की तुलना में नगण्य है फिर भी ब्रिटिश तथा जापानी कपड़े का भारतवर्ष सबसे बड़ा ग्राहक है।

भारतवर्ष में वस्त्र व्यवसाय के केन्द्र कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में स्थापित हैं। बम्बई सबसे बड़ा वस्त्र व्यवसाय का केन्द्र है। बम्बई कपास की सबसे बड़ी मंडी है। यहाँ से कपास विदेशों को जाती है। अतएव बम्बई की मिलों को कपास मिलने में बहुत सुविधा रहती है। यही नहीं बम्बई को मशीनरी विदेशों से मँगाने की भी सुविधा है, रेल का किराया नहीं देना पड़ता। आरम्भ में यह सुविधायें बहुत महत्वपूर्ण थीं। किन्तु अब बम्बई को कुछ असुविधाओं का सामना करना पड़ रहा है। बम्बई में कारपोरेशन टैक्स इत्यादि अधिक हैं। मजदूरों की मजदूरी कुछ अधिक है, जमीन की बहुत कमी है और कपड़े के खपत के क्षेत्रों से बम्बई दूर पड़ता है। इसके विपरीत अहमदाबाद, नागपूर इत्यादि केन्द्रों में व्यय कम है। मजदूरी सस्ती है तथा वे कपड़े की खपत के क्षेत्र के बीच में हैं। ऊपर दिये हुए कारणों से बम्बई तथा अन्य केन्द्रों में प्रतिस्पर्द्धा उठ खड़ी हुई है और बम्बई की अपेक्षा अन्य केन्द्रों को सुविधायें अधिक हैं। यही कारण है कि बम्बई की मिलें बढ़िया कपड़े बनाने का विशेष प्रयत्न कर रही हैं।

बम्बई और अहमदाबाद सूती कपड़े के प्रमुख केन्द्र हैं। भारतवर्ष में सूती कपड़े की जितनी मिलें हैं उनकी लगभग आधी इन दो औद्योगिक केन्द्रों में हैं। बम्बई और अहमदाबाद की मिलें देश का लगभग आधा सूत और दो तिहाई कपड़ा उत्पन्न करती हैं। इन दो केन्द्रों के अतिरिक्त शोलापूर, नागपूर, कलकत्ता, कानपूर, कोयमबटूर, मद्रास भी सूती कपड़े के महत्वपूर्ण केन्द्र हैं। इनके अतिरिक्त इंदौर, ब्यावर, हाथरस तथा अन्य स्थानों पर जहाँ कपास उत्पन्न होती है सूती कपड़े के केन्द्र स्थापित हो गये हैं।

भारतवर्ष में मिलें जो सूत तैयार करती हैं वह बहुत मोटा होता है। भारत का अधिकांश सूत २० नम्बर से कम का होता है।

४० नम्बर से ऊपर का सूत तो बहुत थोड़ा उत्पन्न होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारतवर्ष में अच्छी और लम्बे फूल वाली कपास उत्पन्न नहीं होती। जो बढ़िया लम्बे फूल वाली कपास भारतवर्ष में उत्पन्न होती है उससे ३० से ४० नम्बर तक का सूत तैयार हो सकता है इससे अधिक का नहीं। पंजाब अमेरिकन कपास का फूल अधिक लम्बा होता है किन्तु किसान इसमे भी देशी कपास मिला देता है। ४० नम्बर से अधिक बारीक सूत कातने के लिए भारतवर्ष में कपास उत्पन्न ही नहीं होती। अहमदाबाद और बम्बई में जो ४० नम्बर से भी अधिक बारीक सूत काता जाता है वह संयुक्तराज्य अमेरिका तथा ईजिप्ट का कपास से तैयार किया जाता है। पिछले वर्षों में भारतीय मिलों ने अपनी उत्पत्ति को बेहद बढ़ा लिया है और जितना कपड़ा तथा सूत भारतीय मिलें देश में तैयार करती हैं उसकी तुलना में विदेशों से आया हुआ कपड़ा तथा सूत नहीं के बराबर है। फिर भारतवर्ष में केवल मिलें ही कपड़ा तैयार नहीं करतीं। हाथ कर्घे से भी देश की खपत का एक चौथाई कपड़ा तैयार होता है। यदि देश की मिलों तथा हाथ कर्घों से तैयार होने वाले कपड़े को लें तो विदेशों से आने वाला कपड़ा उसकी तुलना में १५% से अधिक नहीं है। १९३९ के योरोपीय महायुद्ध के फल स्वरूप भारतीय व्यवसाय को और भी प्रोत्साहन मिला है और भविष्य में भारतवर्ष वस्त्र की दृष्टि से यदि स्वावलम्बी हो जाये तो आश्चर्य न होगा। किन्तु हमारे वस्त्र-व्यवसाय की भावी उन्नति इस बात पर निर्भर रहेगी कि भारतवर्ष में बढ़िया कपास उत्पन्न की जा सकेगी या नहीं। वस्त्र व्यवसाय के लिए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि यहाँ बढ़िया कपास उत्पन्न की जाय। इंडियन काटन कमेटी इस दिशा में प्रयत्नशील है।

भारतवर्ष से थोड़ा सा कपड़ा प्रतिवर्ष दक्षिणी और पूर्वी

अफ्रीका, इराक़, ईरान और लंका को जाता है। जो कुछ भी कपड़ा विदेशों को जाता है वह बम्बई से ही जाता है। बात यह है कि बम्बई की मिलों को अहमदाबाद, नागपूर, कोयमबटूर तथा कानपूर इत्यादि भीतरी केन्द्रों से प्रतिद्वन्द्विता करने में कठिनाई होती है। भीतरी केन्द्रों को बहुत सी सुविधायें प्राप्त हैं जो बम्बई को प्राप्त नहीं हैं। अतएव बम्बई की मिलों ने इन बातों की तरफ ध्यान देना शुरू किया है। एक तो बढ़िया और बारीक कपड़ा बनाने, दूसरे समीपवर्ती एशियाई देशों में कपड़े को बेंचने का प्रयत्न किया जा रहा है।

भारतीय सूती वस्त्र व्यवसाय की विशेषता यह है कि इस धंधे पर देशी पूँजीपतियों का प्रभुत्व है। इस धंधे में अधिकांश पूँजी भारतीयों की है और प्रबन्ध भी भारतीयों के हाथ में है।

जूट (Jute)

जूट की फसल काट लेने के उपरान्त वह खेत पर ही दो या तीन दिन के लिए छोड़ दी जाती है। उसके बोझ बाँध कर पोखरे और तालाब में सड़ने के लिए पानी में डुबो दिये जाते हैं। भाग्यवश वर्षा के दिनों में बंगाल में साफ और मीठे पानी के तालाबों और पोखरों की कमी नहीं रहती। सड़ाने की क्रिया जुलाई में होती है और लगभग १५ दिन लग जाते हैं। जब पौधा सड़ जाता है तब जूट का रेशा डंठल से छुड़ा लिया जाता है। उसे धोकर फिर सुखा लेते हैं फिर बाँध कर उसे बेंच देते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जूट को स्थान क्रीमियन-युद्ध के उपरान्त मिला। इस युद्ध के फल स्वरूप डंडी (स्काटलैंड) के लिनन के धंधे को रूस से सन मिलना बंद हो गया था। उस समय ईस्ट-इंडिया कंपनी ने यहाँ से जूट को भेजना शुरू कर दिया। तभी से भारतीय जूट की माँग बढ़ गई।

भारतवर्ष में सर्व प्रथम सन् १८५५ में श्री आकलैंड महोदय ने सिरामपूर के निकट रिसरा में एक जूट का कारखाना खोला जिसमें जूट की कताई होती थी। १८५९ ई० में कलकत्ते में जूट के कपड़े को तैयार करने के लिए एक कारखाना खोला गया। इसके उपरान्त जूट के कारखाने बहुत तेजी से स्थापित होने लगे। किन्तु भारतवर्ष के अधिकांश कारखाने बंगाल में वह भी कलकत्ते के उत्तर और दक्षिण में हुगली के दोनों ओर केन्द्रित हैं। बंगाल में ९५ मिलें हैं जबकि मद्रास में ४ उड़ीसा में ३ और संयुक्तप्रान्त में केवल एक कारखाना है। जूट के कारखानों का बंगाल में केन्द्रित होने का मुख्य कारण यह है कि उत्तर और पूर्व बंगाल में जूट की पैदावार होती है। मिलें हुगली के दोनों किनारों पर स्थित हैं। जूट नदियों अथवा सड़कों के द्वारा इन मिलों में लाया जाता है। साथ ही तैयार जूट का सामान नावों द्वारा कलकत्ते को आसानी से भेज दिया जाता है। यही नहीं इस जूट क्षेत्र के समीप ही कोयला है। इससे कोयला मिलने में कम व्यय होता है।

सन् १९१४ में योरोपीय महायुद्ध के दिनों में तो जूट के धंधे को आशातीत लाभ हुआ। उस समय जूट के कारखानों में मानों चाँदी बरस रही थी। किन्तु उसके बाद जूट के बुरे दिन आरम्भ हुये। विशेषकर १९२९ से १९३३ तक जो विश्व व्यापी आर्थिक मंदी (Economic Depression) प्रगट हुई उससे तो जूट के धंधे को और भी धक्का लगा, साथ ही खेती की पैदावार को ले जाने के लिए विशेष-प्रकार के जहाज भी बन गये। इस कारण बोरों इत्यादि की माँग बहुत कम हो गई। इसका फल यह हुआ कि जूट के कारखानों ने सप्ताह में कुछ दिन कम करके तथा काम के घंटे घटा कर जूट की पूर्ति (Supply) को कम करने का प्रयत्न किया। सन् १९३९ के योरोपीय युद्ध के फलस्वरूप जूट के बोरों तथा कनवैस की माँग फिर बढ़ी है किन्तु यह स्थायी नहीं है।

भारत के जूट के कारखाने अधिकतर जूट का समान विदेशों को भेजने के लिए तैयार करते हैं। भारतवर्ष में जूट के सामान की खपत कम है। अतएव अधिकांश जूट का सामान विदेशों को विशेषकर संयुक्तराज्य अमेरिका को भेजा जाता है। भारतीय मिल बोरे, हैसेन जूट का कपड़ा, कैनवस, सुतरी तथा रस्सी तैयार करके विदेशों को भेजते हैं। सबसे अधिक बोरे तथा जूट का कपड़ा तैयार किया जाता है। कैनवस तथा सुतली बहुत कम तैयार होती है।

सूती कपड़े के धंधे के विपरीत भारतीय जूट के धंधे पर विदेशी पूंजीपतियों का प्रभुत्व है। भारतीय पूँजी तथा प्रबंध अपेक्षाकृत कम ही है।

लोहा और स्टील (Iron and Steel)

लोहे का धंधा भारतवर्ष में प्राचीन काल में भी उन्नत अवस्था में था। देहली की प्रसिद्ध कीली इस बात का प्रमाण है। आज भी संसार के इने गिने ही कारखाने उतने बड़े लोहे के लट्ठे को बना सकते हैं, फिर वह लट्ठा हजारों वर्ष पुराना है। जिस समय ईस्ट-इंडिया कम्पनी का इस देश पर प्रभुत्व हुआ उस समय भी लोहे का धंधा यहाँ गृह उद्योग-धंधे (Cottage Industry) के रूप में विद्यमान था। सर्व प्रथम १८३० में ईस्ट-इंडिया कंपनी के एक कर्मचारी कर्नल शीथ ने दक्षिण आर्कट के समीप एक आधुनिक ढंग का लोहे का कारखाना स्थापित किया। किन्तु मदरास प्रान्त लोहे के धंधे के लिए उपयुक्त क्षेत्र नहीं था। इस कारण यह प्रयत्न असफल रहा।

प्रारम्भिक प्रयासों के असफल हो जाने के उपरान्त प्रथम सफल प्रयत्न बंगाल में भरिया के कोयले की खानों के समीप हुआ। यह कारखाना बारकर-आयरन वर्क्स के नाम से प्रसिद्ध था। इस

कारखाने में केवल पिग आयरन तैयार होता था। स्टील बनाने के प्रयत्न असफल रहे क्योंकि विदेशों से आने वाला स्टील बहुत सस्ता था। १९२० में कंपनी ने सिंगभूमि के "पनसिरा बुरा" और "बुडा बुरा" क्षेत्रों से लोहा लेकर अधिक पिग आयरन बनाना प्रारम्भ किया। इसी वर्ष बंगाल आयरन और स्टील कंपनी ने कारखाने को ले लिया और कुल्टी में नया कारखाना स्थापित किया। यह कारखाना अब पहले से दुगना पिग आयरन तैयार करता है।

कुल्टी आयरन वर्क्स कोयले और लोहे के क्षेत्र के समीप ही स्थापित किया गया है। यह दामोदर नदी की शाखा बाराकर नदी पर है। लोहा कोलहन राज्य की खानों से मिलता है और कोयला कुल्टी से दो मील पर स्थित रामनगर की खानों से मिल जाता है। इसके अतिरिक्त झरिया क्षेत्र की जितपूर तथा नूनोदिह खानों से भी कोयला मिलता है। चूने का पत्थर (Lime Stone) गंगपूर के बिसरा नामक स्थान तथा बी० यन० आर० पर स्थित पाराघाट और बाराद्वार से आता है। कुल्टी का कारखाना भारतवर्ष का सबसे पुराना कारखाना है।

पिग आयरन तैयार करने वाला दूसरा महत्वपूर्ण कारखाना बर्नपुर वर्क्स है जो आसनसोल में स्थापित है। इस कारखाने को ई० आई० आर० तथा बी० यन० आर० दोनों ही कलकत्ते से जोड़ता हैं। कलकत्ते से यह केवल १३२ मील है। इस कारखाने के लिए कच्चा लोहा कोलहन रियासत के गुआ नामक स्थान से आता है। बी० यन० आर० की शाखा गुआ को जोड़ती है। कोयला तो स्थानीय खानों से ही प्राप्त हो जाता है। कारखाने के लिए पानी दामोदर नदी से लिया जाता है जो कारखाने से लगभग ढाई मील पर है। दामोदर के पानी को पंप करके एक बड़े बाँध में इकट्ठा कर लिया जाता है।

पिग आयरन को तैयार करने में अपेक्षाकृत अधिक कोयला आवश्यक है। इस कारण पिग आयरन के कारखाने कोयले की खानों के समीप हैं। कुल्टी और बर्नपुर (आसंसोल) एक ऐसे प्रदेश में स्थापित है जो घना आबाद है और यह कारखाने कलकत्ता के समीप हैं जो कि भारतवर्ष में लोहे की सबसे बड़ी मंडी है। इन केन्द्रों में बने हुये पिग आयरन को विदेशों में कलकत्ते के बन्दरगाह से ही भेजा जाता है।

भारतवर्ष में सबसे बड़ा लोहे और स्टील का कारखाना जमशेदपुर में स्थापित है। क्योंकि जमशेदपुर का टाटा आयरन वर्क्स अधिकतर स्टील बनाता है। इस कारण कोयले की अपेक्षा लोहे के क्षेत्र से अधिक समीप है। वास्तव में टाटा आयरन वर्क्स के स्थापित होने के उपरान्त ही लोहे और स्टील का धन्धा इस देश में महत्वपूर्ण धन्धा बन सका। टाटा आयरन वर्क्स के स्थापित होने से देश के औद्योगिक विकास के इतिहास में एक नया परिच्छेद खुल गया। स्वर्गीय जे० यन० टाटा प्रथम श्रेणी के जन्म-जात-व्यवसायी थे। उन्होंने अनुभव किया कि बिना स्टील के धन्धे की उन्नति हुये देश की औद्योगिक उन्नति नहीं हो सकती। जब उन्होंने स्टील तैयार करने के लिए कारखाना स्थापित करने की बात चलाई तो विशेषज्ञों ने उनको हतोत्साह किया। उनका कहना था कि भारतवर्ष में स्टील तैयार ही नहीं किया जा सकता। किन्तु श्री टाटा महोदय इस प्रकार निराश होने वाले व्यक्तियों में से नहीं थे। अमेरिका गये और वहाँ से श्री सी० यम० वेल्ड के नेतृत्व में एक स्टील विशेषज्ञों के दल को लाये। खोज करने के उपरान्त श्री वेल्ड महोदय ने राजारा पहाड़ियों में जो मध्यप्रान्त में हैं संसार की अत्यन्त धनी लोहे की खानों को ढूँढ़ निकाला। किन्तु आरम्भ में राजारा पहाड़ियों के कच्चे लोहे को निकालना कठिन था। इस कारण

गुरुमेशनी खानों के लोहे को झरिया के कोयले से गलाना निश्चय किया।

टाटा आयरन स्टील कम्पनी ने अपने कारखाने को स्थापित करने के लिए साकची नामक संथाली गाँव चुना जो कि बाद को जमशेदपूर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जमशेदपूर बिहार के सिंगभूमि में है। इसके उत्तर में सुबनरेखा, तथा खोरकाई नदी पश्चिम में बहती हैं। वास्तव में जमशेदपूर इन दोनों नदियों द्वारा बनाई हुई एक घाटी में स्थित है। यह घाटी केवल तीन मील चौड़ी है, इसके उत्तर और दक्षिण में पहाड़ियाँ हैं जिनमें लोहे की खानें हैं। जिन खानों से टाटा के कारखाने के लिए लोहा आता है वह इन्हीं पहाड़ियों में ६० मील की दूरी पर हैं और कोयला झरिया की खानों से आता है, जो कि यहाँ से १०० मील की दूरी पर हैं। सुबनरेखा तथा खोराकी नदियों से पानी मिलता है। लोहे और स्टील के धन्धे के लिए मीठे और साफ पानी की बहुत आवश्यकता होती है। ये नदियाँ छोटी होने के कारण गरमी में सूख जाती हैं। इस कारण नदियों का पानी सूखने के पूर्व ही एक बड़े तालाब में पम्प करके इकट्ठा कर लिया जाता है। टाटा के कारखाने को बी० यन० आर०, कलकत्ता तथा बम्बई से जोड़ती है। अतएव टाटा का सामान बड़ी सुविधा से कलकत्ता और बम्बई की मंडियों में पहुँच सकता है।

टाटा के कारखाने को केवल लाइमस्टोन या डोलोमाइट दूर से मँगाना पड़ता है। अच्छा लाइमस्टोन जमशेदपूर से २०० मील की दूरी पर मिलता है। जो लाइमस्टोन पास मिलता है वह घटिया है। अब टाटा का कारखाना गंगपूर में पापपोश की खानों से लाइमस्टोन निकालता है परन्तु वह शुद्ध लाइमस्टोन से घटिया होता है। इसके अतिरिक्त 'मैंगनीज, और जिन रसायनिक पदार्थों' (Chemical) की आवश्यकता होती है वे पास ही मिल जाते हैं।

जमशेदपूर जिस प्रदेश मे स्थित है वहाँ आबादी कम है तथा जो कुछ भी है वह संथाली लोगों की है जो कारखाने में काम करना पसंद नहीं करते। इस कारण यहाँ अधिकांश मजदूर बिहार तथा संयुक्तप्रान्त के हैं। आरम्भ में इस कारखाने में अधिकतर कुशल मजदूर विदेशों से बुलाये गये थे। किन्तु अब अधिकतर कुशल मजदूर भारतीय ही हैं। हाँ थोड़े से विदेशी मुख्यत: अमेरिकन कुशल मजदूर अवश्य हैं।

१९१३ में सर्व प्रथम टाटा के कारखाने ने इस देश में स्टील बनाया उसी समय प्रथम योरोपीय महायुद्ध छिड़ गया। विदेशों से भारतवर्ष ही नहीं एशिया के अन्य देशों में भी स्टील आना बन्द हो गया। उस समय टाटा के कारखाने को अभूतपूर्व अवसर मिला। टाटा को आशातीत सफलता मिली। परन्तु युद्ध के समाप्त हो जाने के उपरान्त विदेशी स्टील बनाने वाले कारखानों ने बहुत सस्ते दामों पर बेंचना आरम्भ कर दिया। टाटा के कारखाने को घाटा होने लगा। स्थिति भयंकर हो गई। यह भय होने लगा कि टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी दिवालिया हो जायेगी। टाटा कम्पनी ने भारत सरकार से संरक्षण (Protection) की माँग की। लोकमत तथा एसेम्बली ने भी इस माँग का समर्थन किया। अन्त में टैरिफ बोर्ड की शिफारिस के अनुसार भारत सरकार ने स्टील के धंधे को संरक्षण प्रदान किया और टाटा कंपनी बच गई। क्रमश: टाटा कंपनी ने व्यय में कमी करनी आरम्भ की और उसकी आर्थिक स्थिति सुधर गई। १९३९ के पूर्व टाटा कंपनी की स्थिति बहुत अच्छी थी और वह विदेशी स्टील से बहुत आसानी से मुकाबला कर सकती थी। १९३९ के युद्ध के फलस्वरूप इस कारखाने की आर्थिक स्थिति और भी दृढ़ हो गई है। टाटा का कारखाना बहुत बड़ा है। संसार के बारह सबसे बड़े लोहे के कारखानों में से वह एक है। टाटा के कारखाने में रेल, गर्डर तथा

अन्य स्टील की वस्तुयें तो बनती ही हैं। परन्तु अभी थोड़ा समय हुआ कि टाटा कम्पनी ने एक टिनप्लेट बनाने का कारखाना तथा खेती के औजारों के बनाने का कारखाना खड़ा किया है। यही नहीं टाटा का कारखाना भविष्य में जूट और चाय की मशीनें, तार तथा अन्य स्टील का सामान बनाने का विचार कर रहा है।

इन कारखानों के अतिरिक्त कलकत्ता की बर्न कम्पनी ने इंडियन आयरन स्टील कम्पनी के नाम से हीरापूर में एक कारखाना खोला। कलकत्ते की बर्ड-एण्ड-कम्पनी ने भी मनोहरपूर में यूनाथटैड-स्टील कारपोरेशन-आव इंडिया लिमिटेड नामक एक कारखाना स्थापित किया है।

बंगाल और बिहार के बाहर केवल एक ही लोहे का कारखाना है जो कि मैसूर राज्य में है। यह कारखाना भद्रावती नामक स्थान पर है और मैसूर राज्य की रेलवे लाइन की बिरूर-शिमोगा शाखा इसको जोड़ती है। कारखाना भद्रा नदी के पश्चिम किनारे पर है। कारखाने के समीप ही बहुत बड़े जंगल हैं जिनकी लकड़ी के कोयले से कारखाने में लोहा गलाया जाता है। मैसूर राज्य में कोयला नहीं है और बंगाल बिहार से कोयला मँगा कर लोहा गलाना बहुत ही खर्चीला है। अतएव भद्रावती के कारखाने में लकड़ी के कोयले का ही उपयोग किया जाता है। भारतवर्ष में केवल भद्रावती का ही कारखाना ऐसा है जहाँ लकड़ी का कोयला काम में आता है। कच्चा लोहा केमानगुन्दी की खानों से आता है। यह खानें बाबा बुदान की पहाड़ियों में स्थित हैं और भद्रावती से केवल २६ मील दक्षिण में हैं। लाइमस्टोन भद्रावती से केवल १३ मील पूर्व में भांदिगुदा नामक खानों से आता है। कच्चे लोहे तथा लाइमस्टोन की दृष्टि से भद्रावती की स्थिति अन्य कारखानों से अच्छी है। हाँ यहाँ का कच्चा लोहा बहुत अच्छा नहीं है।

लोहा और स्टील के अतिरिक्त इन कारखानों में बहुत सी रासायनिक वस्तुयें कोक से तैयार होती हैं। इनमें सलफेट आफ अमोनिया और कोलतार मुख्य हैं। टाटानगर में कुल्टी तथा अन्य स्थानों पर जहाँ लोहा गलाने के लिए कोक काम में लाया जाता है कोलतार तथा अमोनिया सलफेट तैयार किया जाता है और भद्रावती में जहाँ लकड़ी का कोयला काम में लाया जाता है लकड़ी का एलकोहल (Wood Alcohol) तथा लकड़ी का तार (Wood Tar) तैयार किया जाता है। भद्रावती में लोहे के कारखाने की गौण वस्तुओं विशेषकर स्लैग (Slag) का उपयोग करने के लिए सीमेंट का कारखाना अभी थोड़े दिन हुये स्थापित किया गया है।

भारतवर्ष में १९३८ में १८.५ लाख टन कच्चा लोहा निकाला गया। जब कच्चे लोहे के संसार की उत्पत्ति ७ करोड़ ५० लाख टन थी। इसी वर्ष भारतवर्ष के कारखानों ने १५,७६,००० टन पिग आयरन तैयार किया जब कि पृथ्वी के सब देशों की उत्पत्ति ८ करोड़ ३० लाख टन थी। इसी वर्ष भारतवर्ष के कारखानों ने ९,८२,००० टन स्टील तैयार किया जबकि पृथ्वी के सब देशों की स्टील की उत्पत्ति १० करोड़ टन के लगभग थी। कच्चे लोहे से पिग आयरन तथा स्टील का अधिक होने का कारण यह है कि पुराना रद्दी लोहा भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया है।

भारतवर्ष में जितना पिग आयरन तैयार होता है उतने की देश में खपत नहीं होती। प्रतिवर्ष ३१ प्रतिशत के लगभग पिग आयरन विदेशों को भेजा जाता है।

शक्कर का धंधे (Sugar-Industry)

सन् १९३१ के पूर्व भारतवर्ष प्रतिवर्ष लगभग २० करोड़ रुपये की शक्कर विशेष कर जावा से मंगाता था। देश में गृह-उद्योग-

धंधे के रूप में हाथ से शक्कर बनाने का धंधा प्रचलित था और कुछ कारखाने भी थे किन्तु देश की माँग को पूरा करने के लिए बाहर से शक्कर मँगानी पड़ती थी। टैरिफ बोर्ड की शिफारिस पर भारत सरकार ने शक्कर के धंधे को संरक्षण प्रदान किया जिसके फल स्वरूप आश्चर्य-जनक गति से शक्कर के कारखाने स्थापित होने लगे और भारतवर्ष शीघ्र ही शक्कर की दृष्टि से स्वावलम्बी बन गया। शक्कर का धंधा इस बात का प्रमाण है कि यदि सरकार धंधों को संरक्षण और प्रोत्साहन दे तो देश में आश्चर्य-जनक तेजी से औद्योगिक उन्नति हो सकती है। यदि जनता को यह विश्वास हो कि सरकार धंधों को प्रोत्साहन देगी तो पूंजी की कमी भी नहीं रहेगी। शक्कर के व्यवसाय में जो चालीस करोड़ रुपये की पूंजी लगी है वह इस बात का प्रमाण है।

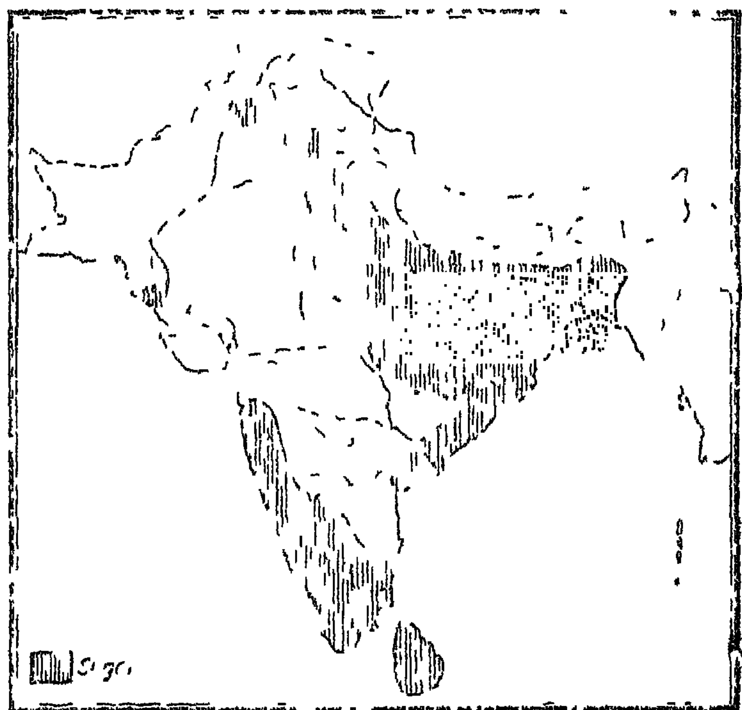
सूती वस्त्र की तरह शक्कर के धंधे को भी यह सुविधा है कि देश में ही उसकी खपत के लिए विशाल क्षेत्र है। टैरिफ बोर्ड ने १६३१ में अनुमान किया था कि भारतवर्ष में ६० करोड़ रुपये की शक्कर की खपत होती है। क्रमशः देश में शक्कर की माँग चाय पीने की आदत के साथ साथ बढ़ती जा रही है। इस माँग पर शक्कर का धंधा निर्भर है।

शक्कर के धंधे के लिए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि कारखाने के समीप ही गन्ने की खेती हो जिससे गन्ना मिलने में कठिनाई न हो। उत्तर भारत विशेषकर संयुक्तप्रान्त के उत्तरी भाग तथा बिहार में गन्ने की खेती कुछ क्षेत्रों में केन्द्रित है जिससे वहाँ शक्कर के कारखाने खड़े करने में विशेष सुविधा होती है। शक्कर के धंधे को एक सुविधा यह भी है कि उसके लिए बाहरी ईंधन की बहुत कम आवश्यकता होती है। गन्ने को पेरने के बाद जो खोई बचती है उसी को बायलर में जलाकर शक्ति उत्पन्न की जाती है। किन्तु केवल खोई से ही काम नहीं चलता कुछ ईंधन

कोयला या लकड़ी भी जलाना पड़ता है। उत्तर भारत में गाँवों में यथेष्ट ईंधन मिलता है। इसके अतिरिक्त बहुत से कारखाने तराई के पास हैं जहाँ ईंधन बहुत आसानी से मिल सकता है। यही कारण है कि शक्कर के बहुत से कारखाने लकड़ी जलाते हैं और कुछ कोयला भी जलाते हैं। शक्कर के कारखानों में पानी की भी आवश्यकता होती है परन्तु बहुत पानी की आवश्यकता नहीं होती। पानी ट्यूब वेल खोदकर प्राप्त किया जाता है अथवा नहरों से ले लिया जाता है। शक्कर के धन्धे में कुशल मजदूरों की आवश्यकता बहुत कम होती है। अकुशल मजदूर गाँवों में सस्ती मजदूरी पर सब कहीं यथेष्ट संख्या में मिल जाते हैं। अतएव शक्कर के धंधे का स्थानीयकरण गन्नें की पैदावार पर निर्भर है।

भारतवर्ष में लगभग १५० शक्कर के कारखाने हैं। इनमें अधिकांश गंगा की घाटी में हैं। लगभग ७५ प्रतिशत कारखाने संयुक्तप्रान्त तथा बिहार में हैं। भारतवर्ष में जितनी शक्कर उत्पन्न की जाती है उसका ८०% केवल संयुक्तप्रान्त और बिहार में ही उत्पन्न होती है। पिछले वर्षों में भारतीय शक्कर के कारखानों तथा खंड़सारों से इतनी अधिक शक्कर उत्पन्न होने लगी है कि वह भारतवर्ष की माँग से अधिक होती है। संयुक्तप्रान्त तथा बिहार की सरकार ने १९४१ में शक्कर की उत्पत्ति को कम करने का प्रयत्न किया; क्योंकि यदि कारखानों को जितनी शक्कर वे बना सकते थे बनाने दी जाती तो इतनी अधिक शक्कर उत्पन्न होती कि उसकी खपत देश में हो ही नहीं सकती। पिछले वर्ष की बची हुई बहुत सी शक्कर कारखानों के गोदामों में भरी पड़ी थी। अतएव शक्कर की उत्पत्ति को कम करने की आवश्यकता हुई। भविष्य में शक्कर की उत्पत्ति को और भी कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है। भारतीय शक्कर का धंधा इस समय ऐसी अवस्था में

पहुँच गया है कि यदि भारतीय कारखानों को विदेशों में शक्कर भेजने दी जाय तो भारतीय शक्कर संसार के बाजार में अन्य देशों की शक्कर के प्रतिस्पर्द्धा में टिक सकती है। परन्तु भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय शक्कर समझौते (International Sugar Agreement) को स्वीकार कर लिया है जिसके अनुसार सरकार ने शक्कर का बाहर भेजा जाना बंद कर दिया है। इस समय



शक्कर के धंधे की दशा दयनीय हो रही है। यदि भारत सरकार ने विदेशों को शक्कर भेजने की आज्ञा न दी तो भविष्य में शक्कर की

उत्पत्ति को कम करना होगा और गन्ने की खेती को भी कम करना होगा। भारत सरकार ने शक्कर के धंधे पर आबकारी-कर (Excise-Tax) भी लगा दिया है और प्रतिवर्ष गन्ने का भाव भी निर्धारित करती है। धंधे को गिरने से बचाने के लिए यह आवश्यकता है कि शक्कर को बाहर भेजने दिया जाय। अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार भारतवर्ष बर्मा के अतिरिक्त और कहीं शक्कर नहीं भेज सकता।

बड़े बड़े कारखानों के अतिरिक्त गन्ना उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में खंडसारी धंधा भी चलता है। हाथ से बनी हुई शक्कर का मूल्य बाजार में कुछ ऊँचा रहता है क्योंकि साधारण भारतीयों का विश्वास है कि हाथ की बनी शक्कर अच्छी होती है।

संयुक्तप्रान्त और बिहार के अतिरिक्त पंजाब, बम्बई, बंगाल तथा मद्रास में भी कुछ शक्कर के कारखाने हैं। भारतवर्ष में १९३६ में २ करोड़ ७५ लाख टन शक्कर तैयार हुई जब कि पृथ्वी के सब देशों में गन्ने की शक्कर की कुल उत्पत्ति १७३,६००,००० टन थी। क्यूबा ने इस वर्ष २१,४००,००० टन, जावा ने १५,५००,००० टन शक्कर उत्पन्न की। ध्यान रहे १९२९ में जावा ३०,०००,००० टन के लगभग शक्कर तैयार करता था और विशेषकर भारतवर्ष को भेजता था। संरक्षण मिलने के फल स्वरूप जब भारतवर्ष में धंधे की उन्नति हुई तो जावा में उत्पत्ति बहुत घट गई।

दियासलाई का धंधा (Match Industry)

दियासलाई एक अत्यन्त दैनिक आवश्यकता की वस्तु है। दियासलाई के लिए लकड़ी, सस्ते मजदूर और रासायनिक पदार्थ तथा बाजार की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष में मजदूरी बहुत सस्ती है और देश में ही विस्तृत खपत का क्षेत्र है, किन्तु दिया-

सलाई बनाने के लिए उपयुक्त लकड़ी का यहाँ अभाव है। यद्यपि भारतवर्ष में वे वृक्ष पाये जाते हैं जिनकी लकड़ी दियासलाई बनाने के लिए उपयुक्त है किन्तु यह वन बिखरे हुये हैं तथा लकड़ी यथेष्ट मात्रा में नहीं मिलती। टैरिफ बोर्ड ने एक ग्रोस दियासलाई की लागत व्यय का जो अनुमान लगाया है वह इस प्रकार है। मजदूरी ५ आना, लकड़ी ३ आना, रासायनिक पदार्थ १ आना, अन्य व्यय ५ आना। इससे स्पष्ट हो जाता है कि लागत व्यय में मजदूरी का अंश सबसे महत्वपूर्ण है। मजदूरी के उपरान्त लकड़ी पर ही सबसे अधिक व्यय होता है।

कलकत्ता और बम्बई दियासलाई के कारखानों के दो मुख्य केन्द्र हैं। कलकत्ते के कारखानों में अधिकतर भारतीय लकड़ी काम में लाई जाती है। दियासलाई के उपयुक्त भारतीय लकड़ी सुन्दरबन तथा अंडमन द्वीप से आती है। कलकत्ते के कारखानों में जेनवा नामक लकड़ी का बहुत उपयोग होता है। सुन्दरबन में जेनवा के बहुत से बड़े जङ्गल हैं। जेनवा के अतिरिक्त पपिता, धूप, दिदू, और बकोता की लकड़ी का उपयोग भी होता है। यह अंडमन द्वीप से आती है।

बम्बई के अधिकतर कारखानों में ऐसपेन (Aspen) लकड़ी का उपयोग होता है। यह लकड़ी फिनलैंड तथा रूस से मँगाई जाती है। किन्तु कुछ दियासलाई के कारखाने गुजरात बम्बई के भागों तथा संयुक्त प्रान्त में हैं जो कि सेमल, आम तथा सलाई इत्यादि भारतीय लकड़ियों को काम में लाते हैं। दियासलाई की बत्ती के लिए आम की लकड़ी बहुत अच्छी होती है। सेमल बाक्स बनाने के लिए तो बहुत अच्छी होती है; किन्तु बत्ती बनाने के लिए अच्छी नहीं होती। कुछ कारखानों ने सेमल के जंगल लगाये हैं जहाँ से वे अपने लिए लकड़ी प्राप्त करते हैं।

१९२० में भारतवर्ष लगभग डेढ़ करोड़ रुपये से अधिक की

दियासलाई विदेशों से विशेषकर स्वीडन से मँगाता था; किन्तु भारत सरकार ने दियासलाई के धन्धे को भी संरक्षण प्रदान किया तो स्वीडन के पूँजीपतियों और दियासलाई के व्यवसायियों ने भारतवर्ष में ही अपने कारखाने स्थापित कर दिये। स्वीडिश दियासलाई के कारखानों ने लगभग सारे दियासलाई के व्यवसाय को हथिया लिया है। इसका फल यह हुआ है कि भारतवर्ष दियासलाई नाममात्र को ही विदेशों से मँगाता है। दियासलाई की दृष्टि से भी भारतवर्ष स्वावलम्बी बन गया है। प्रतिवर्ष भारतवर्ष के कारखाने ढाई करोड़ ग्रोस बाक्स दियासलाई तैयार करते हैं। भारत सरकार ने दियासलाई पर आबकारी कर लगा दिया है। दियासलाई वस्तुतः एक विदेशी व्यवसाय है। इस पर विदेशी (स्वीडिश) पूँजीपतियों का एकाधिपत्य है। भारतीय-पूँजी तथा प्रबन्ध इस व्यवसाय में बिल्कुल नहीं है।

चमड़े का धंधा (Leather Industry)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में पशुओं की संख्या बहुत है। साथ ही प्रतिवर्ष पशुओं की महामारी के कारण लाखों की संख्या में पशु मरते हैं। साथ ही माँस के लिए भी पशु मारे जाते हैं। अस्तु भारतवर्ष में खाल बहुत होती है। यहाँ से प्रतिवर्ष लगभग आठ करोड़ रुपये की खाल विदेशों को विशेष कर ब्रिटेन को जाती है। वन सम्पत्ति के परिच्छेद में यह बतलाया जा चुका है कि चमड़ा कमाने के लिए जिन वृक्षों की छालें तथा फलों (मैरीबोलन) की आवश्यकता होती है वे भारतवर्ष के वनों में बहुत पाये जाते हैं। भारतवर्ष में पुराने ढंग से चमड़ा कमाने की रीति बहुत समय से प्रचलित थी। आज भी गाँव के चमार पुरानी रीति से ही चमड़ा कमाते हैं। किन्तु सबसे पहले आधुनिक ढंग से चमड़ा तैयार करने तथा चमड़े का सामान बनाने

के लिए सरकार ने कारखाने खोले। बात यह थी कि सेना की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए बढ़िया चमड़े की आवश्यकता थी। अतएव सरकार ने कानपूर में गवर्नमेंट हारनेस सेड्लरी फेक्टरी स्थापित की। कुछ समय उपरान्त अन्य पूँजीपतियों ने भी चमड़े के कारखाने खोले। क्रमशः कानपूर चमड़े के धन्धे का केन्द्र बन गया। कानपूर में खाल की मंडी है, पानी मिलने की सुविधा है और बबूल की छाल भी मिल जाती है। मदरास और बम्बई में भी चमड़े के कारखाने खोले गए। दक्षिण भारत में चमड़ा कमाने के काम में आने वाली छाल बहुत मिलती है। इस कारण चमड़े का धन्धा दक्षिण में केन्द्रित हो गया। मदरास में चमड़े के सबसे अधिक कारखाने हैं। इनके अतिरिक्त आगरा, सहारनपूर तथा अन्य स्थानों पर भी चमड़े का धंधा होता है। पिछले महायुद्ध के उपरान्त भारतवर्ष में क्रोम पद्धति द्वारा क्रोम चमड़ा तैयार होने लगा है। भारत सरकार ने धन्धे को विदेशी चमड़े की प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिए उसे संरक्षण प्रदान कर दिया है। १६३६ के योरोपीय महायुद्ध के फल स्वरूप चमड़े के धन्धे की विशेष उन्नति हुई है।

शीशे का धंधा (Glass Industry)

भारतवर्ष में शीशे का धंधा बहुत पुराना है किन्तु आधुनिक ढंग के कारखाने पिछले ३० या ३५ वर्षों में ही स्थापित हुये हैं।

शीशे के धन्धे के लिए अच्छी रेत और कोयला अत्यन्त आवश्यक है। भारतवर्ष में शीशा बनाने योग्य रेत की कमी नहीं है। बंगाल की राजमहल पहाड़ियों में, नैनी (इलाहाबाद) के पास लोहगरा और बरगढ़ में, विंध्या के रेतीले पत्थरों को पीस कर, सानखेड़ा (बड़ौदा) के रेतीले पत्थरों तथा साबरमती नदी से, बीकानेर, जयपूर में सवाई माधोपूर, तथा पंजाब में होशियार

पूर जिलों से शीशा बनाने योग्य रेत मिलती है। नैनी के पास पाई जाने वाली रेत अधिकांश कारखानों में काम आती है। सोडा तथा ऐश (Soda Ash) बाहर से मँगाया जाता है।

भारतवर्ष में अधिकांश कारखाने सिंध गंगा के मैदान में स्थित हैं। बात यह है कि यद्यपि भारतवर्ष में मुख्य कच्चा माल (Raw material) मिलता है किन्तु कठिनाई इस बात की है कि कारखानें कहाँ खड़े किये जायें। क्योंकि सब वस्तुयें एक स्थान में नहीं मिलतीं। अतएव सिंध, गंगा के मैदान में देश के ५५ कारखानों में से ४५ कारखाने स्थित हैं। इन मैदानों में रेलों का एक जाल सा बिछा हुआ है जिससे सब सामान को इकट्ठा करने में सुविधा होती है। अधिकांश शीशे के कारखाने संयुक्तप्रान्त में है। फीरोजाबाद इस धंधे का सबसे बड़ा केन्द्र है। इसके अतिरिक्त बम्बई, जबलपूर, लाहौर, अम्बाला, नैनी, इलाहाबाद, बहजोई, कलकत्ता में भी बड़े बड़े कारखाने हैं।

यद्यपि देश में आधुनिक ढंग के कारखाने स्थापित हो गये हैं फिर भी विदेशों से मुख्यतः योरोप और जापान से भारत में सवा करोड़ रुपये के लगभग का सामान आता है। यहाँ के कारखाने अधिकतर चिमनी, बोतल, ग्लास, छोटे छोटे जार, दवातें, तशतरियाँ और प्यालियाँ बनाते हैं। अभी तक शीट ग्लास (Sheet glass) और प्लेट ग्लास बहुत कम तैयार होता है।

बड़े बड़े कारखानों के अतिरिक्त भारतवर्ष में पुराने ढंग से भी शीशे का सामान तैयार किया जाता है। अधिकतर यह घटिया चीजें होती हैं। नदियों के रेत तथा रेह से यह तैयार किया जाता है। इस कारण अच्छा और साफ नहीं होता। संयुक्तप्रान्त में फीरोजाबाद तथा दक्षिण में बेलगाँव इसके मुख्य केन्द्र हैं। फीरोजाबाद में चूड़ियाँ बहुत बनती हैं।

सिमेंट (Cement Industry)

सीमेंट का धन्धा भी कुछ ही वर्षों में यहाँ उन्नति कर गया है। १९१४-१८ के प्रथम योरोपीय महायुद्ध के समय भारतवर्ष में बहुत कम सीमेंट बनाया जाता था। अधिकांश सीमेंट विदेशों से आता था। किन्तु अब बहुत थोड़ा सीमेंट विदेशों से आता है। सम्भावना इस बात की है कि शीघ्र ही भारतवर्ष सीमेंट की दृष्टि से भी स्वावलम्बी हो जायगा। ८० प्रतिशत से अधिक सीमेंट तो इस समय भी भारतीय कारखाने ही तैयार करते हैं।

सीमेंट के लिए लाइम स्टोन (Lime Stone), चिकनी मिट्टी (Clay) तथा कोयले की आवश्यकता होती है। थोड़ा जिपसम (Gypsum) भी आवश्यक है। भारतवर्ष में लाइमस्टोन बहुत अच्छा और ढेरों मिलता है। मिट्टी भी मिलती है। देश में जिपसम निकाला जाता है किन्तु बहुत दूर से लाना पड़ता है। कोयले की भी यही दशा है। अधिकांश सीमेंट के कारखाने उन स्थानों पर स्थापित किये गये हैं जहाँ कि अच्छा लाइमस्टोन मिलता है। किन्तु जहाँ भारतीय सीमेंट के कारखानों को लाइमस्टोन और चिकनी मिट्टी मिलने की सुविधा है वहाँ सबसे बड़ी कमी यह है कि कोयले की खानें बहुत दूर हैं। इस कारण कोयले के लिए बहुत व्यय करना पड़ता है।

लाइमस्टोन और चिकनी मिट्टी के मिक्सचर को तेज आँच देकर सीमेंट तैयार किया जाता है। मिक्सचर में तीन चौथियाई कैलसियम कारबोनेट (Calcium Carbonate) तथा एक चौथियाई चिकनी मिट्टी रहती है। मिक्सचर में थोड़ा सा जिपसम भी रहता है। कहीं कहीं लाइमस्टोन ऐसा पाया जाता है कि जिसमें सभी आवश्यक चीजें ठीक मात्रा में मिलती हैं और अन्य वस्तुयें मिलानी नहीं पड़तीं।

मद्रास-सिंध और काठियावाड़ के सीमेंट के कारखानों को छोड़ कर और सभी कारखाने देश के भीतरी भागों में स्थित हैं। इस कारण वे सीमेंट को अपने अपने क्षेत्र में आसानी से बेच सकते हैं। हाँ, मद्रास, सिंध और काठियावाड़ के सीमेंट के कारखानों को जो कि बन्दरगाहों में हैं विदेशी सीमेंट की प्रतिद्वन्दिता का सामना करना पड़ता है। भारत-सरकार ने बाहर से आने वाले सीमेंट पर ९% की ड्यूटी लगा दी है। सीमेंट के कारखाने ग्वालियर, कटनी, बूंदी, बिहार, बंगाल, काठियावाड़, सिंध तथा मद्रास में हैं। अब तो सीमेंट के कारखानों का एक संघ बन गया है। इस कारण धन्धा और भी संगठित रूप से उन्नति कर रहा है। भारतवर्ष के कारखानों में लगभग १२ लाख टन सीमेंट तैयार होता है। सन् १९३७ में भारतवर्ष के कारखानों में ११.४ लाख टन सीमेंट तैयार हुआ। जब कि संसार भर के सब देशों ने ८१० लाख टन से कुछ कम सीमेंट तैयार किया। १९३८ में संयुक्त राज्य अमेरिका ने १८१ लाख टन, जर्मनी ने १५६ लाख टन, ब्रिटेन ने ७६ लाख टन और भारतवर्ष ने १२ लाख टन सीमेंट उत्पन्न किया। १९३८ में संसार के सब देशों ने ८२१ लाख टन सीमेंट तैयार किया था।

कागज़ का धंधा (Paper Industry)

भारतवर्ष में कागज़ बनाने के लिए यथेष्ट कच्चा माल है। अधिकतर कागज़ सबाइ घास, और भाभर घास से तैयार होता है। यह घास इंगलैण्ड की स्पार्टो घास के समान ही है। किन्तु इन घासों में खराबी यह है कि वे दूसरी घासों से मिली रहती हैं। इस कारण उसे शुद्ध रूप में प्राप्त कर सकना कठिन है। साथ ही यह घास यथेष्ट नहीं है। इन घासों के अतिरिक्त बेब घास का भी उपयोग कागज़ की लुब्दी बनाने में होता है। इसके विपरीत

बाँस तथा अन्य कच्चा माल अनन्त राशि में मिलता है। अन्य देशों में कागज लकड़ी की लुब्दी से तैयार किये जाते हैं किन्तु भारतवर्ष में कागज बनाने योग्य वन इतने ऊँचे पर हैं कि उसका उपयोग नहीं किया जा सकता। बाँस भारतवर्ष में बहुत अधिक मात्रा में मिलता है। साथ ही बाँस का वन बहुत जल्दी ही फिर उग आता है। जहाँ लकड़ी के वनों को फिर से उगने में पचासों वर्ष लगते हैं। वहाँ बाँस का वन दो वर्ष में ही तैयार हो जाता है। अतएव जहाँ तक बाँस का सम्बन्ध है भारतवर्ष के वनों में बाँस अनन्त राशि में भरा पड़ा है। किन्तु बाँस से बना हुआ कागज घास के बने हुये कागज की अपेक्षा कम टिकाऊ होता है। बाँस की लुब्दी में बिना लकड़ी की लुब्दी मिलाये कागज नहीं बनाया जा सकता है। घास की लुब्दी में भी थोड़ी लकड़ी की लुब्दी मिलानी पड़ती है। बाँस का बना कागज चिकना और सुन्दर होता है।

भारतवर्ष की अधिकांश कागज की मिलें कलकत्ते के समीप हैं। इसका कारण यह है कि कलकत्ते में कागज की माँग है, कोयला समीप ही मिलता है और गंगा के पानी का उपयोग हो सकता है। हाँ कच्चा माल अवश्य वहाँ से दूर है। पिछले कुछ वर्षों में कागज की मिल उन प्रदेशों में भी स्थापित की गई हैं जहाँ कि घास या बाँस मिलता है। परन्तु उन क्षेत्रों से कागज का बाजार तथा कोयला दूर पड़ता है। संयुक्तप्रान्त, पंजाब, बम्बई, आसाम और दक्षिण में फुटकर बिखरे हुये कारखानें स्थापित किये गये हैं। किन्तु कागज के धंधे का प्रधान केन्द्र कलकत्ता का समीपवर्ती प्रदेश है।

भारतवर्ष में साधारण छापे के कागज को बनाने के लिए घास की लुब्दी में लकड़ी की लुब्दी मिलाई जाती है। बढ़िया कागज बनाने के लिए कारखाने विदेशों से लकड़ी की लुब्दी मँगाते हैं और

उससे कागज तैयार करते हैं। भारतवर्ष में पट्टा तो बहुत कम उत्पन्न होता है। इस समय देश में १४ पेपर मिल कागज तैयार कर रही हैं परन्तु फिर भी भारतवर्ष में जितना कागज तैयार होता है उसका दुगने से अधिक कागज विदेशों से मँगाना पड़ता है। अधिकांश विदेशों से आने वाला कागज समाचार पत्रों तथा पुस्तकों की छपाई के काम आता है। भारतवर्ष में साधारणतया एक करोड़ रुपयों का कागज विदेशों से आता है। १९३९ के योरोपीय महायुद्ध के कारण बाहर से कागज आना प्रायः बंद हो गया इस कारण देश की मिलों को अपनी उत्पत्ति को बढ़ाने का अपूर्व अवसर मिला।

सन् १९३८ में भारतवर्ष के कारखानों ने ६० हजार टन कागज तैयार किया। १९३९ के योरोपीय महायुद्ध के प्रारम्भ हो जाने से कागज का विदेशों से आयत कम हो गया है और भारतीय कारखानों ने अपनी उत्पत्ति को बढ़ा दिया है। १९३७ में संसार भर में दो करोड़ टन के लगभग कागज और ९० लाख टन बोर्ड तैयार हुआ था।

कुटीर उद्योग-धंधे (Cottage Industry)

भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से कुटीर उद्योग धन्धे महत्वपूर्ण रहे हैं और आज भी कुटीर उद्योग-धन्धे नष्ट नहीं हो गये हैं। गाँवों में कुटीर उद्योग-धन्धे आज भी जीवित दशा में हैं। भारतवप में बड़े-बड़े कारखाने केवल बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों और नगरों में ही दृष्टिगोचर होते हैं। गाँवों में आज भी कुटीर उद्योग-धन्धे प्रचलित हैं। कुटीर उद्योग-धन्धे किसी स्थान विशेष पर केन्द्रित नहीं हैं वे देश भर में बिखरे हुये हैं। कुछ जातियाँ विशेष उन धन्धों को करती हैं। बेटा बाप से काम सीख लेता है, वही पुराने ढंग से काम होता है, औजार बहुत साधारण होते हैं;

और अधिकतर गाँवों में ही तैयार हो जाते हैं। कच्चा माल भी गाँवों में ही उत्पन्न होता है और तैयार माल की खपत गाँवों में ही होती है। कुटीर उद्योग-धंधे के साथ साथ कारीगर खेती करते हैं। जब खेती से अवकाश मिलता है तो धंधे के द्वारा कुछ कमा लेते हैं। इन धंधों में कोई सुधार नहीं हुआ है। वही पुराने ढंग की डिज़ाइन ये लोग तैयार करते हैं और वही पुराने औज़ारों को काम में लाते हैं।

वैसे तो देश भर में कुटीर उद्योग-धंधे फैले हुये हैं परन्तु कोई कोई स्थान वहाँ के कारीगरों की कुशलता के कारण विशेष प्रसिद्ध हो गया है। ऐसे स्थानों में कोई धंधा विशेष केन्द्रित हो जाता है। उदाहरण के लिए बनारस का रेशम का धंधा और मुरादाबाद के पीतल के बर्तन इत्यादि।

कुटीर उद्योग-धंधों में हाथ कर्घे से कपड़ा तैयार करने का धंधा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह अनुमान किया जाता है कि देश में लगभग पचास लाख बुनकर इस धंधे में लगे हुये हैं। हाथ कर्घों से देश की कुल कपड़े की माँग का २५% कपड़ा उत्पन्न होता है और देश में जितना कपड़ा तैयार होता है उसका लगभग ४० प्रतिशत कपड़ा हाथ कर्घों से तैयार होता है। देश में लगभग २५ लाख कर्घे चलते हैं। वैसे तो देश के प्रत्येक भाग में हाथ कर्घे से कपड़ा तैयार होता है किन्तु जिन प्रदेशों में रेलवे लाइन तथा गमनागमन की सुविधा कम है वहाँ यह धंधा अधिक महत्वपूर्ण है। आसाम, बंगाल, मदरास तथा राजपूताने में यह धंधा विशेष महत्वपूर्ण है। आसाम में लगभग ४५०,००० कर्घे हैं। हाथ कर्घे के बुनकर अब मीलों का सूत काम में लाते हैं। कुछ वर्षों पूर्व तक हाथ कर्घों के बुनकर अधिकतर विदेशी सूत को काम में लाते थे किन्तु कुछ वर्ष हुये कि भारत सरकार ने विदेशों से आने वाले सूत पर ड्यूटी लगा दी जिससे कि हाथ कर्घे के बुनकर अब देशी

मिलों का सूत ही काम में लाते हैं। भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारों के द्वारा हाथ कर्घे के धंधे को सहायता दी थी। आज प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सरकारें इस धंधे को सहायता और प्रोत्साहन दे रही हैं।

हाथ कर्घे के धंधे को देशी मिलों की प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है। हाथ कर्घे के बुनकरों के सामने कुछ कठिनाइयाँ हैं। वे आधुनिक डिजाइनें तैयार नहीं कर सकते, बाजार में कौन सी डिजाइन अधिक पसंद की जाती है यह मालूम करने का उनके पास कोई साधन नहीं होता और न वे अपने माल को अच्छी तरह से बाजार में बेंच ही सकते हैं।

प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सरकार ने हैंड लूम-यम्पोरियम स्थापित किये हैं अथवा सहकारी यूनियन को सहायता दी है जो हाथ कर्घे के द्वारा तैयार कपड़े बेंचती है। हाथ कर्घे का धंधा देश का एक महत्वपूर्ण धंधा है। यदि सहकारी बुनकर समितियों के द्वारा इस धंधे का संगठन किया जाय और एक प्रान्तीय सहकारी बुनकर यूनियन सम्बन्धित समितियों के कपड़े को बेंचने का प्रबंध करे, बुनकर समितियों को सूत देने का प्रबंध करे, नये डिजाइनों का आविष्कार करवा कर समिति के सदस्यों को बतलाये, लोगों की रुचि का अध्ययन करे तथा कर्घे इत्यादि की उन्नति का प्रयत्न करे तो यह धंधा विशेष उन्नति कर सकता है।

हाथ कर्घे के धंधे के अतिरिक्त पंजाब, काश्मीर तथा संयुक्त प्रान्त में गलीचे और कम्बल का धंधा महत्वपूर्ण है। काश्मीर, गलीचे विदेशों को भेजे जाते हैं। किन्तु अब धंधे की दशा अच्छी नहीं है क्योंकि इस धंधे को मिलों द्वारा बने हुये गलीचों का मुकाबला करना पड़ता है। हाथ से बने हुये गलीचे अधिक मूल्य के होते हैं इस कारण उनकी माँग कम हो रही है। कम्

का धन्धा संयुक्तप्रान्त में मिरजापूर, राजपूताना, तथा पंजाब में बहुत प्रचलित है।

इन धन्धों के अतिरिक्त पीतल के बर्तन, चमड़े की चीजें, लकड़ी, तेल पेरना, कुम्हारी, लुहारी, रस्सी बनाना इत्यादि मुख्य कुटीर धन्धे हैं। भारतवर्ष में कुटीर धन्धों का विशेष महत्व है। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में ग्राम-उद्योग-संघ इस ओर विशेष प्रयत्न कर रहा है। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय सरकारें भी कुटीर धन्धों को प्रोत्साहन दे रही हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत के उद्योग-धन्धों की गिरी हुई हालत के क्या कारण हैं? समझा कर लिखिए।

२—भारत में कौन कौन से मुख्य उद्योग-धन्धों की उन्नति की जा सकती है?

३—भारत के औद्योगीकरण के पक्ष और विरोध में अपना मत प्रकट करिए।

४—निम्नलिखित भारतीय उद्योग धन्धों के महत्व पर अपने विचार प्रकट करिए?

शीशा, दियासलाई, कागज और सीमेंट।

५—भारत में लोहे और फौलाद के उद्योग-धन्धे की वृद्धि के भौगोलिक कारण समझा कर बताइए।

६—पिछले दस वर्षों में भारत में शक्कर का व्यवसाय क्यों चमक उठा है?

७—भारत के आर्थिक क्षेत्र में रुई के कपड़ों के धन्धे का क्या स्थान है? सकारण उत्तर दीजिए।

८—भारत में कुटीर उद्योग धन्धे कहाँ तक वाञ्छनीय हैं? ऐसे धन्धों का क्यों ह्रास हो गया?

दसवाँ अध्याय

भारत की जनसंख्या

जनसंख्या का वितरण

यह तो तुमको मालूम ही है कि जहाँ पर कोयला, पानी, सस्ती मजदूरी व माल ले जाने का सुभीता रहता है वहाँ पर कारखाने खोले जाते हैं। जब कारखाने का काम चल निकलता है तो वहाँ काम करने वालों की टोलियाँ आती रहती हैं। इसके अलावा कारखाने में काम करने वाले मजदूर आस पास ही घर बसा लेते हैं इसलिए यह आशा की जा सकती है कि मिल और कारखानों के पास आबादी अधिक होगी। यह बात बहुत कुछ हद तक ठीक है परन्तु हिन्दोस्तान की तकदीर कहाँ जो यहाँ पर देश भर में बड़े बड़े कारखाने हों। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। यहाँ के रहने वालों में से अस्सी फी सदी जनता की जीविका खेती से चलती है। लगभग सत्तर फी सदी तो किसान हैं अर्थात् उनके पास खेत हैं जिन्हें वे जोतते बोते हैं। खेती करने के लिए यह आवश्यक है कि जमीन ऐसी हो जिसमें हल भली भाँति चलाया जा सके अर्थात् भूमि कड़ी न होनी चाहिए। इसके अलावा खेत की मिट्टी उपजाऊ होना जरूरी है। जमीन उपजाऊ होने के लिये इस बात की जरूरत पड़ती है कि वहाँ हर साल ठीक समय पर पानी बरसता हो। यदि ऐसा न हो तो खेत सींचने के लिए नहर तालाब या कुओं का पूरा पूरा इंतजाम होना चाहिए। गंगा जमुना के बीच के मैदान, हिमालय की तराई, बिहार, बंगाल आदि जगहों

में पानी तो बरसता ही है। साथ ही कहीं कहीं नहरों का प्रबन्ध है। मिट्टी भी उपजाऊ है। फलस्वरूप बंगाल में औसतन प्रति वर्ग मील (Square mile) में ६४६ मनुष्य रहते हैं। ब्रह्मपुत्रा की घाटी में पानी खूब बरसता है परन्तु तब भी वहाँ की आबादी बहुत कम है। क्या तुम बता सकते हो कि वहाँ यह हाल क्यों है? कारण यह है कि वहाँ की जमीन पथरीली है। जंगलों की भी कमी नहीं है। वहाँ का पानी भी ठीक नहीं है। और यह मानी बात है कि जिन जिलों में पहाड़ियाँ हैं और जङ्गल खड़े हैं या जहाँ पर आए दिन तरह तरह की बीमारियाँ फैली रहती हैं और दुश्मनों के हमले का डर रहता है वहाँ पर अपने आप आदमी कम बसते हैं।

जनसंख्या और घनत्व

किसी स्थान पर औसतन प्रति वर्ग मील जितने व्यक्ति रहते हैं उसको उस स्थान की जनसंख्या का घनत्व कहते हैं। इस प्रकार बंगाल में जनसंख्या का घनत्व ६४६ है। बंगाल की जनसंख्या को बंगाल के क्षेत्र से भाग देकर निकाला गया है।

जनसंख्या का घनत्व जलवायु व भौगोलिक स्थिति पर निर्भर है। जहाँ ठीक समय पर काफी पानी बरसता है वहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है इसी कारण गंगा जमुना के मैदान, बिहार उड़ीसा और मद्रास में जनसंख्या का घनत्व ज्यादा है। जहाँ पानी कम या बहुत बरसता है वहाँ घनत्व कम होता है। आसाम में बहुत ज्यादा पानी बरसता है और बम्बई में कम। इसलिए दोनों प्रांतों में घनत्व कम है। संयुक्तप्रांत, बिहार और पंजाब में घनत्व अधिक होने का कारण वहाँ की समतल भूमि, नदियाँ, और उपजाऊ मिट्टी है। पहाड़ी प्रदेश होने या सिंचाई के साधनों की कमी की वजह से काश्मीर, शिकम, राजपूताना और मध्यप्रान्त की रियासतों में जनसंख्या का घनत्व बहुत कम है।

जनसंख्या का घनत्व जीवन और माल-असबाब की रखवाली और खतरे पर भी निर्भर है। जहाँ जंगल हैं और जंगली जानवरों तथा चोर डाकुओं का डर होता है वहाँ बहुत कम लोग रहते हैं परन्तु जहाँ चौकीदार और पुलिस का प्रबंध रहता है, जैसे शहर वहाँ अधिक लोग रहते हैं।

इसी प्रकार जहाँ कच्चे व तैयार माल की भरमार रहती है या जहाँ उद्योग-धन्धों ने काफी उन्नति कर ली है वहाँ जनसंख्या का घनत्व ज्यादा होता है। बम्बई शहर की जनसंख्या का घनत्व बहुत ज्यादा है। इंगलैंड और बेलजियम में औद्योगिक उन्नति के कारण जनसंख्या का घनत्व क्रमशः ६८५ और ६५४ हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में हर तरह के माल की भरमार रहती है और वहाँ के उद्योग-धन्धे में भी इंगलैंड के उद्योग-धन्धों से कम उन्नत नहीं है परन्तु अमेरिका में जनसंख्या का घनत्व ४१ ही है। इसी प्रकार मिश्र में जनसंख्या का घनत्व ३४ है परन्तु वहाँ के निवासी अमेरिका वालों के समान आगे नहीं बढ़े हैं। बंगाल प्रान्त में ६४६ का घनत्व है लेकिन वहाँ रहने वाले किसी हालत में अंगरेजों की बराबरी नहीं करते। इन बातों को ख्याल में रखकर हम कह सकते हैं कि अगर दो स्थानों की जनसंख्या के घनत्व एक से हों तो यह आवश्यक नहीं कि वहाँ की आर्थिक उन्नति या वहाँ के निवासियों के रहन-सहन करीब करीब एक सा होगा। लेकिन जहाँ खेती करने या वस्तुएँ तैयार करने और व्यापार की सुविधाएँ होती हैं वहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक रहता है।

जनसंख्या और खेती

आज कल पेट का सवाल इतना कठिन है कि उसके कारण लोग अपना घर बार छोड़ कर शहरों में नौकरी तलाशते फिरते हैं। बहुत से गाँव वाले बम्बई कलकत्ता चले जाते हैं और वहाँ

किसी कारखाने में बीस तीस रुपए की नौकरी कर लेते हैं। परन्तु घर का मोह ऐसा जोरदार होता है कि फसल पकने के समय अथवा कुछ रुपया इकट्ठा हो जाने पर ये मजदूर अपने अपने गाँवों को चले आते हैं। लेकिन आज-कल की हालत में खेती या चालू अन्य उद्योग-धन्धे भारत के तमाम आदमियों को कहाँ से काम दे सकते हैं। आपको यह जानकर ताज्जुब होगा कि सन् १६२१ में जब मनुष्य गणना लो गई थी तो बर्मा सहित भारतवर्ष की जनसंख्या इकतीस करोड़ थी। परन्तु सन् १९४१ में होने वाली गणना से मालूम पड़ता है कि यह बढ़ कर उन्तालीस करोड़ पहुँच गई है। इसमें से बीस करोड़ तो पुरुष ही थे। यदि देशी रियासतों का ख्याल छोड़ दिया जाय तो भारतवर्ष की आबादी उन्तीस करोड़ से ऊपर हो जाती है। संयुक्त प्रान्त की आबादी साढ़े पाँच करोड़ है और बिहार की साढ़े तीन करोड़। आबादी के लिहाज से संयुक्तप्रान्त का दूसरा नम्बर है और बिहार का चौथा हिन्दोस्तान में लगभग चौतीस करोड़ जनता तो देहातों में ही रहती है। फ्रांस, अमेरिका, कैनेडा जैसे दूसरे देशों में आधे से ज्यादा लोग शहरों में रहते हैं। इंगलैंड में तो सौ में अस्सी आदमी शहर में रहते हैं। यदि तमाम दुनिया की जनसंख्या का ख्याल करें तो संसार की जनसंख्या का पाँचवाँ हिस्सा तो भारत में ही मौजूद पाते हैं। यदि इतनी जनता पढ़ लिख कर तथा तन्दुरुस्त रहते हुए मेहनत करे तो देश बहुत धनवान हो जाय। परन्तु जहाँ लोगों में आलस्य समाया रहता है तथा जहाँ पर पर्याप्त साधन नहीं हैं वहाँ किस प्रकार उन्नति हो सकती है? उदाहरण के लिए जमीन का ही सावल ले लीजिए। यदि आज सारे भारतवासी खेती करने लगें तो देश का क्या हाल होगा? क्या उसको सफलता मिलेगी? उत्तर है नहीं। कारण इतने बड़े हिन्दोस्तान में इक्कीस करोड़ एकड़ जमीन से कुछ अधिक ही जोती जाती

है। अगर तमाम भारतवासियों के बीच इसका बराबर बटवारा कर दिया जाय तो हरेक के हिस्से में आधे एकड़ से थोड़ी अधिक जमीन पड़ेगी। हिन्दोस्तान में करीब बाईस करोड़ से अधिक किसान हैं। यदि इन्हीं के बीच जोती जाने लायक भूमि बाँट दी जाय तब भी इनमें से हर एक को एक एकड़ जमीन नहीं मिलेगी। इस हालत में जमीन का सवाल और टेढ़ा पड़ जाता है।

जनसंख्या तथा रहन-सहन का दर्जा

हिन्दोस्तान के अधिकांश रहने वालों की एक खास आदत है कि पेट का थोड़ा सा भी इन्तजाम हो जाने पर वे फिर आमदनी बढ़ाने की कोशिश नहीं करते। उनका जीवन बहुत ही सादा और सरल होता है। वे अपने कष्टों को बहुत कुछ सह लेते हैं। इन सब बातों की वजह से उनके रहन सहन का दर्जा भी बहुत नीचा होता है। वे आधा पेट खाना खाकर दिन बिताते हैं। तुम पूछ सकते हो कि क्या हिन्दोस्तान में भोजन की कमी है। यह ऐसा सवाल है जिसके ऊपर भिन्न भिन्न लोगों के विचार एक से नहीं हैं। कुछ सज्जन कहते हैं कि पिछले सालों में जिस दर से भारत की जनसंख्या बढ़ी है उस दर से खाने की वस्तुओं में वृद्धि नहीं हुई। मालथस नाम के अंगरेजी पादरी ने कहा था कि जनसंख्या भोजन की चीजों से कहीं अधिक तेजी से बढ़ती है। उसके विचारों पर बहुत कुछ कहा जा चुका है तिस पर भी ये विचार अभी तक आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। यह स्पष्ट है कि भारत में जन-संख्या की बहुत ज्यादा वृद्धि हुई है। और जनसंख्या के एक भाग को एक वक्त भी पेट भर भोजन नहीं मिलता।

जनसंख्या और रीति-रिवाज

अस्तु, क्या तुम बता सकते हो कि हिन्दोस्तान में रहने वाले

का नम्बर दिनों दिन क्यों इतनी तेजी के साथ बढ़ता जा रहा है? अगर मूर्ख आदमियों में प्रचार किया जाय कि जनसंख्या के बढ़ जाने से दुख मिलता है तो वह इस बात को कभी न समझेंगे। एक तो वे पढ़े लिखे नहीं हैं दूसरे वे पराधीन हैं। फिर बताओ, हमारे भारतीय भाइयों के दिमाग़ में कहाँ से यह बात घुस सकती है। इसके अलावा यहाँ के निवासियों के रीति-रिवाज ऐसे हैं जिनके कारण लड़के लड़कियों के विवाह कम उमर में होते हैं। अब कानून के द्वारा इस बात की मनाही कर दी गई है कि अठारह साल से पहले कोई लड़के का विवाह नहीं होना चाहिये। पढ़े लिखे आदमियों के भी ऐसे ही विचार होने लगे हैं तथापि गाँवों में रहने वाली जनता पर इसका प्रभाव बहुत कम पड़ा है। जैसा कि तुम जानते हो भारत की नब्बे फी सदी जनता गाँवों में रहती है। गाँव के ये निवासी बिलकुल अपढ़ होते हैं और चाहे एक की जगह चाहे और कानून बना दिए जाएँ तो भी इनके ऊपर कोई असर नहीं पड़ सकता इस प्रकार बाल विवाह की अधिकता के कारण भारत में जनसंख्या की खूब वृद्धि हुई है। मृत्यु संख्या भी अधिक हो गई है। जहाँ ज्यादा आदमी होंगे वहाँ मृत्यु संख्या भी ज्यादा होगी। मृत्यु संख्या अधिक होने का एक और कारण है। जैसा कि हम बता चुके हैं भोजन की चीजें उस तेजी से नहीं बढ़ी हैं जिस तेजी से जनसंख्या। इसलिए हर एक आदमी को मिलने वाला खाना कम हो गया। इसलिए बच्चे कमजोर व दुबले पतले होते हैं। वे बीमारी और मौत के जल्दी शिकार हो जाते हैं।

जनसंख्या और उम्र

जनसंख्या के ज्यादा होने की वजह से बच्चों की संख्या ज्यादा हो गई है। हमारे यहाँ सौ आदमियों पीछे अट्ठाइस बच्चे रहते

हैं। दुनियाँ में सबसे ज्यादा बच्चे हमारे देश में ही हैं। इसके अलावा हिन्दोस्तानियों की औसत उम्र करीब तेईस साल है जब कि दूसरे देशों के लोग औसतन चालीस पचास साल तक जीते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि आदमी बीस पच्चीस साल तक ही कमा खा सकता है। चालीसवाँ साल आते आते हिन्दोस्तानी बुड्ढे हो जाते हैं। लेकिन दूसरे देशों में लोग साठ साल तक तगड़े बने रहते हैं। इसलिए हिन्दोस्तान की आबादी ज्यादा होते हुए भी यहाँ काम करने वालों की संख्या कम है और हमारे देश में बहुत ज्यादा सामान भी नहीं तैयार किया जा सकता है। अगर हमारी औसत उम्र बढ़ जाए तो हम ज्यादा दिनों तक काम कर सकेंगे और देश का ज्यादा भला कर सकेंगे।

जनसंख्या और आवास प्रवास

जनसंख्या के बढ़ने का एक कारण यह भी हो सकता है कि विदेशों के लोग आकर यहाँ बसते जाते हों। यह तो हम मानते हैं कि हिन्दोस्तान में यूरप, अमेरिका आदि देशों के लोग यहाँ आए हुए हैं परन्तु इस प्रकार आने वालों में सबसे अधिक संख्या विलायती अंगरेजों की ही है। वे हमारे शासक हैं। इसलिए भारत में गोरी सेना रहती है। साथ ही बड़ी बड़ी जगहों पर अंग्रेज अफसर नियुक्त किए जाते हैं। लेकिन इतना होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि ये लोग हिन्दोस्तान की जनसंख्या बढ़ने के कारण हैं। हिन्दोस्तानियों की तुलना में इनकी संख्या तो बहुत ही कम है, और फिर तुम पूछ ही सकते हो कि जिस प्रकार बाहर के मनुष्य भारत में आते हैं उसी प्रकार क्या हिन्दोस्तानी बाहर नहीं जाते। हाँ सचमुच हमारे देश के आदमी बाहर नहीं जाते। जो विदेशों में जाना चाहते हैं उनके मार्ग में हमारी तथा उस देश की सरकार तरह तरह की कठिनाइयाँ खड़ी कर देती है।

जिस प्रकार हमारे यहाँ जनसंख्या बढ़ रही है उसी प्रकार विदेशों में भी हाल है। इसलिए विदेशी मनुष्य बाहर वालों को अपने यहाँ नहीं बसने देते। कहीं कहीं तो आबादी काफी कम है तब भी वहाँ वाले अड़ंगा लगाते हैं, क्योंकि उन्हें डर रहता है कि अगर बाहर वालों को बसने देंगे तो कुछ दिनों में वहाँ भी आबादी घनी हो जायगी। खुशी की बात है कि देश के अन्दर एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में बस जाने में कोई बाधा या कठिनाई नहीं होती। इस प्रकार प्रान्त बदलने वालों की संख्या बहुत कम है। या तो बंगाली और पंजाबी चारों ओर फैले हैं या मारवाड़ी और कुली कबाड़ी। मारवाड़ियों ने कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े बड़े शहरों में व्यापार क्षेत्र में धाक जमा रक्खी है। यह तो इनकी विद्या और गुण का फल है कि इन्हें कहीं जाने से कोई रोक नहीं सकता। बंगाली भी पढ़ने लिखने में बड़े होशियार होते हैं।

अस्तु, यह तो देहातियों के साथ ही बात है कि वे नौकरी की तलाश में बाहर जा कर बेरोक टोक काम तलाश कर सकते हैं। परन्तु गाँव छोड़ना सहल काम नहीं होता। पहले तो घर का मोह होता है। लोगों में यह कहावत मशहूर है कि बाहर की पूरी से घर की आधी ही भली। इसके अलावा बहुतों की पहुँच पास के नगर और कस्बे तक ही होती है।

जनसंख्या की बुराइयों को दूर करने के उपाय

एक प्रान्त के आदमियों के दूसरे प्रान्त में चले जाने से जनसंख्या तो घट नहीं सकती। हाँ, यह बात अवश्य है कि इसमें कुछ अधिक आदमियों को रोटियाँ कमाने का सहारा हो जाता है। और यह ठीक भी है। बढ़ी हुई जनसंख्या की बुराइयों को दूर करने के लिये दो तीन बातों की जरूरत है। एक तो यह कि बालविवाह को बन्द करके जन्म संख्या को अत्यधिक बढ़ने से

रोका जाय। दूसरे बीमारियों को रोकना और दूर करना चाहिए जिससे लोगों की तन्दुरुस्ती अच्छी हो और वे अधिक दिन तक काम कर सकें। तीसरे इस समय जो जनसंख्या है उसके खाने के लिए भोजन का इंतजाम हो। इसके लिए देश में जोरों से उद्योग-धंधे की वृद्धि करना आवश्यक है। मनुष्यों को उन उद्योग-धंधों में लगाना चाहिए जिनमें अभी कुछ कसर बाकी है। अतएव यह जानना जरूरी है कि देश के मुख्य मुख्य धंधे कौन से हैं और उनकी तथा उन धंधों के करने वालों की क्या हालत है।

किसानों का धंधा

यह तो तुमको मालूम ही है कि हिन्दोस्तान में दो तिहाई जनता खेती या खेतों में मजदूरी करके पेट पालती है। सौ डेढ़ सौ साल पहले लोगों का यह हाल नहीं था। खास कर जब से यहाँ अंग्रेजों का आगमन हुआ तब से ग्रामवासियों की हालत खराब ही होती गई। अंग्रेजों के आने से यहाँ की कारीगरी और दस्तकारी नष्ट हो गई। बहुत से धंधों को जबरदस्ती नष्ट कर दिया गया। भारत को जबरदस्ती इंग्लैन्ड को कच्चा माल देने वाला बनाया गया। यहाँ के कारीगर और दस्तकारों को जब कोई काम नहीं मिला तो वे भी खेतों की ओर दौड़ पड़े। इसका नतीजा यह हुआ कि आज दिन किसानों के पास इतनी कम ज़मीन है कि उससे उनका और उनके कुटुम्ब का पेट पालन नहीं हो सकता। कुटुम्ब दर कुटुम्ब वही काम होने से बेचारे किसानों को खेती की मोटी बातें ही मालूम रहती हैं। वे केवल यह जानते हैं कि किस जमीन में कौन सी फसल बोनी चाहिए व किस फसल के बाद कौन सी चीज बोई जाय तो लाभ होगा। अर्थात् उन्हें इस बात का ज्ञान होता है कि खेत में लगातार वही फसल नहीं बोनी चाहिए। परन्तु

क्या किसान यह जानते हैं कि खेतों को कितना गहरा जोतना चाहिए, उसमें कैसी खाद देनी चाहिए तथा किस हद तक सिंचाई तथा आबपाशी करना जरूरी है? कृषकगण यह बात कभी सोचते ही नहीं कि खेत जितने बड़े हों उतना ही अच्छा होता है। वे यह नहीं समझते कि गोबर के कंडे थाप लेने के बजाय यदि उसकी खाद बना कर खेतों में दी जाय तो अधिक लाभ होवे। वह यह नहीं ख्याल करते कि जमीन परती छोड़ने की जगह उसमें हरी खाद के लिए सनई की फसल या ढोरों के लिए घास पैदा करना कहीं अच्छा है। उनके दिमाग में यह नहीं घुसता कि यदि सरकार नहर का पानी नाप कर नहीं देती तो उन्हें खेतों में मनमाना पानी न देना चाहिए। जहाँ सिंचाई के लिए कुएँ बनाए जाते हैं वहाँ खर्च के डर से पूरी तौर पर सिंचाई नहीं होती। अमेरिका आदि देशों में वैज्ञानिक ढंग से खेती होती है। मशीन जमीन को जोत कर उसमें बीज बोती है। शुरू से लेकर आखीर तक मशीन ही काम करती है। हम यह बात जानते हैं कि हिन्दोस्तान अभी इस लायक नहीं है। परन्तु तब भी अब वह जमाना आ गया है कि हमारे किसान भाइयों को अपनी लकीर की फकीर वाली आदत छोड़ देनी चाहिए।

यह कहने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती कि किसान चोटी से ऐड़ी तक पसीना बहाता है। चाहे जेठ की दुपहरिया हो, चाहे बरसात का दिन, वह धूप-ताप, सरदी-गरमी और पानी की चिन्ता छोड़ कर खेत में काम करता है। यह बात जरूरी है कि जहाँ पर ठीक समय पर पानी बरसता है अथवा जहाँ नहरों का इंतजाम है वहाँ किसान उत्साह, फुर्ती और मेहनत से काम करता है। जहाँ पर ये बातें नहीं होती, वहाँ किसान जल्दी से आलसी और कंगाल बनते जाते हैं। अस्तु, किसान को अपने गाढ़े पसीने की कमाई भोगना बदा नहीं रहता। वे जो बढ़िया साग-पात, फल

और अनाज पैदा करते हैं वे सब बिकने के वास्ते होते हैं। बिक्री से आनेवाले रुपए लगान और कर्ज के नाम पर सरकार और महाजन की भेंट चढ़ जाते हैं। फलस्वरूप साधारण समय में भी इन्हें पूरी तौर पर अच्छा भोजन नहीं मिलता। तुम ही सोचो कि यदि काम तो तुम पूरी तौर पर मेहनत के साथ करो परन्तु खाना तुम्हें भर पेट न मिले तो क्या होगा। बस यही हाल किसानों का है। इसलिए कोई ताज्जुब की बात नहीं यदि गाँवों में जाने पर तुमको दुबले पतले रोगी मनुष्य दिखाई पड़ें। मलेरिया, प्लेग, हैज़ा, चेचक आदि बीमारियाँ करीब करीब हमेशा ही गाँवों में फैली रहती हैं। किसानों को इस प्रकार की शिक्षा देने की जरूरत है जिससे वे अपने खेतों का काम मन लगा कर भली प्रकार कर सकें।

खेतों के मजदूर

किसानों के साथ खेत में काम करने वाले मजदूरों का भी ख्याल रखना चाहिए क्योंकि गिनती में ये चार करोड़ से कम नहीं हैं। भिन्न भिन्न सूबों में इनकी संख्या जुदा जुदा है। ये मजदूर बड़े संतोषी और मेहनती होते हैं। इनमें से बहुतों के पास थोड़ी सी जमीन भी होती है। कोई कोई बैलगाड़ी भी रखता है जिसे जरूरत पड़ने पर वह किराए पर ले जाता है। अगर कहीं पास में कोई कारखाना होता है तो बेकारी के वक्त में वह वहाँ मजदूरी कर लेता है। औरतें भी खेतों में कटाई और निराई का काम करती हैं व गोबर के कंडे थाप कर पास के कस्बे में बेच आती हैं। मजदूरों को साल में छै महीने तो काम मिलता ही नहीं क्योंकि जब किसान ही लगभग चार महीने बेकार रहते हैं तब मजदूरों को कहाँ से काम मिल सकता है। देश के जिन हिस्सों में दो फसलें होती हैं वहाँ के मजदूरों की हालत कुछ अच्छी होती है। लेकिन सच्ची बात तो यह है कि फसल के दिनों

में भी वे इतना नहीं कमा पाते कि अपने कुटुम्ब का भली प्रकार पेट भर सकें। किसानों की तरह इनके लिए भी काला अक्षर भैंस बराबर होता है। एक तरह से इनकी हालत किसानों की दशा से बदतर ही होती है अच्छी नहीं। फर्क यह है कि आजकल रेलगाड़ी आदि के चल जाने से ये मजदूर गाँव छोड़ कर उन जगहों को चले जाते हैं जहाँ पर ज्यादा तनख्वाह मिलने की उम्मेद रहती है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि ग्रामीण मजदूरों की हालत अच्छी होती जा रही है।

मज़दूर

खान और कारखानों के बहुत से मजदूर गाँवों से ही आते हैं। इसलिए अधिकतर मिल-मजदूर भी गँवार तो होते ही हैं। कारखानों में कुछ काम ऐसे भी होते हैं जहाँ पर काम सीखे हुए होशियार आदमियों की आवश्यकता होती है। अस्तु, आवश्यक शिक्षा न पाए रहने के कारण इन मजदूरों का काम घटिया दर्जे का होता है। इंग्लैन्ड, जर्मनी, अमरीका आदि पश्चिमी देशों से मुकाबला किया जाय तो मालूम पड़ता है कि भारत में मजदूरी बहुत सस्ती है परन्तु घटिया किस्म का काम होने के कारण घोड़ा गधा बराबर हो जाता है। आमतौर पर कारखाने में मजदूरों को पन्द्रह बीस रुपया माहवारी तनख्वाह मिलती है और रोज़ आठ नौ घंटे काम करते हैं। यह तो मानी बात है कि बंधी मजदूरी मिलने के कारण कारखानों के आस पास मजदूरों की भरमार रहती है। मिल में काम करने वाले मिल के पास ही रहने का स्थान ढूँढते हैं क्योंकि दूर रहने से उन्हें काम पर आने जाने में बड़ी असुविधा होती है। नतीजा यह होता है कि उन्हें छोटी छोटी गंदी कोठरियों में अपना जीवन बिताना पड़ता है। पास में मनोरंजन का कोई साधन न होने के कारण इन्हें शराब आदि

का चस्का लग जाता है। कारखानों के पास आबादी काफी घनी होती है। लेकिन ये कारखाने कुछ ही जगहों में बहुतायत से हैं। कलकत्ता और बम्बई तो कारखानों के घर ही हैं। इसके अलावा व्यापार की दृष्टि से वे बड़ा महत्व रखते हैं इसलिए अगर वहाँ की आबादी चौदह लाख से ऊपर है तो कोई ताज्जुब नहीं। हमारे प्रान्त में कानपुर मिलों का अड्डा है और वहाँ की आबादी करीब पाँच लाख है। बिहार में सिंहभूमि, मानभूमि और हजारी-बाग में कोयला, लोहा, अभ्रक और ताँबे की खानें हैं। जमशेदपुर में लोहे का सबसे बड़ा कारखाना है जहाँ सस्ते मजदूर उड़ीसा और मध्यप्रान्त से आते हैं।

दफ्तरों के बाबू

सरकारी नौकरी मजदूरी के ही समान है। सरकारी नौकरों की संख्या मुश्किल से पचास लाख होगी। आजकल स्कूल तथा कालेज में शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों और उनके माता पिता का पहला ख़्याल यह रहता है कि उनका पुत्र पढ़ कर किसी दफ्तर में नौकरी पा जाए। मेज कुर्सी पर सालों तक काम करने के बाद विद्यार्थी मेज कुर्सी के ही लायक रह जाते हैं और फिर वे बेकारों में नाम लिखा अर्जी लिए लिए दफ्तरों की खाक छाना करते हैं। परन्तु दफ़्तरों में काम करने वालों की कमर झुक जाती है। उन्हें बुढ़ापा व बुढ़ापे की बीमारियाँ आकर घेर लेती हैं। उनमें कोई उत्साह या उमंग नहीं रह जाती। दस बजे से लेकर चार बजे तक काम करने के बाद वे बगल में कामों का बस्ता दबाए किसी तरह अपने घर आ जाते हैं। उस समय उनकी हालत देखकर मुँह से यही निकलता है कि इससे गाँव के किसान या सड़क का मजदूर ही भला है।

कारीगर और व्यापार

इन नौकरी वालों से तो कारीगर और व्यापारी ही भले कहे

जा सकते हैं। उन्हें किसी की डाँट फटकार सुननी नहीं पड़ती। वे जब चाहें तब काम करें जब चाहें तब आराम करें। परन्तु यदि कारीगरों तथा व्यापारियों की हालत पर गौर किया जाय तो ज्ञात होता है कि उनकी हालत भी अच्छी नहीं है। देश में पैसा बहुत कम है। फिर कारीगरों की बनाई वस्तुओं को कौन खरीदे? शाम को बाजार में जाकर आप यदि किसी व्यापारी से पूछें कि दिन भर में उसने कितने का व्यापार किया तो शायद आप को उत्तर मिलेगा कि केवल दस बीस या तीस रुपए का माल बेचा। परन्तु यह उसकी आमदनी नहीं है। इसमें से माल की क़ीमत निकाल देना चाहिए। फिर दूकान का किराया, दूकान के नौकर की तनख्वाह आदि भी तो देना है संक्षेप में कहना चाहिए कि अधिकतर कारीगर तथा व्यापारी से पूछने पर हमें यही उत्तर मिलता है कि वे किसी प्रकार दिन काटते जाते हैं वरना आजकल मुनाफा वगैरह कुछ नहीं है। परन्तु कभी कभी हमारे व्यापारी सच्चाई से काम नहीं करते। जो थोड़ा बहुत व्यापार उन्हें मिल भी जाता है उससे अधिक से अधिक लाभ उठाने के हेतु वे खराब से खराब माल नए माल के भाव पर निकालना चाहते हैं। ऐसे कर्मों का ही यह फल है कि ग्राहकों को अच्छा माल मिलने की कोई आशा अथवा विश्वास नहीं रहता और वे बाजार में माल खरीदते समय बहुत सतर्क रहते हैं। अस्तु, व्यापार और व्यापारियों की चर्चा आने पर आप पूछ सकते हैं कि व्यापारी किस प्रकार का व्यापार करता है अर्थात् व्यापार के साधन क्या हैं। इनका अगले अध्याय में विचार किया जायगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत की जनसंख्या का विवरण संक्षेप में लिखिए।

२—जनसंख्या का घनत्व किन बातों पर निर्भर है? उदाहरण सहित समझाइए।

३—दो देशों की जनसंख्या का घनत्व लगभग बराबर है तो वहाँ के निवासियों का रहन-सहन आर्थिक उन्नति आदि के बारे में आप क्या बता सकते हैं ?

४—बढ़ती हुई जनसंख्या का खेतों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? भारत का उदाहरण लेकर विचार कीजिये ।

५—रीति-रिवाज का भारतीय जनसंख्या की वृद्धि में क्या महत्व रहा है ? सविस्तार समझाइए ।

६—"भारतीयों का रहन-सहन सादा है तथा वे सहनशील हैं । इसी कारण यहाँ की जनसंख्या अधिक है ।" इस कथन की विवेचना कीजिए ।

७—" विदेशी भारत में आकर बस जाते हैं परन्तु भारतीयों को बाहर जाकर बसने की सुविधाएं नहीं हैं । इसी कारण हमारी जनसंख्या की समस्या कठिन हो गई है ।" इस कथन की विवेचना कीजिए ।

८—भारतीय किसानों की हालत का संक्षेप में वर्णन कीजिए ।

९—भारतीय उद्योग-धंधों में आप किसको अच्छा समझते हैं ? सकारण समझाइए ।

ग्यारहवाँ अध्याय

व्यापार के मुख्य साधन

व्यापार के मुख्य साधन क्या हैं

तुम जानते हो कि अपनी जीविका ढूँढने के लिए आदमी देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से को जाते रहते हैं। यदि सीतल को अपने गाँव में काम नहीं मिलता और उसे मालूम पड़ता है कि फतेहपुर के पास के गाँवों में काम करने वालों की कमी रहती है तो वह अपना गाँव छोड़ कर फतेहपुर चला जायगा। परन्तु वह फतेहपुर जाएगा कैसे ? या तो वह पैदल, बैलगाड़ी, या मोटर लारी पर जाए या गाँव के पास वाले स्टेशन से रेलगाड़ी में बैठ जाए। अस्तु शीतल स्थलमार्ग या रेलपथ से जहाँ जाना चाहता है जा सकता है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि ये दोनों सवारियाँ ही हमारे काम के लिए काफी हैं। कारखानों को बहुत अधिक तादात में कच्चा माल मँगाना तथा तैयार माल भेजना पड़ता है। अतएव थोड़ी दूरी के लिए तो मोटर काम में लाई जाती है और अधिक दूर के लिए रेल। लेकिन जब माल विदेशों से आता अथवा विदेशों को जाता है, तो ये साधन बेकार सिद्ध होते हैं। इसके लिए या तो जलमार्ग अख्तियार किया जाता है या अब वायुमार्ग का प्रयोग भी किया जाने लगा है। यदि पास में कोई बड़ी नदी हुई और नाव से सामान मँगाने में कम समय और कम खर्च बैठता हो, तो देश के अन्दर नाव द्वारा माल भेजा या मँगाया जा सकता है। विदेशों को माल भेजने के लिए जहाजों से ही काम लिया जाता है। हवाई जहाज से डाक भेजने और यात्रियों के लाने ले

जाने का काम लिया जाता है। चिट्ठी-पत्री भेजने अर्थात् खबर भेजने का अन्य ढंग भी है। पोस्ट आफिस द्वारा चिट्ठी भेजने का हाल तो सबको मालूम ही है। इसका तो जिक्र करना बेकार है। हाँ, तार भेजने की प्रथा और टेलीफोन की गिनती करना उचित मालूम पड़ता है। तार द्वारा हम अपना लिखित वाक्य भेजते हैं परन्तु टेलीफोन की मदद से तो हम स्वयं अपने सुदूर स्थित मित्र से बात कर सकते हैं। टेलीफोन के लिए तार के खंभे गाड़े जाते हैं। परन्तु एक ऐसा यंत्र निकला है जिसके द्वारा खबर भेजने के लिए तार के खम्भों की कोई जरूरत नहीं रहती। इसका नाम बेतार का तार है।

स्पष्ट है कि माल लाने ले जाने के लिए स्थलमार्ग, जलमार्ग या वायुमार्ग का उपयोग किया जा सकता है। स्थलमार्ग में एक ओर तो सड़क पर चलने वाली बैलगाड़ी, इक्का, ताँगा, मोटर लारी इत्यादि हैं और दूसरी ओर रेल की पटरी पर चलने वाली रेलगाड़ी। जलमार्ग के अन्तर्गत नदी पर जाने वाली नावों और समुद्र में चलने वाले बड़े बड़े जहाजों से काम लिया जाता है। वायुमंडल में हवाई जहाज उड़ता है। खबर भेजने के ढंगों में तार, टेलीफोन और बेतार का तार विशेष उल्लेखनीय हैं। अब हम प्रत्येक के संबंध में विचार करते हैं।

सड़क

स्थलमार्ग में सड़कों को ही पहले लेना ठीक है। यों तो सड़कें हजारों साल पहले भी थीं परन्तु इनकी उन्नति फिरोज तुग़लक और शेरशाह सूरी के समय से अधिक हुई। परन्तु इन बातों को जाने दीजिए।

आज कल हिन्दोस्तान में करीब तीन लाख मील सड़कें हैं। इनमें से तीन चौथाई कच्ची हैं और बाकी पक्की। पक्की सड़कें

पथरीली और कम पानी वाली जगहों जैसे दक्षिणी भारत में अधिक पाई जाती हैं। कच्ची सड़कें ज्यादातर मैदानों में जहाँ वर्षा ज्यादा होती है पाई जाती हैं। क्योंकि वहाँ पक्की सड़क बनाने के लिए कंकड़ पत्थर आसानी से नहीं मिल सकते और बरसात के दिनों में पुलों के बह जाने तथा मिट्टी इकट्ठी हो जाने से उन्हें हर साल दूसरा जन्म देना पड़ता है।

हिन्दुस्तान में चार बड़ी बड़ी सड़कें हैं जो देश के भिन्न भिन्न भागों को मिलाती हैं। एक पेशावर से कलकत्ते तक जाती है, दूसरी कलकत्ते से मद्रास तक, तीसरी मद्रास से बम्बई तक और चौथी बम्बई से दिल्ली तक। इनमें से पहली सड़क का नाम ग्रांड ट्रंक सड़क है।

आज कल सड़कों की हालत बहुत खराब है। हिन्दोस्तान में सबसे बड़ी सड़क शायद ग्रान्ड ट्रंक रोड ही है। परन्तु इस सड़क की भी बीच बीच में बड़ी खराब दशा रहती है। आमतौर पर कहीं सड़कें ऊँची होती हैं कहीं नीची। यदि आप कभी लारी में चढ़ कर कहीं गए हों तो आपको पता होगा कि लारी में क्या मजेदार झटके लगते हैं। बरसात में बीच बीच में नदी नाले बह निकलते हैं। फलस्वरूप बहुत सी सड़कें बरसात में बेकार हो जाती हैं। यह माना कि कहीं कहीं बरसाती नदियों पर पुल हैं, परन्तु अधिकतर ऐसी नदियाँ ज्यादा हैं, जिन्हें गर्मी में पैदल और बरसात में नाव पर पार करना पड़ता है। ऐसी हालत में यदि लोग बैलगाड़ी, टट्टू, ऊँट, बैल आदि से समान ढोने का काम लेते हैं तो कोई ताज्जुब नहीं।

मोटर तथा लारी के चलने योग्य सड़कें बहुत कम हैं। शहरों का ही हाल ले लीजिए। यह आप नहीं कह सकते कि सब सड़कें अच्छी हालत में हैं, अथवा सवारियों के आने जाने लायक काफी

चौड़ी हैं। आज कल अब तारकोल (coal tar) की सड़कों का रिवाज चल निकला है, क्योंकि अब मोटरों और रबरटायर इक्के व तांगों का नम्बर बढ़ गया है। यदि पत्थर की गिट्टी की सड़क रहती है तो सवारी को झटका लगता है और टायर जल्दी घिसता है तथा सड़क भी जल्दी खराब होती है। इन सब बुराइयों को दूर करने के लिए गिट्टी की सड़क बन जाने पर उस पर तारकोल डाल दिया जाता है जिससे सड़क और चिकनी हो जाती है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती कि रेल के आने से सड़कों की लंबाई बढ़ गयी। रेलवे स्टेशन ज्यादातर बसती से बाहर ही होते हैं। अस्तु, स्टेशन से बस्ती तक सड़कें बनाई गईं। पर इन सड़कों की खराब हालत का कारण बदइंतजामी है। अब तक ज्यादातर उन सड़कों का अधिक ध्यान रक्खा जाता था जिन पर अंग्रेज अथवा सरकारी अफसर चलते थे। परन्तु यह बड़ी खुशी की बात है कि अब अन्य सड़कों की ओर ध्यान दिया जाने लगा है।

सचमुच यदि सोच कर देखा जाय तो मालूम पड़ेगा कि जितनी सड़कों की जरूरत शहर में है उससे कहीं अधिक आवश्यकता इस बात की है कि गाँवों में सड़कें बनाई जायँ। हम ग्राम्य अर्थशास्त्र में विनिमय के अन्तर्गत बता चुके हैं कि यह बहुत जरूरी है कि किसानों को अपनी पैदावार को बेचने में मदद की जाय। फसल तैयार हो जाने पर किसान के सामने यह सवाल खड़ा होता है कि वह अपने माल को किस प्रकार मंडी में ले जाए। उचित पक्की व चौड़ी सड़कों के न होने से वह मोटर लारी का फायदा तो उठा नहीं सकता। अतएव उसे ऊँट, बैलगाड़ी आदि का ही आश्रय लेना पड़ता है। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि प्रधान-प्रधान केन्द्रों से लेकर गाँव गाँव तक पक्की सड़कें बना दी जायँ। बीच में पड़ने वाली नदियों पर पक्के पुल बंध जायँ तथा लारी का ऐसा

इंतज़ाम किया जाय कि वह यदि हर रोज न हो सके तो हफ्ते में एक या दो बार तो हर एक गाँव में पहुँच जाय। गाँव वालों के लिए इतना सहारा बहुत होगा।

रेल

परन्तु हम देखते हैं कि चारों ओर रेल और सड़क पर चलने वाली लारियों में लागडाँट चल रही है। अतएव यह कहा जाता है कि सड़कों के रहने से रेलवे को नुकसान के सिवा कोई फायदा नहीं होता। परन्तु यह कहना ठीक नहीं जान पड़ता। क्योंकि यदि सड़कें न हों तो बस्ती और गाँव से आने वाला बहुत सा माल जो रेल द्वारा बाहर भेजा जाता है रेल के हाथ से निकल जाय। इसी प्रकार विविध उद्योग-धंधों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है। ये रेलवे से ही भेजे जाते हैं। यदि सड़कें न हों तो कच्चा माल रेल के पास न पहुँचे।

कुछ भी हो परन्तु एक बात तो माननी ही पड़ती है। वह यह कि हम आज कल की मोटर-रेल लागडाँट को देख कर यह नहीं कह सकते कि यदि रेल बन्द हो जाय तो मोटर द्वारा हम सब काम कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि थोड़ी सी दूरी के लिए मोटर रेल से प्रतियोगिता कर सकती है। बहुत से बहुत सत्तर अस्सी मील तक मोटर द्वारा माल किफायत से भेजा जा सकता है। परन्तु जब माल को सैकड़ों मील की दूरी पर भेजना होता है, तो रेलवे का ही मुँह ताकना पड़ता है। यदि खानों से निकलने वाले कोयले और लोहे को, जो कि बहुत कम कीमत रखता है परन्तु जिसके लिए काफी जगह चाहिए, मोटर से भेजा जाय तो खर्च बहुत अधिक पड़ जाय और इनकी कीमत बहुत बढ़ जाय। ऐसी चीज़ों को भेजने के लिए रेल ही ठीक पड़ती है। यही नहीं, इसके अलावा अकाल पड़ने पर दूर दूर से खाने की चीजें रेल द्वारा लाई

जा सकती हैं। इस प्रकार आदमियों को भूखा मरने से बचाया जा सकता है।

जिस समय हिन्दोस्तान में रेलें चालू की गई थीं उस समय सरकार ने विदेशी कम्पनियों को निश्चित मुनाफे की गारंटी दी थी। जिस साल रेल को इतना मुनाफा नहीं होता था, तब भारत सरकार उनके घाटे को पूरा करती थी। ऐसा होने से विदेशी कम्पनियों ने मनमाना खर्च किया और सरकार के ऊपर विलायती कम्पनियों का बहुत बड़ा कर्ज चढ़ गया। जब सरकार की आँखें खुलीं तो कम्पनियों से रेलें मोल ली जाने लगीं। अब बहुत सी रेलें सरकारी हो गई हैं। परन्तु कर्ज इतना बढ़ा हुआ है कि उसको अदा करने के कारण यात्रियों व माल के किराए भाड़े कम नहीं किए जाते। यदि देखा जाय तो सब से ज्यादा आमदनी तीसरे दर्जे के मुसाफिरों से ही होती है। यदि यह मान लिया जाय कि आप तीसरे दर्जे में रेल यात्रा कर चुके हैं, तो आपको यह कहने की जरूरत नहीं कि किस प्रकार भेड़-बकरी की भाँति तीसरे दर्जे में मुसाफिरों की भीड़ होती है और उनके साथ किस कड़ाई के साथ बर्ताव किया जाता है। कहने को स्टेशनों पर पानी का इंतजाम रहता है। परन्तु सब कोई जानता है कि बड़े स्टेशनों को छोड़ अक्सर छोटे स्टेशनों पर पानी पांडे का कहीं पता नहीं रहता।

यात्रियों को छोड़ कर माल की ही बात ले लीजिए। हमारी रेल का इंतजाम अंग्रेजों के हाथ में होने का ही यह फल है कि कच्चे माल को बन्दरगाहों पर भेजने का अथवा विदेशी तैयार मालको देश के अन्दर पहुँचाने का किराया भाड़ा कम रहता है। फलस्वरूप हिन्दोस्तान के जिस शहर या कस्बे में देखो वहीं विलायती कपड़ा, विलायती बिसातखाने की चीजें आदि भरी दिखाई पड़ती हैं। इस समय इस बात की बड़ी जरूरत है कि

देश में तरह तरह की चीज़ें बनाई जाएँ। परन्तु हमारे काम में रेलवे बाधा डालने को तैयार खड़ी रहती है। यदि हम कच्चा माल देशी कारखानों को भेजना चाहते हैं तो हमें बहुत अधिक महसूल देना पड़ता है। इसका नतीजा यह होता है कि जब माल तैयार हो जाता है तो हमको लागत खर्च बहुत ज्यादा पड़ जाता है और हम अपने माल को उतने दाम पर नहीं बेच सकते जितने पर उसी तरह का विदेशी माल बिकता है। इस प्रकार लागडाँट में हार जाने के कारण हमारे उद्योग-धन्धे चौपट हो रहे हैं। कच्चे माल को बाहर भेजने को कितनी उत्तेजना दी जाती है यह इस बात से स्पष्ट है कि लाहौर से यदि रुई पहले बम्बई और फिर वहाँ से सूरत भेजी जाय तो भी उतना खर्च नहीं पड़ता जितना रुई को लाहौर से सीधा सूरत भेजने में पड़ जाता है। इसके अलावा यदि आप तेलहन की जगह तेल को विदेशों में भेजने के लिए बम्बई को रवाना करिएगा तो आपको अधिक भाड़ा देना पड़ेगा।

इसके अलावा रेलवे में बहुत सी विदेशी पूँजी लगी हुई है और उसके सूद के रूप में देश के धन का एक बड़ा हिस्सा विदेश भेजना पड़ता है। रेलों का अधिकांश सामान बाहर से ही आता है। इसके लिए भी करोड़ों रुपया बाहर भेजना पड़ता है। अच्छा तो यह होगा कि रेल के डिब्बे आदि सामान यहीं तैयार किये जायँ। साथ ही साथ इस बात की भी बड़ी जरूरत है कि सब रेल एक माप (gauge) की कर दी जायँ क्योंकि आज कल की हालत में भिन्न भिन्न रेलों की मापों में फरक है। अतएव जब माल को एक लाइन से दूसरी लाइन पर लादा जाता है तो किराए में व्यर्थ की वृद्धि हो जाती है। साथ ही साथ माल के चोरी जाने और खराब होने की सम्भावना बढ़ जाती है। अंत में यही कहना पड़ता है कि रेल देश की उन्नति में बहुत कुछ सहायता कर सकती है।

परन्तु हमारे भारत के रेलों को ऐसा बनाने के लिए उनमें बहुत कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

हमारे देश में द्वितीय महायुद्ध से पहले करीब ब्यालीस हजार मील रेलवे लाइन थी। आधी रेलवे लाइन तो सिंध और गंगा के मैदान में ही है। इस भाग में और खास कर बिहार में ब्रांच लाइनें बहुत ज्यादा हैं। देश की खास रेलें नीचे दी जाती हैं:—

ईस्ट इंडियन रेलवे—दिल्ली से कलकत्ता तक।

जी० आई० पी० रेलवे दिल्ली से बम्बई और मद्रास तक, तथा बम्बई से प्रयाग तक।

नार्थ वेस्टर्न रेलवे—करांची से सिंध होते हुए पंजाब प्रांत तक।

अवध तिरहुत रेलवे—इलाहाबाद से संयुक्त प्रांत और बिहार के उत्तरी भाग होती हुई बंगाल के पश्चिमी भाग में कटिहार तक।

बंगल नागपुर रेलवे—कलकत्ते से नागपुर और मद्रास तक।

बी० बी० एंड सी० आई० रेलवे—दिल्ली से मालवा गुजरात होती हुई बम्बई तक।

मद्रास और सदर्न मरहटा रेलवे—रायचूर से मद्रास होती हुई दक्षिण में।

ईस्ट इंडियन रेलवे सब से अधिक कमाती है। नार्थ वेस्टर्न रेलवे लम्बाई में सब से बड़ी है। अवध तिरहुत रेलवे लगी हुई पूंजी पर सब से ज्यादा मुनाफा कमाती है। हिन्दुस्तान में एक हजार वर्ग मील पीछे करीब २५ मील रेलवे लाइन है। यह बहुत कम है और इसे दुगना शीघ्र बढ़ाना चाहिए।

नदी व नाव

स्थल मार्ग पर विचार करते समय हमें एक बात का ध्यान रखना चाहिये। वह यह कि चाहे हम मोटर द्वारा माल ले जायँ अथवा रेल द्वारा, इनके लिए सरकार को पहले से विशेष रूप से

इन्तजाम करना पड़ता है। मोटरों के लिए पहले से सड़क बनानी पड़ती है और रेलवे के लिए लोहे की पटरियाँ बिछानी पड़ती हैं। परन्तु जल मार्ग से सामान ले जाने में इस खर्च की कोई आवश्यकता नहीं होती। नदियों को बनाना नहीं पड़ता। वे अपने आप अपना रास्ता ढूँढ कर बहती रहती हैं। बस आपको उसमें नाव डालने की देर रहती है। यदि बहाव की ओर जाना है तो जरा भी शक्ति नहीं लगानी पड़ती। नाव अपने आप बहती चली जाती है। हिन्दोस्तान में पुराने समय में जल मार्ग का ही अधिक उपयोग किया जाता था। जल मार्ग के कारण ही हम देखते हैं कि बड़े बड़े तीर्थ और व्यापार के केन्द्र नदियों के किनारे बसे हैं। लेकिन जब से अंग्रेजों का शासन आरम्भ हुआ तब से नावों द्वारा माल ले जाने के ऊपर अधिक जोर नहीं दिया गया। इसके विपरीत रेल और सड़कों को बढ़ाने में करोड़ों रुपया लगा दिया गया। यह भी कहा जाता है कि बरसात में बाढ़ की तेज धार और गरमी में नदियों के सूख जाने के कारण नदियों द्वारा व्यापार नहीं हो सकता। गरमी में किनारे पर काफी दूर तक रेत रहती है जिससे गाड़ियाँ किनारे तक नहीं आ सकतीं। नदियाँ छिछली भी होती हैं। परन्तु यदि शुरू में थोड़ी सी पूँजी लगा कर श्रम किया जाता तो जल मार्ग का जाल बिछ जाता।

अस्तु, भारत में सिन्ध, गंगा और ब्रह्मपुत्र, इन तीनों नदियों में बारहों महीने नाव चलाई जा सकती है। सतलज, चिनाब, गोदावरी, महानदी, कृष्णा आदि के मुहाने के पास भी नावें खेई जा सकती हैं। हाँ, बरसात में छोटी नदियों में भी नावें चलाई जा सकती हैं। बंगाल में गंगा और ब्रह्मपुत्र काफी चौड़ी हैं। इस प्रान्त में चावल और जूट तो ज्यादातर नावों पर लाद कर ही मंडी और कारखानों में पहुँचाया जाता है। बिहार में गंगा नदी में स्टीमर चलते हैं। कहीं कहीं पर माल ले जाने के लिए नहरें

भी बनाई गई हैं परन्तु अक्सर नहरें आबपाशी के लिए ही बनाई जाती है। जहाँ कहीं नाव चलाने के लिए नहरें खोदी गई गई हैं वे सब नदी के डेल्टों के ऊपर ही बनाई गई हैं। नहरों को सामान ढोने में उड़ीसा, सिन्ध, मद्रास और दक्षिण बंगाल की नदियों के मुहाने वालों स्थलों पर ही सफलता मिलती है क्योंकि वहाँ पर पुल बनाना कठिन तथा खर्च का काम है। यों पंजाब में नहर द्वारा हिमालय से लकड़ी लाई जाती है। गंगा जमुना की नहरों से थोड़ा खेती का माल लाया जाता है और बिहार प्रांत में सोन नहर द्वारा पत्थर।

समुद्र और जहाज़

नदियों से तो देश के अन्दर ही माल लाने ले जाने का काम लिया जा सकता है। परन्तु यदि विदेशों को माल भेजा जाय अथवा वहाँ से सामान मँगाया जाय तो नावें किसी काम की नहीं सिद्ध होंगी। उसके लिए बड़े बड़े जहाज बनाए जाते हैं जिनका वजन हजारों टन होता है। पहले जमाने में भारतीय जहाज बड़े मज़बूत होते थे तथा यहाँ नाविक जहाजरानी के हुनर में पक्के समझे जाते थे। परन्तु जब से विदेशी शासन का आगमन हुआ है, वहाँ के बड़े बड़े जहाजों के सामने यहाँ के जहाज मारे गए। अंग्रेजी सरकार अधिकतर यही चाहती है कि विलायती जहाज में ही माल आता जाता रहे। भारत का तटीय तथा सामुद्रिक व्यापार विदेशी जहाजों द्वारा ही होता है। इसके अलावा विदेशी जहाजों के मालिक विदेशी व्यापारियों से तैयार सामान ढोने के भाव महँगे करके हमारे देशी व्यापार को धक्का पहुँचाते हैं। इससे हमें करोड़ो रुपए उन जहाजों को देना पड़ता है। इस बात की बड़ी जरूरत है कि तटीय व्यापार भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित किया जाय। ऐसा करने से भारतीयों का एक पुराना व्यवसाय

फिर से चमक उठेगा। साथ ही हजारों बेकारों को रोजगार मिल जायगा।

हवाई जहाज़

पिछली शताब्दी तक कोई हवाई जहाज का नाम तक नहीं जानता था। परन्तु गत पैंतीस वर्षों में हवाई यात्रा में इतनी सुविधा और उन्नति हो गई है कि अब वायु मार्ग से ही ज्यादे से ज्यादा काम लिया जाने लगा है। हवाई जहाज यात्रा के लिए यह बहुत जरूरी है कि हवा अनुकूल हो तथा रास्ता ऐसा न हो कि उसमें आए दिन आँधी तूफान उठते हों। इन सब बातों के हिसाब से भारत एक आदर्श देश है। बरसात के दिनों में तो अवश्य कुछ गड़बड़ी रहती है, और नहीं तो बारहों महीनों वायुमंडल स्थिर रहता है। जल मार्ग की भाँति वायु मार्ग भी प्रकृति द्वारा सम्पन्न है। हवाई जहाजों के लिए भी कोई सड़क नहीं बनानी पड़ती। हवाई जहाज के उतरने का स्टेशन बनाने में भी कम खर्च पड़ता है। अभी तक हवाई जहाज द्वारा यात्री और डाक ही जाती है और भविष्य में भी अभी यात्री और डाक ही हवाई जहाज द्वारा लाए ले जाएंगे। वायु मार्ग से सोना चाँदी आदि मूल्यवान धातुओं को ले जाने से चोरी का डर तो नहीं के बराबर रहता है। यदि इस ओर पूरा ध्यान दिया जाए और हवाई जहाज हिन्दुस्तान में ही बनाए जाएँ तो वह दिन दूर नहीं है जब हवाई जहाज द्वारा कच्चा व तैयार माल भी ढोया जा सकेगा। हवाई जहाज की उपयोगिता का सबसे बड़ा कारण यह है कि एक घंटे में डेढ़ सौ मील आना इसके बाएँ हाथ का खेल होता है। और इस प्रकार समय की बहुत बचत होती है। भारत में हवाई जहाज के मुख्य अड्डे हैं:—
करांची, दिल्ली, प्रयाग, कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, लाहौर, ग्वालियर, कानपुर इत्यादि।

तार, टेलीफोन और बेतार का तार

ऊपर हमने तुम्हें बताया है कि हवाई जहाज भी डाक ले जाता है अर्थात् चिट्ठी पत्री भी वायु मार्ग से भेजी जाती हैं। लेकिन मान लो तुम्हारा कोई मित्र कलकत्ता में रहता है। इधर हाईस्कूल रिजल्ट निकलने पर तुम्हें मालूम हुआ कि वह प्रथम श्रेणी में पास हो गया। तुम चाहते हो कि इस बात की खबर जल्दी से अपने मित्र के पास पहुँचा दी जाय। यदि तुम डाक से चिट्ठी भेजते हो तो एक दो दिन लग जायगा। तुम हवाई जहाज से चिट्ठी भेज सकते हो। हवाई जहाज रोज तो आता जाता नहीं। वह तो हफ्ते में तीन चार बार जाता है और वह भी हर जगह से नहीं बल्कि कुछ निश्चित बड़े शहरों से। इसलिए तुम तार घर में जाकर अपने मित्र को तार दे देते हो। बिजली के यंत्रों के द्वारा तुम्हारे लिखे हुए शब्द मय पता के कलकत्ता के तारघर को भेज दिए जाते हैं और तार लगाने के घंटा दो घंटा बाद ही तुम्हारे मित्र को तुम्हारी खबर मिल जाती है। व्यापारी भाव व माल के सम्बन्ध में रोज तार दिया करते हैं। सरकारी हुकुम तार और टेलीफोन दोनों के जरिये आते हैं। तार घर तो हरेक रेलवे स्टेशन और बड़े डाकखानों में होता है परन्तु टेलीफोन कुछ बड़े बड़े शहरों में ही होते हैं। बड़े बड़े व्यापारी क्षण क्षण में दूर के व्यापारियों से भाव ताव पूछते रहते हैं। टेलीफोन पर ही खरीद फरोख्त भी हो जाती है। जो सरकारी आर्डर बहुत जरूरी होते हैं टेलीफोन द्वारा भेजे जाते हैं। अब तो लंदन और भारत के बीच टेलीफोन द्वारा बातें हो सकती हैं। तार और टेलीफोन से बढ़ कर बेतार का तार है। इसमें सब बातें तो तार की ही तरह की हैं। फरक यही है कि इलाहाबाद से कलकत्ता तार भेजने में इलाहाबाद से कलकत्ते तक तार के खम्भे गाड़े जाते हैं। परन्तु बेतार के तार में इन खम्भों की जरूरत

नहीं रहती। इसी लिए इसका नाम बेतार का तार (Wireless बेतार Telegraph तार) रक्खा गया है। समुद्र पार के स्थानों में अथवा समुद्र में एक जहाज से दूसरे जहाज पर समाचार भेजने के लिए यही तरीका काम में लाया जाता है, क्योंकि इनके बीच तार या टेलीफोन के खम्भे गाड़े नहीं जा सकते। रेडियो भी बेतार का तार है फ़र्क केवल इतना है कि इसमें ख़बर देने वाले की आवाज भी सुनाई पड़ती है। अब तो रोज रेडियो पर तरह तरह के माल के भाव आते हैं। यदि तार, टेलीफोन और बेतार के तार का इन्तज़ाम न होता तो व्यापार को बहुत धक्का पहुँचता। एक जगह का भाव दूसरी जगह अथवा एक स्थान की ख़बर दूसरे स्थान पर जल्दी नहीं भेजी जा सकती और लोगों को माल बेचने और खरीदने में बड़ी दिक्कत उठानी पड़ती।

अस्तु, मोटर, रेल, नाव, जहाज, वायुयान, तार, टेलीफोन और बेतार के तार, सब व्यापार करने में बड़ी सुविधा पहुँचाते हैं। आज कल की हालत देखते हुए इनके बिना व्यापार की उन्नति हो ही नहीं सकती।

अभ्यास के प्रश्न

१—व्यापार के मुख्य साधन क्या हैं? प्रत्येक का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

२—'भारत की सड़कों की दशा बिगड़ी हुई हैं,' उक्त कथन की विवेचना कीजिए।

३—आज कल होने वाली रेल और मोटर प्रतियोगिता कहाँ तक दूर की जा सकती है।

४—रेलवे अधिकारियों को मुसाफिर तथा माल लाने ले जाने की सुविधा की ओर क्यों अधिक ध्यान देना चाहिये?

५—"रेलवे के बुरे इंतजाम का कारण हमारे सरकार की कूटनीति है" क्या आप इस कथन से सहमत है ? विस्तारपूर्वक लिखिए।

६—भारत में नदी द्वारा व्यापार करने की सुविधाओं पर विचार कीजिये। क्या अब भी नदियों द्वारा उतना व्यापार किया जाता है जितना पुराने जमाने में होता था ?

७—"यह बड़ी शर्म की बात है कि भारत का सामुद्रिक व्यापार करोड़ों रुपयों का है तब भी सरकार भारतीय जहाज़ों की उन्नति के लिए कुछ नहीं करती।" विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।

८—भारत में हवाई जहाजों से व्यापार को कितनी सहायता मिलती है ? क्या भारत में हवाई जहाज़ों का भविष्य आशाजनक है ?

९—"तार और टेलीफोन भारतीय व्यापार के मुख्य अंग बन गए हैं।" उक्त कथन की विवेचना कीजिए।

बारहवाँ अध्याय

प्रांतीय और अंतर प्रांतीय व्यापार

व्यापार और उसका साधन

व्यापार और व्यापार के साधन में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। चाहे विदेशी व्यापार हो अथवा देश के अंदर का व्यापार, बिना माल लाने और ले जाने के तरीके के व्यापार का काम चल ही नहीं सकता। यदि तुमको इलाहाबाद से कानपुर माल भेजना है तो तुम बैलगाड़ी, ताँगा, मोटर या रेलगाड़ी का उपयोग कर सकते हो। लेकिन जहाँ तक होगा तुम माल को रेलगाड़ी से ही भेजना चाहोगे। इस बात का निश्चय करने के लिए कि कौन सी सवारी से काम लिया जाय यह पता लगाना आवश्यक होता है कि माल को किस सवारी से भेजने से सब से कम समय और सब से कम पैसे लगेंगे। साथ ही साथ व्यापारी यह भी देखता है कि किस हालत में उसे सबसे कम परेशानी उठाना पड़ेगी। जैसे जैसे माल को लाने और ले जाने के तरीकों में उन्नति होती जाती है वैसे वैसे समान की आमदरफ्त अधिक आसानी से की जा सकती है। फलस्वरूप व्यापार में तरक्की होने लगती है। भारत में इस समय यही हाल चल रहा है। देश में दिनोंदिन अच्छी से अच्छी सवारियों का उपयोग किया जा रहा है और इसलिए कहा जा सकता है कि हिन्दोस्तान के अन्दर होने वाला व्यापार उन्नति पर है। हम और हमारे भाई गरीब हैं। यदि हमारी हालत सुधर जाय तो हमारा भीतरी व्यापार और भी बढ़ जाय। यदि भारत में रहने वाले

हर एक व्यक्ति पीछे एक पैसा प्रतिदिन खर्च हो तो पचास लाख से ऊपर रुपये खर्च हो जायँ और यदि हर एक आदमी एक आने का सामान खरीदे तो अढ़ाई करोड़ रुपए का व्यापार हो जाय।

अस्तु, हिन्दोस्तान के प्रान्तों के अन्दर या प्रान्तों के बीच जो व्यापार होता है वह एक खास विशेषता रखता है। भारत देश नहीं बल्कि महाद्वीप कहलाने योग्य है। अठारह लाख वर्ग मील से ऊपर तो इसका क्षेत्रफल है। रूस को छोड़ कर इसमें सारा यूरप समा सकता है। क्या गरम क्या ठंढा और क्या मातदिल (समशीतोष्ण) यहाँ पर सब तरह की जलवायु पाई जाती है। साल भर में कहीं पाँच इंच पानी बरसता है तो कहीं डेढ़ सौ से भी ऊपर। फलस्वरूप आप जिस तरह कि प्राकृतिक दशा में रहना चाहें वही आपको देश में कहीं न कहीं अवश्य मिल जायगी। जलवायु में इतनी भिन्नता रहने के कारण भारत में हर तरह के फलफूल और फसल पाई जाती हैं। साथ ही हिन्दोस्तान में मनुष्य भी हर तरह के रहते हैं। बम्बई की ओर पारसी, गुजराती और मरहटे होते हैं। मद्रास प्रेसीडेन्सी में चेट्टी, कोमाटी आदि, पंजाब और यू० पी० में मुसलमान, खत्री व बनिए, और बिहार बंगाल में बिहारी, बंगाली, वगैरह होते हैं। भाँति भाँति के आदमियों के रहने से यह बात जरूर है कि हर तरह की वस्तुओं की माँग होती है। लेकिन जैसा कि पहले कहा जा चुका है हमारे देश में सब तरह की चीजें पैदा की जाती हैं। अतएव यहाँ जीवन-निर्वाह की जिन चीजों की आवश्यकता पड़ती है वे सब यहीं मिल जाती हैं। यूरप, अमरीका, इंगलैंड आदि देशों से या तो मशीनें और मशीन से बना माल आता है या दवाइयाँ, शराब, मोटर, साइकिल, मिट्टी का तेल इत्यादि। कहने का मतलब यह कि भारत की आवश्यकताएँ अधिकतर भारत में तैयार या पैदा होने वाली वस्तुओं से ही पूरी हो जाती हैं।

प्रान्तीय व्यापार का क्षेत्र

कोई चीज किसी प्रान्त में अधिक होती है तो कोई किसी अन्य प्रान्त में। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि हर एक सूबे में पैदा होने वाली वस्तु उसी सूबे में खप जाय। जैसे सीमाप्रान्त में अंगूर बहुत होते हैं लेकिन वे सब अंगूर वहाँ वाले नहीं खा सकते। इसी तरह बिलोचिस्तान में खजूर की उत्पत्ति अधिक होती है। सीमाप्रान्त और बिलोचिस्तान के अलावा पञ्जाब, संयुक्तप्रान्त व बम्बई में अंगूर वगैरह की माँग ज्यादा होने से ये वहाँ भेज दिए जाते हैं। देश के अन्दर इस तरह सामान एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में अथवा प्रान्त के एक कोने से दूसरे कोने में खूब भेजा जाता है। पंजाब और संयुक्त प्रान्त में पैदा होने वाले गेहूँ को लीजिए। बम्बई, बंगाल आदि तक के व्यापारी इसे खरीदते हैं। चाय की खेती आसाम और दार्जिलिंग में की जाती है परन्तु आपको इसके पीने वाले बिहार, महाराष्ट्र, पंजाब और मद्रास तक में मिलेंगे। संयुक्त-प्रान्त और बिहार में बनने वाली चीनी, बम्बई, पञ्जाब, मध्यप्रान्त व बंगाल में भी बिकती है। कलकत्ते का केला और बम्बई का हरा केला बंगाल से लेकर पंजाब तक के शहरों में खरीदा जा सकता है। इलाहाबाद का अमरूद यू० पी० के शहरों में ही नहीं बल्कि उसके बाहर भी भेजा जाता है। मुजफ्फरपुर की लीची, भागलपुर के रेशमी कपड़े और नागपुर के सन्तरे यू० पी०, सी० पी० वगैरह प्रान्तों के नगरों में किसने बिकते नहीं देखे हैं। चाहे लखनऊ का दशहरी आम आपको लखनऊ से बाहर न मिले, लेकिन इलाहाबाद का लंगड़ा आम आप कानपुर और आगरे में भी खरीद सकते हैं। हालाँकि कानपुर में कपड़े के कारखाने हैं तिस पर भी अहमदाबाद का बना हुआ धोती जोड़ा और कपड़ा संयुक्त-प्रान्त में खूब बिकता है। नारियल के पेड़ बम्बई और मद्रास प्रेसीडेन्सी में पाए जाते हैं। लेकिन बिकने के लिए वे यू० पी और

बिहार आदि प्रान्तों में भी भेजे जाते हैं। काश्मीर के सेब और अखरोट बम्बई में पहुँचते हैं और लखनऊ आगरा इलाहाबाद आदि शहर में भी बिकते हैं।

प्रान्तीय व्यापार की हालत

अस्तु, यद्यपि कहने को भारत का बहुत सा माल विदेशों को जाता है और वहाँ से यहाँ आता भी है, परन्तु विदेशी व्यापार से हिन्दोस्तान के अंदर होने वाले व्यापार का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। दर असल बात यह है कि यहाँ पर जितना सामान पैदा अथवा तैयार किया जाता है उसका केवल एक छोटा सा हिस्सा विदेशों को भेजा जाता है। भारतीय सामान और वस्तुओं को बाहर भेज देने के पश्चात् जो माल बच रहता है उससे भी भारतीय व्यापार का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। कारण, जितना सामान पैदा किया जाता है उसका एक बड़ा हिस्सा तो काम करने वाले ही खा जाते हैं। फसल तैयार हो जाने पर किसान उसे काट माँड़ कर जब खलिहान में रखता है तो वह सारे अनाज को बेचता नहीं। मान लो गेहूँ की फसल है। पहले वह अपना और अपने कुटुम्ब का पेट भरने के लिए आठ दस महीने की रसद निकाल लेता है। माल की जो मात्रा पेट में पहुँच जाती है अथवा भोजन के लिए अलग कर रख दी जाती है वह तो बाजार में बेची नहीं जा सकती। इस प्रकार किसान के अपना भोजन निकाल लेने के बाद जो बचता है वही बेचने के लिए बाजार में जाता है। इसी को देखकर भाव ताव व खरीद फरोख्त होती है। व्यापार उन्हीं चीजों का होता है जिनके बारे में यह उम्मेद की जाती है कि उन चीजों को पैदा करने वालों के खा लेने के बाद उनकी थोड़ी सी मात्रा बच जाएगी।

परन्तु आजकल तो हाल कुछ और ही है। किसानों की हालत बहुत गिरी हुई है। बेचारों के पास खाने तक को पूरा भोजन नहीं

मिलता। उनके ऊपर कर्ज का भारी बोझ लदा रहता है। लगान के अलावा उसे हर फसल पर महाजन को भी रुपया देना पड़ता है। इसलिए उसे पैदा की हुई फसल के उस हिस्से में से भी बेचना पड़ता है जो कि वे अपने लिए बचा कर रखना चाहते हैं। पैसा तो बेचारों को कोई ज्यादा मिलता नहीं; हाँ, पेट का भोजन हाथ से निकल जाता है। अस्तु, यह ठीक तौर पर नहीं कहा जा सकता कि भारत के भीतर कितने का व्यापार होता है। अंदाज लगाने वालों का कहना कि हिन्दोस्तान का अंदरूनी व्यापार विदेशी व्यापार के मुकाबले में करीब करीब तिगुना है। परन्तु इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान देने योग्य है। इन अंदाज लगाने वालों ने भीतरी व्यापार की मात्रा में मोटर और नहर द्वारा आने जाने वाले मालों को बिल्कुल शामिल नहीं किया है। यदि उनका अंदाज सत्य मान लिया जाय और यदि मोटर और नहर के जरिये होने वाले व्यापार की मात्रा भी जोड़ दिया जाय तब भी हमारा भीतरी व्यापार विदेशों से होने वाले व्यापार के तिगुने से भी अधिक ठहरता है।

ऊपर देश के भीतर और बाहर होने वाले व्यापार का जो सम्बन्ध बतलाया गया है, उससे शायद आप यह सोच सकते हैं कि हिन्दोस्तान की व्यापारिक हालत केवल अच्छी ही नहीं बल्कि बहुत अच्छी है। परन्तु आपका यह ख्याल गलत है। यह तो सब को मालूम ही है कि सन् १९३१ में यहाँ की जनसंख्या पैंतीस करोड़ थी और आजकल उनतालीस करोड़ है। और देशों में जनसंख्या बहुत कम है तिस पर वहाँ का व्यापार मुकाबले में भारत के व्यापार से टक्कर लेता है। पर क्या आप बता सकते हैं कि जनसंख्या के इतना अधिक होते हुए भी यहाँ का व्यापार क्यों इतना कम है? इसका सब से बड़ा कारण यह है कि हिन्दोस्तान के रहने वाले बड़ी सादी चाल से जिन्दगी गुजारते हैं। शहरों में रहने वाले पाँच करोड़ आदमियों की बात छोड़िए।

हमारा मतलब तो गाँव में रहने वाली जनता से है जो कि एक मिर्जई (देहाती वास्कट) और धोती पर एक साल का समय काटने का दावा रखती है। यह ठीक है कि जहाँ तक होता है वे आस पास में ही मिल जाने वाली चीजों से अपना काम चलाते हैं। परन्तु उन्हें ऐसा बनाने में उनकी गरीब दशा का भी कुछ कुछ हाथ है। आजकल उनके पास इतना भी पैसा नहीं रहता कि वे भरपेट भोजन कर सकें, फिर उपभोग के बहुत से पदार्थों को खरीदने की कौन कहे।

प्रान्तीय व्यापार किस प्रकार होता है ?

किसानों की गिरी हुई दशा और उनके फसल बेचने के तरीके में बहुत सम्बन्ध है। बाजार भाव से बिल्कुल अनजान होने के कारण बेचारे किसान को सस्ती दर से ही अपना माल बेचना पड़ता है। और चूँकि उनमें से बहुतों को बाहर जाकर बेचने का सुभीता भी नहीं रहता, अतएव उन्हें जो रुपए मिल जाते हैं उसी पर उन्हें संतोष करना पड़ता है। जो थोड़े से किसान मंडी आ कर अनाज बेचते हैं वहाँ पर उनसे चुंगी, गाड़ी ठहराई, तुलाई, गौशाला, मंदिर, प्याऊ इत्यादि के लिये न जाने क्या क्या लिया जाता है। वहाँ भी किसान को यह नहीं मालूम होता कि दर असल मंडी का भाव क्या है। अस्तु किसानों से निकल कर अनाज आढ़तिया के पल्ले पड़ता है। आढ़तिया चाहे तो इसे किसी बंदरगाह की एजेन्सी को बेच देता है या उसे किसी और प्रान्त में अथवा उसी प्रान्त के किसी दूसरे शहर के व्यापारी के हाथ बेंच देता है। बन्दरगाह से माल ज्यादातर विदेश ही पहुँच जाता है। प्रान्तीय व्यापारी तो जहाँ तक होता है फुटकर दूकानदारों के हाथ ही अनाज बेचता है, वैसे तो भारतीय व्यापार कुछ खास खास जाति के आदमियों के हाथ में है। व्यापार में मारवाड़ियों ने बड़ा

भाग लिया है। बम्बई में पारसियों ने, पंजाब में खत्रियों और मुसलमानों ने, संयुक्त प्रान्त में बनियों ने, बंगाल में मारवाड़ियों और मद्रास में चेट्टी और कोमाटियों ने बड़ी उन्नति दिखाई है।

परन्तु भारतीय व्यापारी जो कि आढ़तिए के नाम से पुकारे जाते हैं आपस में बेकार की लागडाँट रखते हैं। उनके बीच मेल न होने के कारण वे सरकार या रेलवे-कम्पनियों पर पूरा प्रभाव नहीं डाल सकते। उधार देना, किसी वस्तु का दाम गिरा कर ग्राहक को बहकाना, अपना माल अच्छा हो चाहे खराब उसे किसी प्रकार बेचना, और ग्राहकों पर मुकदमा चलाने में तनिक भी संकोच न करना आदि बुराइयों को फौरन दूर करने की आवश्यकता है। भारतवर्ष में यूरोपियन एजेंसी और कम्पनियाँ काफी मशहूर हैं। इनके यूरोपियन व्यापारियों ने तो एकता का गुण अच्छी तरह समझ लिया है और इसी कारण इन्होंने चेम्बर आफ कामर्स और ट्रेड एसोसिएशन खोल रक्खे हैं। अब तो भारतीय व्यापारी भी एकता और सहयोग का महत्व समझ रहे हैं और उन्होंने भी व्यापारिक संघ खोलना आरम्भ कर दिया है।

तौल-माप और सिक्कों की भिन्नता

व्यापारियों की बुरी आदतों के अलावा हिन्दोस्तान के अंतर-प्रान्तीय व्यापार के मार्ग में एक और रोड़ा खड़ा है। यहाँ पर भिन्न भिन्न प्रान्तों में तौलने-नापने का ढंग भिन्न भिन्न है। यही नहीं तुम्हें यहाँ कई तरह के सिक्के भी मिलेंगे। इस बात को और स्पष्ट करने के लिए तौलने का सेर ले लो। आमतौर पर यह अस्सी तोले का होता है। लेकिन फैक्टरियों में बहत्तर तोले का सेर माना जाता है। यदि तुम बम्बई में सेर भर दूध खरीदो तो तुम्हें छत्तीस तोला दूध मिलेगा। मद्रास में तो चौबीस तोले का ही सेर चलता है। मध्य-प्रान्त में दाल, चावल आदि तौल कर नहीं बल्कि माप कर

दिए जाते हैं। इलाहाबाद में आम और अमरूद गिन कर बिकते हैं लेकिन आगरा की ओर ये चीजें तौल कर बिकती हैं। इसी तरह कपड़े आदि के माप में सोलह गिरह छत्तीस इंच का गज का आम चलन है। लेकिन कितनी ही जगह भाँति भाँति के कच्चे गज का व्यवहार होता है। इसी प्रकार सिक्कों का हाल है। यों तो अंगरेजी सरकार का रुपया कानूनन सब जगह चल सकता है परन्तु देशी रियासतों में भिन्न भिन्न मूल्य का रुपया चलता है। सिक्का ढालने का अधिकार कुछ ऐसा महत्व रखता है कि रियासतों के राजा लोग इन्हें छोड़ना नहीं चाहते। कहीं कहीं तो यह देखा गया है कि रियासत का सिक्का ब्रिटिश भारत में भी चलता है। उदाहरण के लिए ग्वालियर रियासत से सिन्धिया महाराज के नाम पर जो पैसा चलता है उसका चलन रियासत से लेकर आगरा और मथुरा तक होता है। संतोष की बात है कि सरकार की ओर से यह कोशिश की जा रही है कि सब जगह एक ही प्रकार का सेर, गज और सिक्का चलने लगे। मद्रास, बंगाल, संयुक्तप्रान्त और मध्यप्रान्त में तो एक सी तौल के प्रयोग के लिए सरकारी कानून बनाने के संबंध में विचार हो रहा है परन्तु बिहार में अभी इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया।

प्रान्तीय व्यापार और दलाल

आज कल जिस प्रकार व्यापार होता है उसमें एक बुराई और है। हमारे व्यापार करने के तरीके में दलाल बहुत अधिक होते हैं। उदाहरण के लिए गेहूँ के व्यापार को ले लीजिए। गाँव के किसान महाजन के कर्जदार रहते हैं। फसल कट कर तैयार हो जाने पर महाजन का तगादा पर तगादा आना आरम्भ होता है। किसान को उसकी पूजा करनी ही पड़ती है। साथ ही अनाज को मंडी में ले जाने में असमर्थ होने के कारण अथवा यों कहिए कि

इस झंझट से बचने के लिए किसान अनाज को गाँव के महाजन के हाथ ही बेच देता है, हालांकि ऐसा करने से उसे अनाज काफी सस्ता देना पड़ता है। गाँव के महाजन के पास इस प्रकार बहुत सा अनाज इकट्ठा हो जाता है। वह उसे रेल के किनारे बसे हुए बाजारों के दूकानदारों के पास पहुँचा देता है। यह दूकानदार या आढ़तिए उस गेहूँ को किसी ऐसी केन्द्रीय मंडी के व्यापारियों के हाथ बेच देते हैं जो गेहूँ के व्यापार के लिए खास तौर पर मशहूर हैं। उदाहरण के लिए कानपुर, मेरठ आदि शहरों में अनाज की बड़ी बड़ी मंडियाँ लगती हैं। इन मंडियों से जगह जगह के दुकानदार गेहूँ मँगा कर अपने अपने स्थानों के ग्राहकों को फुटकर बेचते हैं। इस प्रकार किसान से लेकर गेहूँ का उपयोग करने वालों के बीच कई व्यक्ति रहते हैं और इनमें से हर एक लाभ उठाते हैं।

दलालों से उन आदमियों का बोध होता है जो कि किसान को और फुटकर बेचने वाले को मिलने वाले दामों के फर्क में हिस्सा बटाते हैं। इसका सब से अच्छा उदाहरण किताबों की बिक्री में मिलता है। मान लीजिए हाईस्कूल में चलने वाली अंग्रेजी की पुस्तक की एक Key (Help notes) है। प्रकाशक महोदय ऐसी पुस्तक पर पचास फी सदी तक कमीशन दे देते हैं, जो आदमी इतना कमीशन लेकर किताबें मोल लेता है वह एक तिहाई कमीशन काट कर किसी अन्य दूकान वाले के हाथ इन किताबों को बेंच देता है। दूकानदार महोदय किसी फेरी वाले पुस्तक विक्रेता को पचीस फी सदी कमीशन के साथ बेचने को किताब देता है। यह फेरी वाले महाशय एक आना रुपया कमीशन के साथ किताब किसी विद्यार्थी के सिर मढ़ देते हैं। आमतौर पर विद्यार्थियों को हर एक पुस्तक पर एक आना रुपया कमीशन मिल जाता है। और ऊपर जैसी किताब की बात आई है उस पर तो अब विद्यार्थी छै पैसे दो आना रुपया कमीशन माँगने लगते हैं। अस्तु इस प्रकार प्रकाशक

महोदय को तो आठ आना मिलता है परन्तु विद्यार्थीराम चौदह पन्द्रह आने से हाथ धोते हैं। विदेशों में, जैसे इंगलैंड, फ्रांस, इटली, बेचने वालों के संघ होते हैं जो अपने मेम्बरों का माल सीधे थोक के व्यापारियों के हाथ बेचते हैं।

पदार्थ का भाव ताव करना

बीच में कमीशन या दलाली खाना हमारी निगाह में बुरा है परन्तु कमीशन एजंट इसे अपना लाभ समझता है। बेचने वाले को तो लाभ से मतलब। उसे तो जिस तरह हो अधिक से अधिक लाभ उठाना है। इस प्रकार से लाभ उठाने का एक और ढंग हमारे यहाँ चालू है। दूकानदार या व्यापारी एक रुपए की चीज़ का किसी से अठारह आना वसूल करता है. किसी से सवा रुपया और किसी से डेढ़ रुपया। वे जिसको भोला भाला समझते हैं उससे ज्यादा दाम कसना चाहते हैं। वे तो हमेशा इसी ताक में रहते हैं कि कब कोई आँख का अंधा और गाँठ का पूरा आवे और कब उसे मूड़ें। सर्व सम्मति से इसे ठगी में शुमार किया जाता है। इसी प्रकार दूसरे क़िस्म का माल दिखा कर किसी खराब पड़े हुए माल को चिपका देना भी धोखेबाज़ी की गिनती में आता है। हाँ, यह बात जरूर है कि यदि कोई व्यापारी किसी वस्तु का किसी गरीब से एक दाम लेता है और एक अमीर आदमी से गरीब के मुक़ाबले कहीं अधिक दाम लेता है तो वह धोखेबाजा नहीं। परन्तु इस ठगी के अलावा ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि भारतीय बाज़ार में भाव ताव बहुत होता है। दूकानदार एक रुपया माँगता है और खरीदार आठ आना देना चाहता है। धीरे धीरे पहला भाव को घटाता है दूसरा बढ़ाता है। ऐसा करने से दोनों पक्ष वालों का बहुत सा समय और शक्ति बेकार नष्ट होती है। अस्तु, यह अत्यन्त आवश्यक है कि व्यापारी दामों को निश्चित कर

रक्खें और अधिकतर लोगों से वही कीमत लिया करें। जिन्हें वे गरीब समझें उनके लिए कुछ दाम घटा दें और जब कोई मन चला अमीर दूकान पर आवे तो दाम बढ़ा कर बतावे। विलायत में भाव ताव नहीं होता। सब चीजों के दाम नियत रहते हैं। खरीदार चीज पसन्द करके उस पर पड़े दाम को देकर तुरन्त चल देता है। वहाँ एक ही चीज कई किस्म की होती है। एक किताब बढ़िया जिल्द में भी खरीदी जा सकती है और घटिया कागज पर छपी हुई भी। अमीर पहली किस्म को पसन्द करेगा तो गरीब दूसरी को। इस प्रकार अमीरों से ज्यादा पैसे मिल जाते हैं और गरीबों को वही चीज कम दाम में। भारत में भी ऐसा होना चाहिए।

प्रान्तीय व्यापार और विज्ञापन

भारत के अन्दर होने वाले व्यापार में विज्ञापन का उपयोग आवश्यक होता है परन्तु अभी पूरी तौर पर विज्ञापन से फायदा नहीं उठाया जा रहा है। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि अभी से विज्ञापन-बाज विज्ञापन द्वारा भी धोखा देते हैं। आपने अखबारों में देखा होगा कि अ, ब, स कम्पनी के विज्ञापन में लिखा है कि दो रुपए में छै शीशी ओटो दिलबहार के साथ दो सौ भाँति भाँति की चीज दी जाएँगी जिनमें तीन घड़ियाँ होंगी, एक चोर को डरा देने वाला तमंचा, एक जोड़ी जूता, अंगूठी इत्यादि। यदि आपने कभी ऐसा आर्डर भेजा होगा तो आप जानते होंगे कि घड़ियाँ तो पैसे पैसे वाली और जापानी थीं। पैसे में बच्चों का जो तमञ्चा आता है वह और साथ में पटाखों की एक डिबिया भी है। कागज का छोटा सा जूता, अधेले की एक बाला ताँबे या लोहे का छल्ला आदि भी उस वी० पी० पार्सल में मौजूद हैं। यह हाल है भारतीय विज्ञापन-बाज व्यापारियों का। और सुनिए, यह विज्ञापन-बाजी का ही मजा है कि सुदूर संयुक्तप्रान्त तक की

कम्पनियाँ भी कलकत्ता और बम्बई में बनी हुई वस्तुओं को दोनों शहरों के आस पास बसे गाँवों और नगरों में सफलता पूर्वक बेच लेती हैं।

विदेशों में विज्ञापन का पूरा उपयोग किया जाता है। परन्तु वहाँ विज्ञापन में वस्तु का जो वर्णन किया जाता है माल दरअसल वैसा ही मिलता है। विलायत के व्यापारी जानते हैं कि अगर हम धोखा देंगे तो जिस प्रकार काठ की हाँडी दूसरी बार आग पर नहीं चढ़ती उसी प्रकार ग्राहक उनका माल दूसरी बार नहीं खरीदेगा।

इंगलैंड जैसे देश के व्यापार के रास्ते में दलाल, भाव-ताव, विज्ञापन या खरीदारों की गरीबी रोड़ा बन कर नहीं अटकती। वहाँ की दिक्कतें हैं व्यापारियों का गुट्ट बना कर ऊँचे ऊँचे दाम में वस्तुएँ बेचने का लालच और विदेशों से आने वाले माल द्वारा लागडाँट। जब व्यापारी ऊँचे दामों में चीज बेचने में असमर्थ होते हैं तो वे कच्चे माल का दाम भी कम देना चाहते हैं और भाव गिरने लगते हैं। नतीजा यह होता है कि व्यापार कम हो जाता है। विदेशों से आने वाली चीजों की बिक्री को रोकने के लिये तरह तरह के कानून बनाए जाते हैं। लेकिन इस सम्बन्ध में हम अगले अध्याय में विचार करेंगे।

हम यह भूल गए हैं कि अन्त में सत्य की विजय होती है। कम तौलना, डंडी मारना अधिक दाम लेना इत्यादि बातें तो हमारे व्यापारियों की नस नस में भर गयी हैं। और इसको तथा अन्य बुराइयों को फौरन देश से निकाल कर बाहर फेंक देना चाहिए। परन्तु देश में उद्योग-धंधों की कमी के कारण भी हमारे देश का व्यापार कम है। देश के उद्योग-धंधों की वृद्धि के रास्ते में हमारा विदेशी व्यापार काफी रोड़े अटकाता है। अगर

किसी प्रकार उसे सुधारा जा सके और सरकार की मदद मिले तो हमारा देश के अंदर का व्यापार चमक उठे। अत: अगले अध्याय में हम तुम्हें भारत के विदेशी व्यापार का कुछ हाल बताएँगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में विदेशी व्यापार के अपेक्षाकृत प्रान्तीय व्यापार का क्या महत्व है; उसकी उन्नति के लिए आप कौन से उपाय करेंगे?

२—उदाहरण पूर्वक सिद्ध कीजिए कि भारत के देशी व्यापार का क्षेत्र बहुत विस्तृत है।

३—क्या कारण है कि व्यापार का क्षेत्र विस्तृत होते हुए भी हमारा देशी व्यापार गिरी हुई हालत में है?

४—रहन सहन के दर्जे और व्यापार का क्या सम्बन्ध है? क्या भारतीय रहन सहन का दर्जा ऊँचा करने से भारतीय देशी व्यापार की हालत सुधर जाएगी?

५—भारत का प्रान्तीय व्यापार किन लोगों के हाथ में है? उन्होंने व्यापार की दशा किस प्रकार और कितनी बिगाड़ रक्खी है?

६—तौल, माप व सिक्कों की भिन्नता का अंतरप्रान्तीय व्यापार पर क्या असर पड़ता है? भारत का उदाहरण लेकर विस्तारपूर्वक समझाइए।

७—"दलाल व्यापार के अभिन्न अंग हैं परन्तु अनुचित रूप से वे अनर्थ भी कर सकते हैं" इस कथन के आधार पर भारतीय दलालों के गुण-दोष पर विचार कीजिए?

८—"देशी व्यापार में विज्ञापन से कम लाभ उठाया जाता है। जो लाभ उठाया भी जाता है वह अधिकतर अनुचित होता है"। इस कथन की विवेचना कीजिए।

तेरहवाँ अध्याय

भारत का विदेशी व्यापार

पिछले अध्याय में तुमको भारत के अंदर होने वाले व्यापार का हाल बताया था। परन्तु किसी देश के व्यापार में देश के अंदर का ही व्यापार नहीं शामिल होता। उस देश और विदेशों के बीच जो व्यापार होता है वह भी देश के व्यापार में गिना जाएगा। अगर विदेशी व्यापार देश के अंदर होने वाले व्यापार से अधिक हुआ तब तो विदेशी व्यापार का विशेष महत्व हो जाता है। जैसे इंग्लैंड में देशी व्यापार की अपेक्षा विदेशी व्यापार कहीं अधिक है। परन्तु भारत इतना बड़ा देश है और यहाँ की जनसंख्या इतनी अधिक है तब भी यहाँ का विदेशी व्यापार बहुत कम है।

भारत और इंग्लैंड का विदेशी व्यापार

इंग्लैंड की आबादी हमारे देश की आबादी का छठवाँ हिस्सा भी नहीं है परन्तु वहाँ का विदेशी व्यापार भारत के विदेशी व्यापार से अधिक है। क्या तुम इसका कारण बता सकते हो इंग्लैंड आजाद मुल्क है। वहाँ के निवासी अमीर हैं। वे पढ़े लिखे हैं। उनके यहाँ खेती नहीं बल्कि उद्योग-धंधों की भरमार है और ये उद्योग-धंधे बड़ी मात्रा के उद्योग-धंधे हैं। परन्तु भारत एक परतन्त्र गरीब देश है। जहाँ लोगों को एक समय भी भरपेट भोजन नहीं मिलता। वहाँ वाले कैसे काम कर सकते हैं। उनकी आमदनी कैसे बढ़ सकती है। हमारे देश में सौ में सत्तर आदमी तो खेती ही करते हैं और सौ में बीस आदमी

किसी न किसी रूप में खेती की रकम से पलते हैं जैसे गाँव के महाजन, बनिए, लोहार और कुम्हार की आमदनी किसानों से मिलने वाले पैसे और वस्तुओं से ही होती है। इस प्रकार नब्बे प्रतिशत व्यक्ति खेती पर निर्भर हैं। खेत की वस्तुएं सस्ती बिकती हैं। अगर इस देश में उद्योग धन्धों की उन्नति हो जाए तो देश के विदेशी व्यापार की शकल बदल जाए।

इङ्गलैंड के विदेशी व्यापार की उन्नति के दो और कारण हैं। एक तो यह कि बहुत सा माल वहाँ से होकर दूसरे देशों को चला जाता है। जैसे यहाँ से माल पहले इङ्गलैंड जाए फिर वहाँ से योरोप। ऐसे व्यापार में इङ्गलैंड वालों को कमीशन के रूप में कुछ पैसे मिल जाते हैं। दूसरे ब्रिटिश साम्राज्य में इङ्गलैंड की चीजें अधिक खरीदी जाती हैं। सब से बड़ी बात तो यह है कि हिन्दुस्तान में इङ्गलैंड की बहुत सी चीजें जबरदस्ती बिकती हैं। अगर इङ्गलैंड के हाथ से भारत निकल जाए तो इङ्गलैंड के विदेशी व्यापार को काफी धक्का पहुंचे और भारत के उद्योग-धन्धों और देशी व्यापार की उन्नति हो। भारत में स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार के कारण इङ्गलैंड के विदेशी व्यापार--खास कर कपड़े के व्यापार को काफी धक्का पहुँचा है।

इङ्गलैंड के विदेशी व्यापार के रोड़े

भारत की भाँति इङ्गलैंड के विदेशी व्यापार के रास्ते में वहाँ के सरकार की नीति देश के अंदर उद्योग धन्धों की कमी या व्यापार के साधनों का अभाव नहीं है। परन्तु दूसरे मुल्कों से कच्चे माल का न मिलना और जापान, जर्मनी, अमरीका आदि देशों के व्यापारियों की लाग-डाट या हिन्दुस्तान, आस्ट्रेलिया, कैनेडा आदि में उद्योग-धन्धों की उन्नति के कारण इङ्गलैंड के तैयार माल की बिक्री कम हो जाना—यही इङ्गलैंड के विदेशी व्यापार में अड़चनें हैं।

भारत का निर्यात व्यापार

परन्तु इंग्लैंड की तरह भारत को कच्चे माल के कम पड़ जाने का डर नहीं है। हमको जिस कच्चे माल की जरूरत पड़े वह इस लम्बे चौड़े मुल्क में, जहाँ कड़ी से कड़ी सरदी और खूब गरम प्रदेश मौजूद हैं, मिल सकती है। अगर न मिले तो उसको शीघ्र ही पैदा किया जा सकता है। और यहाँ से विदेशों को जो सामान जाता है उनमें भी कमी नहीं हो सकता, क्योंकि दूसरे देश हमसे ज्यादातर कच्चा माल और भोजन का सामान खरीदते हैं।

जूट

मूल्य के हिसाब से हिन्दुस्तान से बाहर जाने वाली चीजों में जूट का सबसे अधिक महत्व है। कच्चा जूट इतना बाहर नहीं जाता जितना जूट के बने टाट और बोरे। जूट का सबसे बड़ा खरीदार अमरीका है। उसके बाद बर्मा और इंग्लैंड का नम्बर आता है। कच्चे जूट की खरीद इंग्लैंड, जर्मनी और फ्रांस द्वारा सबसे ज्यादा होती थी। जूट हिन्दुस्तान में ही पैदा होता है और बंगाल में जूट की मिलों की भरमार है। इधर कुछ वर्षों से विदेशों में कपड़े के थैलों का प्रचार हो चला है और अभी हाल में अमरीका में मालवक्लोका नामक पदार्थ ढूँढ़ निकाला गया है जिसके बने थैले जूट के बोरों से कम पानी सोखते हैं। इसलिए जूट और जूट से बनी वस्तुओं की विदेशी माँग घट रही है। तब भी अभी तो लगभग पचास करोड़ रुपए का जूट बाहर जाता है।

रुई

जूट के बाद दूसरा नम्बर कपास या रुई का आता है। करीब सौ साल पहले हिन्दुस्तान से करोड़ों रुपए का रुई का कपड़ा

विदेशों को जाता था। ढाका का मलमल, छपे हुए कपड़े वगैरह की तारीफ करते ही बनता था। परन्तु अंग्रेज़ी व्यापारियों के कारण हमारा सारा रुई का धन्धा चौपट हो गया। धीरे-धीरे रुई के कपड़ों की जगह कच्ची रुई इंगलैंड जाने लगी। अब भी इस लड़ाई से पहले करीब तीस करोड़ रुपए की रुई और रुई का सामान बाहर जाता था। कच्ची रुई के खरीदारों में जापान सबसे मुख्य है। वह हमारा आधी रुई ले लेता है, उसके बाद इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस, इटली आदि देशों का नम्बर आता है। तौल के हिसाब से रुई के धागे जापान, चीन, निकट पूर्व के देश (अफगानिस्तान, फारस, ईराक) और अफ्रीका को जाता है। आस पास के देशों में हमारा कपड़ा भी जाने लगा है। इनमें लंका, अदन, मिस्र, फारस, ईराक, पूर्वी अफ्रीका, बर्मा, मलाया प्रायद्वीप और पूर्वी द्वीप समूह के नाम गिनाए जा सकते हैं। करीब पाँच करोड़ रुपये के रुई के कपड़ों में से तीन करोड़ का तो बर्मा और मलाया प्रायद्वीप को ही जाता है। कपड़ा खरीदने वाले देशों की माँग का एक बड़ा अंश वहाँ रहने वाले भारतीयों के कारण होती है जो स्वदेश का बना कपड़ा पसन्द करते हैं। हिन्दुस्तान में पैदा होने वाली रुई का पचपन प्रतिशत से अधिक भाग विदेशों को चला जाता था। लड़ाई के कारण रुई के विदेशी व्यापार को भारी धक्का पहुँचा है। लड़ाई के कारण फौज के लिए काफी कपड़ा बनाना पड़ता है। फिर भी यही हाल रहा तो रुई की खेती में कमी करनी पड़ेगी।

चाय

हिन्दुस्तान से बाहर जाने वाले पदार्थों में चाय का तीसरा स्थान है। हमारे यहाँ चाय खूब पैदा होती है। परन्तु हिन्दुस्तान गरम मुल्क है और यहाँ लोगों को चाय पीने की आदत भी कम

है। इसलिये यहाँ पैदा होने वाली बहुत सी चाय बच रहती है। अगर बची हुई चाय बाहर न जाए तो चाय के व्यापार को बड़ा धक्का पहुँचे। परन्तु विदेश की माँग को देखकर ही भारत के ठंढे प्रदेशों में चाय की पैदावार आरम्भ की गई थी। भारत की चाय का तीन चौथाई से अधिक हिस्सा विदेशों को भेजा जाता है। अस्तु बाहर जाने वाली पैंतीस करोड़ पौंड चाय में से करीब इकतीस करोड़ पौंड चाय ग्रेट ब्रिटेन को ही जाती है। चाय के अन्य ग्राहकों में आस्ट्रेलिया, कनाडा, अमरीका, निकट पूर्व के देश, अफ्रीका, बर्मा और योरप आदि का नाम लिया जा सकता है। लड़ाई छिड़ी होने पर भी चाय के विदेशी व्यापार पर कोई विशेष असर नहीं पड़ा है। मूल्य के हिसाब से तो पिछले तीन साल में यह व्यापार बाइस करोड़ से बढ़कर उन्तालीस करोड़ रुपए तक पहुँच गया।

तेलहन

चाय के बाद तेलहन का नम्बर है। भारत में तेलहन बहुत होता है। इनमें मूँगफली, अलसी, सरसों, अण्डी और तिल का प्रमुख स्थान है। इनका विदेशी व्यापार करीब उन्नीस करोड़ रुपए के बराबर होता है। लगभग ग्यारह करोड़ की तो मूँगफली बाहर जाती थी परन्तु अब मूँगफली का पाँचवाँ हिस्सा ही बाहर जाता है। हाँ, हिन्दुस्तान में पैदा होने वाली अलसी का आधा हिस्सा जरूर विदेशों में चला जाता है। अण्डी की भी चालीस प्रतिशत उपज हिन्दुस्तान के बाहर जाती है।

तेलहन के सबसे बड़े ग्राहक इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, हालैंड, बेलजियम और इटली हैं। थोड़ा सा तेलहन कैनेडा, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका व सुदूरपूर्व के देशों को भी जाता है। बाहर जाने वाले तिलहन का आधा भाग तो योरप ही जाता था और द्वितीय

महायुद्ध के कारण तिलहन के विदेशी व्यापार को धक्का पहुँचा है लेकिन यह अच्छा ही है। अगर हिन्दुस्तान के अंदर ही तेलहन पदार्थों को पेर कर तेल निकाल लिया जाय तो यह तेल विदेशों में ज्यादे भाव पर बिके और जहाज का किराया भी कम हो जाए। इसके अलावा तेल निकालने के बाद जो खली बच जाएगी वह खेतों में खाद देने या गाय बैलों को खिलाने के काम आ सकती है।

चमड़ा

भारत में साढ़े बाईस करोड़ तो गाय, बैल और भैंस ही हैं। परन्तु इनकी देख भाल उचित ढंग से नहीं की जाती। नतीजा यह होता है कि ये कमजोर होते हैं, दूध कम देते हैं और काफी संख्या में मरते हैं। हर साल कई हजार जानवर मांस के लिए मारे जाते हैं। अपने आप मरने वाले और मारे जाने वाले जानवरों का चमड़ा हिन्दुस्तानी चमड़े की कम्पनियों में तो काम आता ही है। वह बाहर भी भेजा जाता है। दो तीन करोड़ रुपए की गाय और भैंस का चमड़ा विदेशी के हाथ बेचा जाता है। इसके अलावा दूसरे देशों से यहाँ के बकरियों के चमड़े की माँग आती है। दस करोड़ के चमड़े के विदेशी व्यापार में आधा दाम तो बकरी के चमड़े के कारण ही आता है। सबसे अधिक चमड़ा इंग्लैंड जाता है। उसके बाद अमरीका और जर्मनी का नम्बर आता है।

भारत से बाहर जाने वाले माल में आधे से अधिक पैसे तो जूट, रुई, चाय, तेलहन और चमड़ों से ही वसूल होते हैं। इनके अतिरिक्त लाख और अबरख अधिकतर हिन्दोस्तान से ही सब जगह भेजे जाते हैं। लाख के मुख्य ग्राहक अमेरिका, इग्लैंड, जर्मनी और फ्रांस रहे हैं। परन्तु अब वैज्ञानिकों ने नकली लाख तैयार कर लिया है अतः भारत के लाख के

व्यापार के कायम रखने के लिए विदेशों में आंदोलन होना आवश्यक है।

हमारे यहाँ से दूसरे देशों में कुछ अनाज भी जाता है, जिसमें चावल, दाल, गेहूँ, ज्वार और बाजरा उल्लेखनीय हैं। चावल का कुल मूल्य करीब तीन करोड़ रुपए होता है और दूसरे अनाजों का मूल्य दो करोड़। यद्यपि देश की अनाज की उत्पत्ति के देखते हुए विदेशों को जाने वाले अनाज की मात्रा बहुत थोड़ी है परन्तु देश में फैली हुई अन्न की कमी को देखते हुए अनाज का निर्यात बिल्कुल बंद कर देना चाहिए। द्वितीय महायुद्ध में अनाज की कमी के कारण सरकार ने ऐसा ही किया है। केवल फौजों के लिए थोड़ा सा अनाज बाहर जाता है।

विदेशों को जाने वाली अन्य वस्तुओं में ऊन, कहवा, तम्बाकू, लकड़ी, मैंगनीज, टिन तथा पड़ोस के देशों को जाने वाले हर प्रकार के तैयार माल गिनाए जा सकते हैं।

पहले हिन्दुस्तान से करीब ढाई अरब रुपए का सामान विदेशों को जाता था। सन् १६३६-४० में कई देशों के शत्रु बन जाने के कारण विदेशी व्यापार दो अरब का ही रह गया। उसके बाद जापान आदि अन्य देशों से व्यापार बंद हो जाने पर भी सन् १९४१-४२ में विदेशी व्यापार करीब ढाई अरब का था। चीजों के दाम बढ़ जाने के कारण ही यह वृद्धि हुई है।

भारत का आयात व्यापार

भारत का आयात व्यापार निर्यात व्यापार से कम ही रहता है। यह कमी अधिकतर सोने के आयात द्वारा पूरी होती है। इसी कारण भारत सोने का खजाना कहा जाता है। अस्तु, बाहर से आने वाले सामान में तीन चौथाई तो तैयार माल होता है।

आयात में सब से प्रमुख स्थान रुई और रुई के कपड़ों का है।

मूल्य के हिसाब से लड़ाई से पहले हमारे यहाँ लगभग बाईस करोड़ रुपए का सूती कपड़ा व कुछ कच्ची रुई आती थी। अब तो जहाजों के न मिलने व कुछ देशों के शत्रु बन जाने के कारण वहाँ से माल नहीं आता। हमारे यहाँ रुई होती तो काफी है परन्तु उसके रेशे लम्बे नहीं होते। लम्बे रेशे की रुई अफ्रीका, मिस्र और अमरीका से आती है। पहले तो केवल आठ करोड़ रुपए की कच्ची रुई बाहर से आती थी। पिछले साल पन्द्रह करोड़ रुपए से अधिक की रुई बाहर से आई। रुई के अलावा सूत भी बाहर से आता है। हमारे जुलाहे इस सूत से कपड़ा बुनते थे। परन्तु जापान के शत्रु देश बन जाने और जहाज की कमी के कारण इंग्लैंड से आने वाले सूत में कमी हो जाने से हमारे जुलाहों का कारबार मारा गया है। विदेशों से आने वाले सूती कपड़े के व्यापार में जापान और लंकाशायर में खूब होड़ होती है। हालांकि जापानी माल पर ऊँची दर से चुंगी ली जाती है तब भी जापान का कपड़ा सस्ता रहा है।

सूती माल के अलावा नकली और असली रेशम, रेशम का धागा और उसके कपड़े भी हमारे यहाँ आते हैं। इस लड़ाई से पहले ऐसी वस्तुएँ अधिकतर जापान, इटली, चीन और फ्रांस से आती थीं। अब तो रेशमी माल का आयात बहुत घट गया है। पहले चार पाँच करोड़ रुपए का माल आता था। अब वस्तुओं के दाम बढ़ जाने पर एक करोड़ रुपए का रेशमी सामान देश में आता है।

हम ऊनी धागा और कपड़े भी मँगाते हैं। यह अधिकतर ग्रेट ब्रिटेन से आता है। शांति के समय में करीब ढाई करोड़ रुपए का ऊनी माल बाहर से आता है।

इस प्रकार होने वाले कपड़ों का व्यापार कुल आयात का एक

चौथाई होता है। इस लड़ाई के होते हुए भी सन् १९४२ में वह कुल आयात का पाँचवाँ हिस्सा था।

धातु का सामान

सूती और ऊनी माल के बाद लोहे और फौलाद की बनी वस्तुओं का स्थान है। भारत में चार बड़े कारखाने हैं जहाँ लोहे और फौलाद के सामान बनते हैं। इस लड़ाई के कारण इन कारखानों ने कई गुनी उन्नति की है। परन्तु तब भी बहुत सा लोहा, फौलाद, जस्ता चढ़ी हुई चद्दरें, रेल की पटरी, छड़ें, गार्डर, पेच, कील, तथा रुई, जूट, चीनी आदि की कारखानों में काम आने वाली बड़ी बड़ी मशीनें, साइकिल, मोटर, इंजन आदि वस्तुएँ हम बाहर से मंगाते हैं। लड़ाई के कारण मशीनें नहीं आ रही हैं वरना देश के उद्योग-धंधों की बड़ी तेजी से उन्नति हो। पहले तो इंगलैंड, अमरीका, फ्रांस, बेलजियम, जर्मनी आदि देशों से यह माल आता था परन्तु अब तो प्रथम दो देशों से ही सामान मिल सकता है।

अब भी करीब बीस करोड़ का माल भारत खरीदता है। इसके अतिरिक्त अन्य धातुओं की मशीनों और बिजली के सामान में भी करीब बीस करोड़ रुपए विदेशों को जाता है।

तेल, कागज और रबड़

मिट्टी का तेल और उससे बने पदार्थ तथा बनस्पति का तेल भी काफी मात्रा में हमारे देश में आता है। मिट्टी का तेल और पेट्रोल अधिकतर बर्मा से आता था। जैसा कि तुम जान चुके हो हमारे देश में यह वस्तु बहुत कम मिलती है। इसी कारण लड़ाई के दिनों में तेल नाप नाप कर लोगों को मिलता है। अस्तु, कुल तेल का मूल्य लगभग इक्कीस करोड़ रुपए हो जाता है।

तेल के बाद कागज और रबर का स्थान है। कागज व कागज बनाने की लुगदी में भारत को पाँच करोड़ रुपए व्यय करने पड़ते हैं। यद्यपि भारत में रबर के बाग लग गए हैं तथापि सन १९४१-४२ में बाहर से आए रबर और रबर पदार्थों का मूल्य सवा दो करोड़ रुपए से कम नहीं था।

अन्य आयात पदार्थ

भारत का कुल आयात व्यापार लगभग पौने दो अरब रुपए का रहता है। इसमें से करीब दो तिहाई ऊपर बताई वस्तुओं में ही होता है। अन्य वस्तुओं में खाद्य पदार्थ विशेषतः चावल, गरम मसाले, तम्बाकू और फल व तरकारी, दवाइयाँ, रंग, लकड़ी, और रसायनिक पदार्थ मुख्य हैं। तुमको बताया जा चुका है कि चावल बाहर भी भेजा जाता है। तुम पूछ सकते हो कि चावल भेज कर फिर बाहर से मँगाने में क्या लाभ। बात यह है कि यहाँ से महीन चावल विदेशों को जाता है और बर्मा से मोटा चावल खरीदा जाता था। इस लड़ाई के कारण बर्मा से चावल आना बंद हो गया और इस कारण गरीबों को सस्ता चावल मिलना कठिन हो गया है। यदि हम चाहें तो अपनी जरूरत भर चावल अपने देश में ही पैदा कर लें। फल और तरकारियाँ भी इसी देश में उत्पन्न की जा सकती हैं और इस तरह विदेशों को जाने वाला एक करोड़ रुपया देश में ही रह जाए।

भारत की जलवायु तथा वनस्पति को देखते हुए यहाँ प्रत्येक प्रकार की दवाई व रसायनिक पदार्थ तैयार करने के लिए पौधे और जड़ी-बूटियाँ मिल सकती हैं। अब तो दवाइयाँ और रसायनिक पदार्थ कुछ भारतीय कम्पनियों में बनने लगी हैं। यदि सरकार इस ओर ध्यान दे तो पौने नौ करोड़ रुपये भारतीयों के हाथ में ही रहें। यदि लड़ाई के पहले सरकार दवाइयों और

रसायनिक पदार्थों के उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देती तो इस लड़ाई में इन वस्तुओं के सम्बन्ध में जो दिक्कतें झेलनी पड़ीं और जनता को जो कई गुने दाम चुकाने पड़े वह सब बच जाते।

भारत में रंग भी बनाया जा सकता है। परन्तु सरकार ने रंग बनाने की ओर भी ध्यान नहीं दिया और इसी कारण हमको दूसरे देशों से सात करोड़ रुपए का रंग खरीदना पड़ता है।

लकड़ी भी हर एक किस्म की भारत में मिलती है। यदि प्रान्तीय सरकार के जंगल विभाग तथा देहरादून का फारेस्ट इंस्टीट्यूट अधिक ध्यान दें तो विभिन्न प्रकार की लकड़ियाँ हिमालय के जंगलों से काट कर बाजार में ला सकते हैं।

भारतीय आयात का तीन चौथाई भाग ग्रेट ब्रिटेन, जापान, अमरीका और जर्मनी से आता था। ग्रेट ब्रिटेन से करीब २।५ वाँ हिस्सा, जापान से पाँचवाँ हिस्सा, जर्मनी से दसवाँ हिस्सा और अमरीका से सोलहवाँ। स्पष्ट है ग्रेट ब्रिटेन को सब से अधिक माल जाता भी है और आता भी। कच्चे माल में रुई, जूट, तेलहन और लाख जाते हैं और सूती व ऊनी कपड़े, मशीनें, दवाइयाँ और रंग आते हैं।

अस्तु, भारत के विदेशी व्यापार की उन्नति के लिए उन बाधाओं को दूर करना तो जरूरी है ही जिनका हाल पहले बताया जा चुका है। यह भी आवश्यक है कि भारतीय बन्दरगाहों की हालत सुधारी जाए और अधिक से अधिक अच्छे बन्दरगाह बनाए जाएँ। जैसे देशी व्यापार में शहरों का प्रमुख भाग रहता है वैसे ही विदेशी व्यापार में बन्दरगाहों का।

अतः शहरों और बन्दरगाहों पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत के विदेशी व्यापार की मुख्य मुख्य बातें संक्षेप में बताइए।

२—भारत से बाहर जाने वाली वस्तुओं में कौन कौन मुख्य हैं? वह कहाँ पैदा होती हैं और कहाँ भेजी जाती हैं?

३—निम्नलिखित वस्तुओं के विदेशी व्यापार के संबंध में संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखिए—

रुई, तेलहन, चाय, अबरख, लाख।

४—मशीन, रेशम और कागज के आयात में कितना व्यय होता है? इनके भविष्य के संबन्ध में तुम्हारे क्या विचार हैं?

५—"भारत और इंगलैंड के विदेशी व्यापार एक साथ नहीं बढ़ सकते" - इस कथन की आलोचना कीजिए।

६—इंगलैंड और भारत के विदेशी व्यापार के मार्ग में कौन से रोड़े हैं? समझा कर लिखिए।

७—कच्चे माल और तैयार माल के सम्बन्ध में भारत और इंगलैंड कहाँ तक एक दूसरे पर निर्भर हैं?

८—क्या रुई, तेलहन, लाख, खाद्य-पदार्थ के निर्यात में वृद्धि वांछनीय है? इसका सकारण उत्तर दीजिए।

चौदहवाँ अध्याय

भारतीय शहर और बन्दरगाह

शहरों की उत्पत्ति

पिछले दो अध्यायों में तुम्हें प्रान्त के अंदर होने वाले, प्रान्तों के बीच होने वाले तथा विदेशी व्यापार का हाल बताया था। इस व्यापार की वजह से जगह जगह शहर स्थापित हो गए हैं। व्यापार के अलावा शहरों की उन्नति के और भी बहुत से कारण हैं। पुराने जमाने में आज कल की तरह शहर या नगर नहीं होते थे। ज्यादातर जहाँ पर राजा की राजधानी होती थी वहाँ तो किले की चहारदीवार के अंदर एक प्रकार का शहर बसा रहता था। इसके अलावा तो अधिकतर गाँव होते थे। व्यापार आदि का केन्द्र राजधानियाँ होती थीं। इन केन्द्रों के अलावा तीर्थ स्थान होते थे। इन तीर्थ स्थानों में हर समय यात्री आते जाते रहते थे। यात्रियों के कारण तीर्थ स्थान भी घने बसे हुए थे और उनकी गणना शहरों में की जा सकती थी। पुराने जमाने के इन शहरों में पाटलि पुत्र (पटना) चन्द्रगुप्त की राजधानी थी, दिल्ली में पृथ्वीराज चौहान राज्य करता था और कन्नौज में राजा जयचंद। काशी (बनारस) प्रयाग (इलाहाबाद) अयोध्या आदि तीर्थ स्थानों की गिनती उस समय भी शहर में की जाती थी।

धीरे धीरे मुसलमानों की चढ़ाइयाँ शुरू हुई। जैसे जैसे वे लोग यहाँ बसते गए और हिन्दोस्तान में मुसलमानी राज्य

आरम्भ हुआ, तो जगह जगह बहुत से किले बनाए गए। जहाँ तहाँ इन किलों के बनने से उसके आस पास आदमी बस जाते और कुछ समय में एक खासा शहर तैयार हो जाता। मुगल राज्य के समय नवाबों को जागीरें मिली थीं, वे जहाँ रहते थे वे जगहें बस गईं और धीरे धीरे नगरों में पलट गईं। मुसलमान व मुगल बादशाहों और नवाबों के ज़माने में तैयार होने वाले नगरों में जौनपुर, आगरा, अलीगढ़, शाहजहाँपुर, रामपुर, लाहौर, फीरोजपुर, नसीराबाद, मुजफ्फरपुर, दौलताबाद या औरंगाबाद का नाम लिया जा सकता है।

जिस समय भारत में मुगल साम्राज्य की नींव पड़ी उसी समय के लगभग यूरपवालों ने समुद्र द्वारा भारत में व्यापार करना आरम्भ किया। पहले पहल पोर्तगाल, हालैण्ड, फ्रांस आदि देशों के निवासी यहाँ आकर व्यापार करने लगे। व्यापार करते करते इन्होंने राजाओं को खुश करके बन्दरगाहों पर कोठियाँ बनाने के लिये जगहें ले लीं। इन कोठियों ने बढ़ते बढ़ते किले का भेष धारण कर लिया। बाद में ये व्यापारी यहाँ के राजनैतिक मामले में भी दखल देने लगे। जब दो नवाबों या राजाओं में लड़ाई होती तो कोई किसी की सिपाहियों से मदद कर देता। यदि इस प्रकार मदद पाने वाला राजा जीत जाता तो वह इनाम में बहुत सी ज़मीन देता या कहीं किला बनाने की आज्ञा और धन देता। इस प्रकार पांडुचेरी, चंद्रनगर, गोवा, डमन, ड्यू आदि जगहों में किले बनाए गए और यह स्थान बस चले। अँगरेज़ों के व्यापार क्षेत्र में उतरने के साथ यह हालत और बढ़ गई। अंगरेज़ों ने कलकत्ता, बम्बई और मदरास में अपने किले खड़े किए। बन्दरगाह होने की वजह से इन विदेशियों का माल इन्हीं बन्दरगाहों पर उतरता था। इसके बाद प्राकृतिक स्थिति के मुताबिक इन नए बसे बन्दरगाहों और नगरों की वृद्धि हुई। जब अँगरेज़ों का अधिकार यहाँ पर

जम गया और वे यहाँ पर राज्य करने लगे तो अपने बचाव के लिए उन्होंने नई नई जगहों में फौज रखना शुरू किया। इस प्रकार क्वेटा, रावलपिंडी, मेरठ आदि शहरों की उत्पत्ति हुई। परन्तु कहाँ ठंढे मुल्क के बाशिन्दे अंगरेज और कहाँ भारत सा गरम देश। यहाँ की गरमी से डर कर शिमला, नैनीताल, मंसूरी, अलमोड़ा आदि पहाड़ी नगर बसाए गए।

शहरों की उन्नति व वृद्धि

अब तक हमने तुमको शहरों की उत्पत्ति के बारे में बताया परन्तु यदि तुमसे कोई पूछे कि शहरों की वृद्धि किन कारणों से होती है अथवा फलाँ शहर किस प्रकार इतना बढ़ गया तो शायद तुम ठीक ठीक जवाब न दे सकोगे। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि तुम्हें इसके बारे में भी कुछ हाल बताया जाय।

नगरों की वृद्धि के अनेक कारण हो सकते हैं जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं। सरकारी इन्तजाम का केन्द्र होने के कारण बहुत से नगर बस जाते हैं। यह तो तुम जानते ही हो कि पहले कलकत्ता, मद्रास और बम्बई से अँगरेज सरकार का इन्तजाम होता था। बहुत दिनों तक यही हाल चलता रहा। कलकत्ता तो सन् १९१२ तक अँगरेजी राज्य की राजधानी थी। १९१२ में यह राजधानी हटा कर दिल्ली पहुँचा दी गई। राज्य की रक्षा करने के लिए यह निहायत आवश्यक होता है कि कुछ खतरनाक स्थानों पर फौज रक्खी जाय। भारत में अफगानिस्तान की ओर हमला का बड़ा डर रहता है। तथा उधर रहने वाले अफगान और अफरीदी खतरनाक होते हैं। इसलिए सरकार को रावलपिंडी, क्वेटा, पेशावर आदि शहरों में अधिक तादाद में फौज रखनी पड़ती है। फिर फौज को खाना कपड़ा देने के लिए इन स्थानों में व्यापारी आकर बस जाते हैं। इस प्रकार ये शहर बढ़ गए।

किसी जगह पर तीर्थ स्थान का होना भी बड़ा महत्व रखता है। अक्सर क्या होता है कि धार्मिक पुरुष तीर्थस्थानों में ही अपनी शेष जिन्दगी बिताना चाहते हैं, जिससे कि वे रोज वहाँ पर स्थापित देवता के दर्शन करते रहें और मरने पर वैकुंठ जायँ। लोगों में यह बात प्रचलित है कि काशी में मरने वाले को नरक नहीं मिलता। प्रयागराज में जिसकी मृत्यु होती है उसे गंगा जी मिलती हैं इसलिए वह तर जाता है। हिन्दुओं का विश्वास है कि जो अपने पितरों के लिये गया जाकर श्राद्ध कर आते हैं उसके पित्तर भूत नहीं बनते। तीर्थस्थान न होते हुए भी नदी के किनारे बसे रहने के कारण छपरा, मुंगेर, हैदराबाद (सिंध प्रान्त) आदि व्यापार के केन्द्र बने हुए हैं। जहाँ पर दो नदियों का संगम होता है वहाँ पर भी शहरों के बसने की सम्भावना अधिक रहती है। इलाहाबाद गंगा जमुना के संगम पर बसा है। इसी प्रकार पटना गंगा, घाघरा, गंडक और सोन नदियों के संगम के पास बसा हुआ है। नदियों के संगम पर होने के कारण ये स्थान व्यापार के लिए बड़े उपयुक्त होते हैं क्योंकि नदी द्वारा माल आ जा सकता है।

आस पास के स्थानों के कच्चा माल आने की सुविधा अथवा पुराने सिद्धहस्त कारीगरों की बस्ती के कारण भी बहुत से शहर बस जाते हैं और बाद में वहीं रेलों का जंक्शन या अन्य कारण से अन्य वस्तुओं की उत्पत्ति आरम्भ हो जाती है और शहर तरक्की कर जाते हैं। कानपुर ने ऐसे ही उन्नति की। बिहार में जमशेदपुर ऐसा ही शहर है और भागलपुर रेशमी कपड़ों के जुलाहों का केन्द्र है।

पटना, बनारस, आगरा वगैरह शहर एक तरह व्यापार के केन्द्र हैं। परन्तु कहीं कहीं व्यापार के मार्ग पर होने के कारण शहर बस जाता है। उदाहरण के लिए पेशावर, काबुल और भारत के

बीच होने वाले व्यापार के मार्ग पर है। इसी प्रकार मुलतान में कान्धार से ऊँट की पीठ पर फल और मसाले आते हैं इसके अलावा चारों ओर के ज़िलों से रुई, ऊन, गेहूँ आदि वस्तुएँ भी पहले वहीं आती हैं। इसी प्रकार दार्जिलिंग से होकर ऊन के व्यापारी आते हैं। और काश्मीर के लेह (Leh) नामक स्थान से काराकोरम पहाड़ के दर्रों से होकर एक व्यापार मार्ग है। लेह व दार्जिलिंग आदि शहरों की उन्नति केवल इसीलिए नहीं हुई। सब से बड़ी बात तो यह है कि यहाँ से भारत से बाहर जाने के दर्रों का रास्ता जाता है।

कई एक पहाड़ी स्थानों में खासे शहर बस गये हैं। इसका कारण यह है कि गर्मी के दिनों लोग यहाँ ठंडक में दिन बिताने के लिए मैदानों से चले आते हैं। बहुत से पहाड़ी स्टेशनों पर गर्मियों में सरकारी दफ्तर पहुँच जाते हैं। ऊपर जिस दार्जिलिंग का जिक्र आया है वह गर्मी में बंगाल सरकार की राजधानी बनती थी। इसी प्रकार जब इलाहाबाद व लखनऊ में रहने वाले गर्मी में सड़ा करते थे, संयुक्तप्रान्त का सरकारी दफ्तर नैनीताल पहुँच जाता। मध्यप्रान्त की सरकार अपना काम पञ्चमढ़ी से करती थी और मद्रास सरकार ओटकमन्ड पहुँच जाती। प्रान्तीय सरकारों के ऊपर दिल्ली में एक केन्द्रीय सरकार है। गर्मी पड़ने पर इसका काम शिमला में होता है। मंसूरी, अल्मोड़ा, महाबलेश्वर आदि अन्य पहाड़ी स्थानों पर लोग गर्मी में हवा खाने जाया करते हैं। लोग काश्मीर की सुन्दर घाटी श्रीनगर भी जाते हैं।

कोई कोई जगह समुद्र से बहुत पास है। अतएव वहाँ पर फैक्टरियाँ बन गई हैं। गोआ, डमन, मछलीपट्टन, पांडुचरी ऐसे ही नगर हैं। पांडुचरी में तो फ्रांस वालों का अधिकार है। रही यहाँ से माल भेजने की सो अधिकतर रेलें लगी हुई हैं। रेलों के चल जाने से शहरों की बहुत कुछ उन्नति हुई है। जैसे कानपुर,

जबलपुर, अहमदाबाद आदि स्थानों को पहले कौन जानता था ? परन्तु कानपुर जी० आई० पी० और ई० आई० आर० का बड़ा जंकशन है। जबलपुर में बंगाल नागपुर रेलवे और बम्बई से आने वाली जी० आई० पी रेलवे का मिलान होता है।

कहीं कहीं बड़े मेले लगते हैं और इन मेलों की वजह से कई नगर बस गए हैं। बलिया जिले में इस प्रकार ददरी नामक स्थान पर हर वर्ष मेला लगता है। इसी तरह सोनपुर में सोनभद्र का मेला होता है। इन मेलों में गाँव के मेलों की बनिस्बत और भी कितने तरह की चीजें बिकती हैं। रानीगंज में कोयले की खान की खुदाई होती है। जमशेदपुर का नाम हम पहले ले चुके हैं। वहाँ लोहे की खान के पास यदि जमशेद जी ताता जमशेदपुर में अपना लोहे का कारखाना न खोलते तो आज जमशेदपुर में चार छः झोपड़ियों के अलावा और कुछ नहीं दिखाई पड़ता।

हिन्दोस्तान में अठारह यूनीवर्सिटी हैं। दो को छोड़ कर बाकी यूनीवर्सिटी के केन्द्र केवल यहाँ पर यूनिवर्सिटी होने के कारण नहीं बढ़े बल्कि उनके बनाने में अन्य बातों का भी हाथ है। परन्तु अलीगढ़ और आन्ध्र यूनीवर्सिटी की वजह से तो उनके केन्द्रों ने कुछ उन्नति कर भी ली वरना इन्हें कोई न पूछता। अस्तु, इस प्रकार आप शहरों की उन्नति के कुछ कारण तो जान गए परन्तु अभी तक आपको कुछ खास नगरों की विशेषता के बारे में कुछ नहीं बताया गया है। और बिना इसको बताए नगरों की उत्पत्ति और उन्नति का सवाल जरा भी पूरा नहीं होता।

मुख्य मुख्य शहरों की विशेषता

पश्चिमोत्तर सीमा तथा काश्मीर के मुख्य शहर पेशावर, क्वेटा और श्रीनगर हैं। पेशावर में फौज रहती है तथा काबुल से होने वाले व्यापार का केन्द्र है। यही हालत क्वेटा

की है। वूलर झील के पास बसा हुआ श्रीनगर का दृश्य बड़ा मन लुभाने वाला होता है। श्रीनगर से पर्वतों और सिन्ध नदी के मैदानों को माल आता जाता है। पंजाब में घुसते ही रावलपिंडी मिलती है जहाँ कि फौज रहती है। वहाँ पर मिट्टी के तेल के कुएं हैं, आगे चलकर सियालकोट मिलता है जहाँ पर हाकी, फुटबाल, क्रिकेट आदि के समान बनते हैं। यहाँ की ये चीजें मशहूर हैं। पंजाब की राजधानी लाहौर रावी नदी के किनारे बसा हुआ है। यहाँ पर यूनिवर्सिटी व हाईकोर्ट हैं। इसके अलावा रुई, आटे, साबुन, सोने का गोटा, तेजाब आदि के कारखाने हैं। अमृतसर सिक्खों का पवित्र स्थान है। यहाँ का स्वर्ण-मंदिर मशहूर है। यहाँ के दुशाले और दरियाँ बहुत अच्छी होती हैं। लुधियाना में रूई, रेशम, और ऊन के सामान बनते हैं। इसके अलावा लुधियाना में मोजों के कारखाने भी हैं। लुधियाना गेहूँ के व्यापार का केन्द्र है। चिनाब पर स्थित मुलतान भी व्यापार का केन्द्र है। चारों ओर से रूई, गेहूँ, तेलहन आदि वहाँ पर आता है और वहाँ से कराँची भेजा जाता है। भारत की सरकार गर्मी के दिनों में अपना दफ्तर शिमला उठा ले जाती है।

भारत की राजधानी दिल्ली ऐतिहासिक जगह है। नई दिल्ली में सरकारी दफ्तर रहते हैं। पुरानी दिल्ली में मलमल, लकड़ी, हाथीदाँत व सोने चाँदी का काम होता है। दुशाले भी बुने जाते हैं। रूई, चीनी और लोहे के कारखाने हैं। यह उत्तरी भारत की रेलवे का केन्द्र है इसलिए यह व्यापार का केन्द्र भी है। मथुरा जमुना नदी पर बसा हुआ है। यह हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ-स्थान है। मथुरा के उत्तरी-पूर्वी कोने पर अलीगढ़ है जहाँ पर अलीगढ़ यूनीवर्सिटी है। मरहठों के समय में बना हुआ कोयल का किला भी अलीगढ़ में ही है। संसार प्रसिद्ध ताज आगरे में बना हुआ है। आगरे में अनाज की बड़ी मंडी लगती है। रूई,

चमड़े और दरी बनाने के कारखाने भी हैं। दयालबाग के कारण आगरे का महत्व और भी बढ़ गया है। मुरादाबाद में तांबे, पीतल आदि के बड़े नफीस बर्तन बनते हैं। यहाँ का कलई का माल तो और भी अच्छा होता है। मुरादाबाद के पास ही बरेली है जहाँ पर काठ का काम होता है। यहाँ फौज भी रहती है। लखनऊ गोमती पर बसा है। यहाँ पर यू० पी० सरकार के दफ्तर हैं। लखनऊ में अजायबघर है। नवाबी शहर होने के कारण यहाँ बहुत सी इमारतें हैं। गोटा और सलमा सितारा अच्छा बनता है। लखनऊ में पच्चीकारी का काम भी होता है। यहाँ पर कागज की फैक्टरी भी है और चीफकोर्ट भी। लखनऊ से दूर रुड़की में इंजीनियरिंग कालेज है जहाँ इंजीनियरिंग की शिक्षा दी जाती है। लखनऊ से थोड़ी दूर पर ही गंगा के पार किनारे पर कानपुर शहर बसा हुआ है। आज कल की मशीनों का उपयोग करने वाले कारखानों के खुल जाने से कानपुर काफी महत्व का शहर हो गया है। यहाँ पर ऊनी सूती कपड़ों की कई मिलें हैं। चमड़े का कारखाना भी है। एक बात और है। संयुक्तप्रान्त की चीजें यहाँ पर आ आकर जमा होती हैं और फिर यहाँ से बाहर भेजी जाती हैं। और कालेजों के अलावा सनातनधर्म कालेज में कामर्स (Commerce) की पढ़ाई होती है। गाजीपुर में सरकार की ओर से अफीम की फैक्टरी है। वहाँ पर गुलाबजल आदि भी बड़ा बढ़िया बनता है। फैजाबाद किसी समय में अवध के नवाब की राजधानी थी। पास में ही सरयू के किनारे अयोध्या बसी हुई है। यहाँ पर हनुमान जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। गंगा और जमुना के संगम पर बसा हुआ इलाहाबाद हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है और संयुक्तप्रान्त की राजधानी भी। यहाँ पर जमुना के किनारे अकबर का किला बना हुआ है। किले के अन्दर अशोक की लाट है और बेतार के तार का स्टेशन भी। इलाहाबाद

यूनीवर्सिटी दुनिया भर में मशहूर है। यहाँ पर हाईकोर्ट भी है। हर साल माघ के महीने में संगम के किनारे माघ मेला लगता है। इलाहाबाद के पास बमरोली नामक स्थान में हवाई जहाजों के उतरने के लिए हवाई-स्टेशन है। गंगा के साथ साथ चला जाय तो बनारस मिलेगा। यहाँ पर पीतल के बर्तन, रेशमी कपड़ा, सोने चाँदी के गहने और लकड़ी के खिलौने बड़े अच्छे बनते हैं। बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी में हर तरह की पढ़ाई का इन्तज़ाम है। औरंगजेब की कबर, दुर्गाकुंड का स्वर्ण मन्दिर और बाबा विश्वनाथ का मन्दिर देखने लायक हैं। बनारस रेलवे का जंकशन स्टेशन है इससे कुछ मील दूर बौद्धों की प्रसिद्ध जगह सारनाथ है जहाँ पर महात्मा गौतम बुद्ध का स्तूप वगैरह जमीन से निकाले गए हैं।

बिहार की राजधानी पटना कई नदियों के संगम के पास बसा हुआ है। पटना और बंगाल के बीच होने वाला व्यापार स्टीमर द्वारा होता है। लेकिन अब तो माल अधिकतर रेल द्वारा आने जाने लगा है। पटना में यूनीवर्सिटी भी है। पटना से दक्खिन को ओर हिन्दुओं का तीर्थ-स्थान गया (Gaya) है। उसके पास ही बुद्ध-गया नामक स्थान पर बौद्ध का पवित्र पीपल का पेड़ और अशोक का पुराना महल है। भागलपुर रेशमी कपड़ा और बेलनियों के लिए प्रसिद्ध है। रानीगंज में कोयले की खानें हैं और जमशेदपूर में लोहे का कारखाना। उड़ीसा की राजधानी कटक महानदी के मुहाने पर बसा हुआ है। कलकत्ता से मद्रास जाने वाली रेल कटक में नदी पार करती है। उपजाऊ प्रदेश के बीच स्थित कटक व्यापार का केन्द्र भी है। कटक से लगभग पचास मील दूर समुद्र के किनारे जगन्नाथपुरी है जहाँ जगन्नाथ जी का मन्दिर है। यह हिन्दुओं का तीर्थस्थान है।

बिहार और उड़ीसा से आगे जाने पर बंगाल की उपजाऊ

जमीन मिलती है। हालाँकि बंगाल की जनसंख्या अधिक है पर बंगाल में बड़े शहर बहुत कम हैं। बंगाल की राजधानी कलकत्ता में जूट, रुई और कागज की मिल हैं। इसके अलावा चीनी की फैक्टरी, इन्जीनियरिंग के कारखाने और लोहे की फैक्टरियाँ भी हैं। यहाँ पर माल खूब तैयार किया जाता है और यह व्यापारिक केन्द्र है। ढाका जो किसी जमाने में अपने यहाँ के मलमल के लिए मशहूर था अब जूट और तेलहन बाहर भेजता है। चटगाँव में जूट के कारखाने हैं व यहाँ से जूट, चावल और चाय बाहर भेजा जाता है। रानीगंज कोयले की खानों के बीच होने से उच्च स्थान रखता है। दार्जिलिंग में चाय के बाग हैं तथा यहाँ से तिब्बत को चाय और ऊन का माल भेजा जाता है। आसाम के पहाड़ी प्रदेश होने की वजह से वहाँ पर शहर तो एक तरह से हैं ही नहीं। सिलहट (Sylhet) ही वहाँ का बड़ा शहर है। यहाँ की नारंगियाँ अच्छी होती हैं। आसाम की राजधानी शिलाँग उत्तर की ओर स्वास्थ्यदायक नगर है।

मद्रास प्रान्त तो एक तरह से छोटे बन्दरगाहों का घर ही है। इन बन्दरगाहों को छोड़कर हम खेती की उपज के केन्द्र कोयम्बटोर (Coimbatore) को ले सकते हैं। त्रिचनापल्ली कावेरी के मुहाने पर खड़ा है। उसके पास श्रीरंग जी का मन्दिर है। मदुरा तीर्थ स्थान होते हुए भी वहाँ पर पीतल वगैरह के बर्तन बनते हैं। मद्रास में दो रेलवे खतम होती हैं। यहाँ पर यूनीवर्सिटी व हाईकोर्ट है। मद्रास में सूती कपड़े, तुनाई और चमड़े के कारखाने हैं। भारत के पश्चिम किनारे पर बम्बई प्रान्त है। बम्बई में बहुत सी रुई के कारखाने हैं। हिन्दोस्तान का सबसे अच्छा बन्दरगाह होने से यह व्यापार का केन्द्र है। हाईकोर्ट और यूनीवर्सिटी है। करांची केवल बन्दरगाह है। साथ ही यहाँ एक हवाई स्टेशन भी है। अहमदाबाद के तीन मुख्य व्यापार हैं रेशम, रुई और सोना।

यहाँ पर चमड़े और कागज़ के कारखानें भी हैं। सूरत में रुई के कई कारखाने हैं। पहले सूरत बन्दरगाह भी था। फौजी स्टेशन होने के अलावा पूना में गाने का एक स्कूल खोला गया है। बम्बई सरकार के दफ़तर गर्मी में पूना पहुँच जाते हैं।

हैदराबाद निजाम राज्य की राजधानी है। यहाँ एक यूनवर्सिटी है। शहर रेल और व्यापार का केन्द्र है। इसी प्रकार मैसूर में बड़ा सुन्दर महल और मजबूत क़िला बना हुआ है। बंगलौर में फौज रहती है इसके अलावा रुई, ऊन और दरी का काम होता है। वहाँ रेशम की बुनाई और चंदन के तेल के कारखाने भी हैं। मध्यप्रांत में नागपुर में रुई का माल बनता है। यहाँ पर यूनीवर्सिटी भी है। यहाँ के संतरे मशहूर हैं। जबलपूर रेलवे जंक्शन है। उसके पास ही नर्मदा नदी के किनारे संगमरमर की चट्टानें हैं। यहाँ पर दियासलाई और बीड़ियों के कारखाने हैं। भोपाल नवाबी शहर है। यहाँ पर बहुत सी देखने लायक मसजिदें हैं। ग्वालियर मध्य भारत का सबसे बड़ा शहर है। जैन-मंदिर, पहाड़ी क़िला और पत्थर पर नक्काशी का काम देखने लायक है। इंदौर भी एक व्यापारिक केन्द्र है। बड़ौदा में रुई की मिलें हैं। जयपुर महाजनी व्यापार का केन्द्र है। शहर देखने लायक है। उदयपुर में संगमरमर का महल है।

बन्दरगाहों की उत्पत्ति और वृद्धि

भारत के समुद्री भाग का बड़ा महत्व है। जैसा कि हम बता चुके हैं अफगानिस्तान तिब्बत तथा मध्य एशिया के प्रदेश में गरीब तथा पिछड़े हुए होने के कारण जमीन के रास्ते विदेश में जो व्यापार हो होता है उसकी मात्रा बहुत कम है। जितना माल साल भर में एक दर्रे से आता है उतना तो बम्बई, कलकत्ता आदि बन्दरगाह में आने वाला एक जहाज ले आता है।

अगर हम चाहते हैं कि भारत का विदेशी व्यापार बढ़े तो यह आवश्यक है कि यहाँ अच्छे बन्दरगाह हों। बन्दरगाहों की उत्पत्ति और वृद्धि के लिए कई बातें जरूरी हैं। सबसे पहले जिस स्थान पर बन्दरगाह बनाया जाए वहाँ की जमीन कड़ी होनी चाहिए। बलुही जगह में बन्दरगाह बनाने से उसको बनाने और बाद में मरम्मत करने में बहुत खर्च पड़ता है। दूसरे उस जगह पर समुद्र का पानी काफी गहरा होना चाहिए जिससे ज्वार भाटा के कारण बड़े बड़े जहाजों के किनारे तक आने में कोई कठिनाई न हो। तीसरे बन्दरगाह पर जहाजों और स्टीमरों को आँधी तूफान आदि से रक्षा व शरण मिलनी चाहिए। बंदरगाह का स्थान ऐसा हो कि वहाँ आँधी तूफान न उठते हों या अगर कभी आँधी तूफान आवें तो उससे बन्दरगाह में खड़े जहाजों को नुकसान न पहुँचे। चौथे बन्दरगाह के आस पास के समुद्र में नदियों द्वारा बहाकर लाई गई रेत और मिट्टी न जमा हो। अगर ऐसा होगा तो समुद्र का तल आए दिन ऊँचा हो जाएगा। तब या तो जहाज किनारे तक न आ सकेंगे या उस रेत को बराबर निकाल कर फेंकने का इंतजाम करना पड़ेगा जिसके कारण नाहक रुपया खर्च होगा। इसके अलावा बन्दरगाहों का देश के भीतरी भागों से पूरा सम्बन्ध होना चाहिए। अर्थात् रेल मोटर, हवाई जहाजों द्वारा बन्दरगाहों से देश के अन्दर बसे शहरों और कस्बों तक माल और डाक लाने ले जाने का सस्ता और अच्छा इन्तजाम होना चाहिए। तभी तो विदेशों का माल देश वासियों के घर तक पहुँचाया जा सकेगा और जो वस्तुएँ देश में तैयार या उत्पन्न की जाती हैं उन्हें बाहर भेजा जा सकेगा। परन्तु यह तो तभी संभव होगा जब किसी बन्दरगाह का पृष्ठ देश जहाँ का विदेशी व्यापार उस बन्दरगाह के द्वारा होता है उपजाऊ हो और वहाँ विभिन्न प्रकार का तैयार माल बनाया जाता

हो। विदेशी व्यापार की सहूलियत के लिए अच्छा होगा अगर बन्दरगाह उद्योग-धंधों का केन्द्र भी हो । यों कभी कभी कोई बन्दरगाह इसलिए उन्नति कर लेता है कि वह जहाजों के आने जाने के रास्ते में पड़ता है और वहाँ जहाज कोयला पानी के लिए रुकता है।

हिन्दुस्तान के बन्दरगाह

हिन्दुस्तान के समुद्री किनारे बहुत कम कटे हुए हैं। इसके अलावा किनारे पर समुद्र छिछला है, तीसरे किनारे अधिकतर चपटे और बालूदार हैं। नदी के मुहानों पर ज्यादातर बालू इकट्ठी होती है जिससे जहाज बन्दरगाह तक नहीं जा सकते। पश्चिमी किनारे पर, खास कर कैम्बे के उत्तर में पश्चिम से आने वाली लहरों के कारण सिन्धु नदी द्वारा लाई बालू और मिट्टी से वहाँ की खाड़ियाँ पटती रहती हैं। इन्हीं लहरों के कारण ताप्ती और नर्मदा नदी की बालू कैम्बे की खाड़ी से बाहर नहीं जाने पाती। कलकत्ते बन्दरगाह पर भी यही दिक्कत रहती है और जहाजों के हुगली नदी की बालू में फँस जाने का डर रहता है। अतः जहाजों को घंटों ज्वार-भाटे की बाट जोहनी पड़ती है। कभी कभी तो जहाजों के पेंदे और बालू की सतह के बीच कुछ इंचों का ही अन्तर रहता है। अस्तु, भारत के अच्छे बन्दरगाहों में निम्न-लिखित का उल्लेख किया जा सकता है :—

चटगाँव, कलकत्ता, विजगापट्टम, कोकोनाडा, मद्रास, नेगापट्टम, धनुषकोटी, तूतीकोरिन, कोचिन, कालीकट, मंगलौर, बम्बई, सूरत, भावनगर विरावल, पोरबंदर, ओखा और करांची।

मुख्य मुख्य बन्दरगाहों की विशेषता

कलकत्ता भारत का ही नहीं बल्कि एशिया भर का मशहूर बन्दरगाह है। केवल बंगाल की उपज ही नहीं, आसाम, बिहार,

उत्तरी उड़ीसा, पूर्वी मध्य प्रान्त, पूर्वी मध्य भारत और संयुक्तप्रान्त तक का माल यहाँ से आता जाता है। यही सब कलकत्ते के पृष्ठ देश में शामिल किए जाते हैं और यहाँ रेलवे, सड़कों और नदियों का जाल बिछा है। गंगा की घाटी के कारण ये प्रदेश खूब उपजाऊ हैं। कोयला, लोहा, अबरख, मैंगनीज भी कलकत्ते के पृष्ठ देश में ही पाए जाते हैं। यहाँ से विदेशों को जाने वाली चीजों में जूट और जूट का तैयार माल, चाय, तेलहन, चमड़ा, अफीम और दाल मुख्य हैं। बाहर के जहाज जिन चीजों को लेकर कलकत्ते आते हैं उनमें अधिकतर रुई का तैयार माल, लोहे की चीजें, मशीनें, जावा की चीनी, तेजाब, मोटरें, काँच के बर्तन और शराब ही होती है। कलकत्ते में बहुत से कारखाने भी हैं। यहाँ जूट, रुई, कागज, चीनी की मिलें हैं। इंजीनियरिंग वर्क्स, लोहे के कारखाने और रस्सी बनाने के कारखाने भी हैं। कलकत्ते में कारखानों की भरमार इसीलिए है कि यहाँ से रानीगंज और झरिया, जहाँ कोयले की खाने हैं पास है। कलकत्ता भारत की मुख्य मुख्य रेलों का केन्द्र है। कलकत्ते के पूरब में चटगाँव (Chittagnon) है। पोर्चगीज के समय में इसका नाम ग्रान्डे बन्दरगाह रक्खा गया था। बन्दरगाह, समुद्र से बारह मील दूर करनफूल नदी के दाहिने किनारे पर है। यहाँ से चावल, जूट और चाय बाहर भेजा जाता है और मशीन व रुई के कपड़े विदेशों से आते हैं।

भारत के पूर्वी किनारे पर मद्रास का बन्दरगाह भी मुख्य है। मद्रास प्रेसीडेन्सी के पड़ोस में ट्रावनकोर, मैसूर और हैदराबाद की रियासतें मुख्य हैं। यही मद्रास के पृष्ठ देश को बनाते हैं। यह उतना अच्छा नहीं जितना कलकत्ता, बम्बई या कराँची का पृष्ठ देश। मद्रास से जाने वाले जहाज रुई, चाय, काफी, गरम मसाला, चमड़ा, तेलहन से लदे रहते हैं। आनेवाले जहाज रुई

के माल, चीनी, मशीन और तेजाब लाते हैं। मद्रास से क्या कलकत्ता, क्या पूना और बम्बई, क्या कालीकट, क्या मंगलौर चारों ओर रेलें जाती हैं। मद्रास का बन्दरगाह प्राकृतिक नहीं बल्कि बनावटी है। हालाँ कि बन्दरगाह काफी गहरा है परन्तु बम्बई और कराँची की बराबरी नहीं कर सकता। मद्रास और बम्बई के बीच में जहाज केवल कोचिन में ही भली-भाँति शरण ले सकते हैं। कोचिन के पास के प्रदेशों में नारियल और नारियल से मिलने वाली चीजें ही नहीं बल्कि चाय, रबर और काफी (Coffee) भी पाए जाते हैं। यहाँ से नारियल व नारियल का तेल, चटाइयाँ. मसाला, अदरक, रुई, रबर, चाय और ईंट खपरैल बाहर भेजी जाती हैं। आने वाली वस्तुओं में चावल आदि अनाज, रुई के कपड़े, मिट्टी का तेल, पेट्रोल, मशीन और चीनी का बोल-बाला रहता है।

कलकत्ते और मद्रास के बीच विजगापट्टम बन्दरगाह है। इसके पृष्ठ देश से आने वाली मैंगनीज विदेशों को भेजी जाती है। कुछ वर्ष हुए सरकार ने अपने खर्च से वहाँ का बन्दरगाह अच्छी तरह बनवा दिया है। अब तो वहाँ जहाजों की मरम्मत का कारखाना भी खुल गया है। अभी तो बन्दरगाह घाटे पर चल रहा है।

बम्बई का बन्दरगाह बहुत महत्व रखता है। यों तो यूरप जाने के लिए बम्बई कराँची को छोड़ कर भारत के अन्य सब बन्दरगाहों से नजदीक है। परन्तु कराँची का रंग इसलिए ढीला हो जाता है कि कराँची और हिन्दोस्तान के भीतरी हिस्सों को मिलाने के लिए सीधी गाड़ियाँ नहीं हैं। हालाँकि पश्चिमी किनारे को पश्चिमी घाट देश के अन्दर के भागों से अलग करती है, परन्तु थल और भोर घाट के दर्रों के कारण मद्रास, संयुक्तप्रान्त मध्य भारत आदि प्रदेशों से रेलें बम्बई पहुँच जाती हैं अतः इस

उपजाऊ पृष्ठ देश की सामग्री आसानी से बम्बई भेजी जा सकती है। दूसरे बम्बई के बन्दरगाह तक आने में जहाजों को हमेशा कम से कम बत्तीस फुट पानी रहता है। वही ऐसा बन्दरगाह है जहाँ बड़े से बड़ा जहाज किनारे तक आ सकता है। इसलिए बाहर भेजने के लिए जितना माल बम्बई में आता है उतना कलकत्ता व कराँची में भी नहीं आता। बम्बई से रुई, चिनौले (रुई का बीज), अलसी, मूँगफली और चमड़ा दूसरे देशों में भेजते हैं। रुई पैदा करने वाले प्रान्तों से घिरा होने के कारण बम्बई में रुई की बहुत सी मिलें हैं। इनमें तैयार होने वाला माल अफ्रीका, भारतीय सागर के अन्य बन्दरगाह तथा चीन तक जाता है। बाहर से आने वाला जहाज रुई के सामान, मशीन, चीनी, रेशम और दवाइयाँ लाता है।

बम्बई और कराँची के बीच काठियावाड़ के बन्दरगाह हैं जो बम्बई से लोहा ले रहे हैं। भावनगर के बन्दरगाह देश के अंदरूनी हिस्सों से रेल द्वारा सम्बन्ध रखते हैं। वहाँ सामान रखने के लिए गोदाम का भी पूरा प्रबन्ध है। पिछले पंद्रह साल में वहाँ का व्यापार दस गुने से अधिक बढ़ गया है। इसी प्रकार पोरबन्दर खुला हुआ छोटा सा बन्दरगाह है। वह बरसात के दिनों में बंद रहता है। तब यहाँ से काफी माल आता जाता है। अफ्रीका से आने जाने वाले यात्री इस बन्दरगाह से जाते हैं। बम्बई का काफी व्यापार इन बन्दरगाहों के हाथ आ गया है।

रही कराँची की बात। आज कल वह देखने लायक बन्दरगाह है। पूरब में ऐसी जगह मिलना मुश्किल है जहाँ पर माल लाने ले जाने में सुविधा हो, समय कम लगे और स्टीमर जल्दी से बोझा पटक कर भाग खड़ा होवे। कराँची में हवाई स्टेशन भी है। उत्तरी भारत और कराँची को मिलाने के लिए केवल नार्थ वेस्टर्न रेलवे (North-Western Railway) है। कराँची में सिन्ध और

पंजाब से ही माल अधिक आता जाता है। यही प्रान्त तथा कुछ देशी रियासतें उसके पृष्ठ देश को बनाती हैं। कराँची उद्योग-धन्धों का केन्द्र भी नहीं है। इन्हीं कारणों से उसका नम्बर बम्बई और कलकत्ता के बाद आता है। विदेशों को जाने वाले जहाज पंजाबी गेहूँ, रुई, जवा, तेलहन, ऊन और चमड़ा ही ज्यादा ले जाते हैं। कराँची में आने वाली चीजों में रुई का माल चीनी, मशीन, तेजाब और मिट्टी का तेल का नम्बर रहता है। एक बात और। यदि पश्चिमोत्तर कोने से भारत पर चढ़ाई होवे तो कराँची को ही फौज का अड्डा बनाना पड़ेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में शहरों की उत्पत्ति के क्या क्या कारण हैं?

२—राजनीतिक कारणों से बसाए नगरों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

३—मुसलमानी राज्य में भारत के कौन कौन से नगर स्थापित किए गए?

४—निम्नलिखित स्थानों की उन्नति के कारण लिखिए:—
प्रयाग, शिमला, कानपुर, पेशावर, क्वेटा।

५—शिक्षा, मेले तथा तीर्थ के कारण किस प्रकार शहर तथा नगर बस जाते हैं? भारतीय शहरों का उदाहरण लेकर समझाइए।

६—निम्नलिखित स्थानों की विशेषताएँ लिखिए:—दिल्ली, लखनऊ, बरेली, पटना, दार्जिलिंग।

७—भारत के पाँच मुख्य बन्दरगाहों की उत्पत्ति तथा उन्नति का हाल संक्षेप में लिखिए।

८—बन्दरगाहों की उन्नति के लिए किन किन बातों का होना आवश्यक है? उदाहरण सहित समझाइए।

९—किसी बन्दगाह के पृष्ठ देश का क्या महत्व होता है? पृष्ठ देशों ने भारीलय बन्दरगाहों की उन्नति पर क्या प्रभाव डाला है?

परिशिष्ट

ब्रिटिश द्वीप समूह

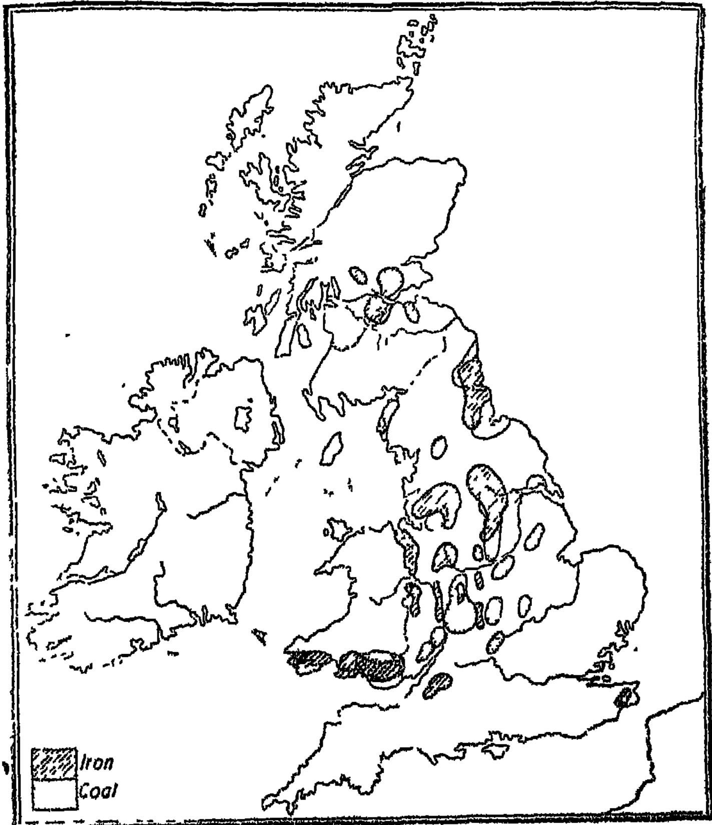
ब्रिटिश द्वीप समूह वास्तव में योरोप की पश्चिमीय सीमा है। इस छोटे से देश के धरातल की बनावट इतनी भिन्न है कि उसको देखकर आश्चर्य होता है। इस भिन्नता का कारण यह है कि यह द्वीप समूह किसी समय योरोप से जुड़ा होने के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार की धरातलों का सम्मिलित प्रदेश था। यही कारण है कि नार्वे की चट्टानें स्काटलैंड में तथा बैलजियम की चट्टानें डेवन (Devon) और कार्नवाल (Cornwall) में दिखाई देती हैं। स्काटलैंड, इंगलैंड तथा वेल्स के अतिरिक्त लगभग ५०० छोटे छोटे द्वीप भी इस समूह में सम्मिलित हैं।

स्काटलैण्ड

(Scotland)

शैवियट (Cheviot) की पहाड़ियाँ इंगलैंड को स्काटलैंड से पृथक् करती हैं। स्काटलैंड अधिकांश पहाड़ी है उसके उत्तर में ऊँचे पहाड़, बीच में मैदान तथा दक्षिण में कम ऊँचा पहाड़ी प्रदेश है। स्काटलैंड में बीच के मैदान ही अधिक उपजाऊ हैं और यहाँ खनिज पदार्थ भी मिलते हैं। इस कारण यही मुख्य औद्योगिक प्रदेश बन गया है। उत्तर के ऊँचे पहाड़ी भाग में आबादी बिखरी हुई है। यहाँ के मैदानों में ओट और जौ की पैदावार होती है तथा पशु पालन होता है। बीच के मैदान अधिक उपजाऊ हैं। पश्चिम में वर्षा ४० इंच तथा पूर्व में ३० इंच के लगभग होती है। यहाँ

खेती के अतिरिक्त फलों की पैदावार भी खूब होती है। पशु पालन, मक्खन तथा भेड़ पालने का भी धंधा अधिकता से होता है।



स्काटलैंड की लगभग तमाम कोयले की खानें इसी भाग में पाई जाती हैं। लिनलिथगो, ग्लासगो, तथा ऐडिनबरा (Edinburgh) की कोयले की खानों से कोयला बहुत निकाला जाता है। यहाँ लोहा भी कोयले के साथ ही मिलता है इसी कारण यहाँ लोहे का

धंधा उन्नति कर गया। अब अधिकतर लोहा विदेशों से आता है। फैलकिर्क में लोहे के बहुत कारखाने हैं। लैनार्कशायर तथा एयरशायर में भी लोहे का धंधा अधिक उन्नति कर गया है। ग्लासगो इस प्रदेश का मुख्य औद्योगिक केन्द्र है।

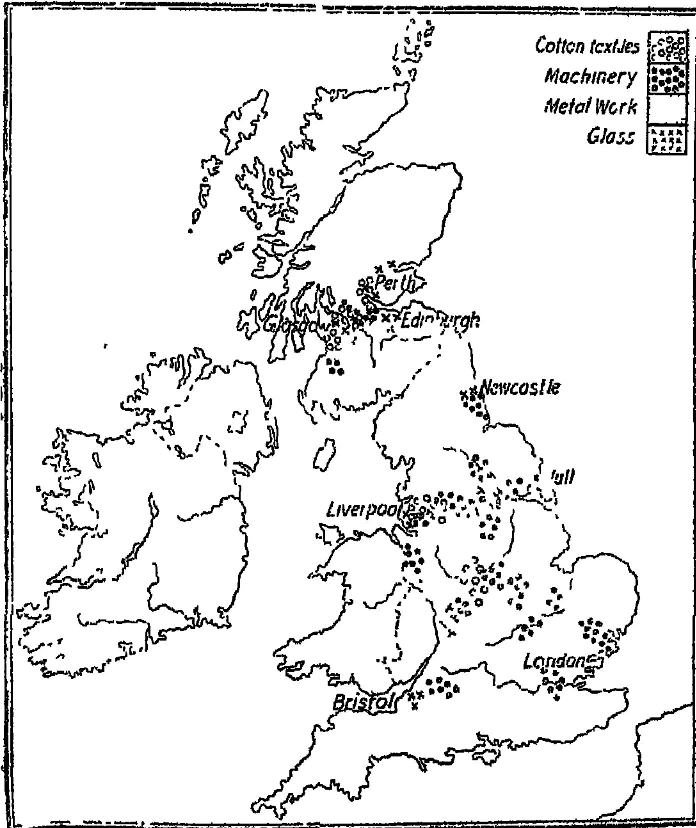
लोहे के अतिरिक्त स्काटलैंड में सन का कपड़ा (Linen) बनाने का धंधा भी महत्वपूर्ण है। डंडी में जूट का धंधा केन्द्रित है। पेस्ले तथा ग्लासगो में ऊनी कपड़ा तैयार करने के कारखाने हैं।

इस प्रदेश के औद्योगिक उन्नति करने का एक मुख्य कारण यहाँ व्यापारिक मार्गों की सुविधा का होना भी है। रेलों का तो यहाँ एक जाल सा बिछा है, उसके अतिरिक्त फोर्थ (Forth) तथा क्लाइड (Clyde) नदी के मुहानों से जहाज इस प्रदेश के अन्दर तक आ जा सकते हैं। इन दोनों नदियों की विशेषता यह है कि नदियों के मुहाने दो महाद्वीपों की ओर हैं। इस कारण योरोप तथा अमेरिका से व्यापार में अधिक सहायता मिलती है। क्लाइड (Clyde) नदी पर जहाज बनाने का धंधा इस तेज़ी से उन्नत कर गया है कि यह संसार का प्रमुख जहाज बनाने का केन्द्र बन गया है। जहाज बनाने के मुख्य केन्द्र हैं—क्लाइड बैंक (Clyde Bank) डालम्योर (Dalmuir) डम्बारटन तथा ग्लासगो।

दक्षिण का पहाड़ी प्रदेश अधिक ऊँचा नहीं है। यहाँ घास के मैदान अधिक हैं जिन पर पशु—विशेष कर भेड़ें चराई जाती हैं। यह ब्रिटेन के भेड़ पालने वाले प्रदेशों में मुख्य है। इस कारण ऊनी कपड़ा बनाने का धंधा यहाँ अधिकता से होता है। यहाँ ऊन और जल की बहुतायत है। पानी ऊन साफ करने तथा शक्ति उत्पन्न करने के काम में आता है। ऊनी कपड़े के निम्नलिखित केन्द्र हैं:—हाविक (Hawick), सैलकिर्क (Selkirk) तथा पीबिल्स (Peebles).

इंगलैंड

इंगलैंड ब्रिटिश द्वीप समूह का सबसे बड़ा भाग है। यह सबसे अधिक उपजाऊ और घना आबाद है। यहाँ पेनाइन



(Pannines) पर्वत श्रेणी के कारण पूर्व और पश्चिम के जलवायु में भिन्नता है। किन्तु यह पर्वत श्रेणी देश की औद्योगिक उन्नति में तथा मार्ग बनाने में बाधक नहीं हैं। इन पहाड़ों से दोनों ओर

छोटी-छोटी नदियाँ बहती हैं जिनमें स्टीमर आ जा सकते हैं। ट्रैंट (Trent), मरसी (Mersey), टेम्स (Thames) तथा सेवर्न (Severn) और उसकी सहायक नदियाँ बहुत अच्छे जलमार्ग का काम देती हैं। पेनाइन पर्वतमाला के बीच से तीन नहरें निकाली गई हैं। इन नहरों के द्वारा गूले (Goole) और हल (Hull) नामक पूर्वी तट के बंदरगाह पश्चिम तट के प्रेस्टन (Preston) और लिवरपूर (Liverpool) से जोड़ दिए गए हैं। एक नहर लंकाशायर के सूती कपड़े के केन्द्रों को जोड़ती है। केलडर (Calder) की घाटी से एक नहर मैंचेस्टर को मिलाती है।

पेनाइन पर्वत माला पर बहुत पहले से भेड़ें चराई जाती हैं। यही कारण है कि यहाँ का ऊन का धंधा सबसे पहले उन्नत हुआ। इंगलैंड का उत्तर पूर्वी भाग खेती के लिए अधिक उपयोगी नहीं है। थोड़ा गेहूँ, जौ और ओट उत्पन्न होता है। हाँ घास अधिक होने के कारण पशु-पालन अवश्य होता है। इस प्रदेश में कोयले के ही साथ लोहा भी पाया जाता है, इस कारण यहाँ लोहे का धंधा उन्नति कर गया है। अधिकतर लोहा क्लीवलैंड (Cleveland) के पहाड़ी प्रदेश से आता है। मिडिल्सबरो (Middlesborough) इस धंधे का मुख्य केन्द्र है। स्टाकटन (Stockton) और हार्टपूल (Hartpool) में भी यह धंधा चलता है। इस प्रदेश के मुख्य बंदरगाह न्यू कैसिल (New-Castle) में जहाज बनाने का धंधा बहुत उन्नत अवस्था में है।

पूर्व में कोयला बहुत पाया जाता है। कोयले की खानें यार्कशायर, डरबीशायर तथा नाटिंगहमशायर की काउंटियों में स्थित हैं। इन कोयले की खानों के समीप बहुत से धंधे उन्नत कर गए हैं। यार्कशायर ऊन के धंधे का केन्द्र बन गया है। पूर्व समय में यहाँ से ऊन फ्लैंडर्स को भेजा जाता था किन्तु पीछे फ्लैंडर्स के कुशल कारीगरों के यहाँ आकर बस जाने से धंधा चमक उठा।

कोयला समीप होने के कारण यंत्र युग में धंधा और उन्नति कर गया। ब्रैडफोर्ड, हडर्सफील्ड, हैलीफैक्स, ड्यूसबरी (Dewsbury) ऊन के धंधे के मुख्य केन्द्र हैं। इस प्रदेश में ऊन के अतिरिक्त चमड़े का धंधा भी उन्नत दशा में है। लीडस (Leeds) चमड़े के धंधे का मुख्य केन्द्र है। ऊनी धंधे के केन्द्रों के दक्षिण में लोहे के धंधे के केन्द्र हैं। शैफील्ड (Sheffield) इस धंधे का मुख्य केन्द्र है।

पैनाइन पर्वत माला के पश्चिम में लंकाशायर तथा कम्बरलैंड में कोयले की खानें हैं। लंकाशायर में सूती कपड़े का धंधा केन्द्रित और कम्बरलैंड में कोयले के साथ लोहा मिलने के कारण लोहे का धंधा स्थापित है। पश्चिम का उत्तरीय भाग पहाड़ी होने के कारण यह खेती के लिए उपयोगी नहीं है। घाटियों में भेड़ें चराई जाती हैं।

इंगलैंड का मध्य प्रदेश भी अधिक उपजाऊ नहीं है। यहाँ भी घास के मैदानों में गाय तथा भेड़ें चराई जाती हैं। इस कारण यहाँ मक्खन का धंधा खूब होता है। चेशायर में नमक की खान हैं। स्टैफोर्डशायर में मिट्टी के बर्तन बहुत बनाये जाते हैं। ट्रैन्ट नदी पर स्थित केन्द्रों में यह धंधा बहुत उन्नति कर गया है। पहले यहाँ की मिट्टी से ही बर्तन बनते थे किन्तु अब तो बाहर से मिट्टी मँगाई जाती है।

दक्षिण भाग में लोहे और कोयले की बहुत खानें हैं। बरमिंगहम (Birmingham) लोहे के धंधे का प्रधान केन्द्र है। यहाँ तोप, बंदूक, लड़ाई का सामान, मशीन, इंजिन तथा भिन्न भिन्न प्रकार के औजार बनाये जाते हैं। वोलवरहैम्पटन, डडले तथा वालसाल में भी लोहे के कारखाने हैं। इस प्रदेश में शीशे का धंधा भी उन्नत अवस्था में है। ड्राइटविच (Draoitwich) इसका प्रधान केन्द्र है।

वेल्स

वेल्स पर्वतीय प्रदेश है। साधारण ऊँचाई पर घास के मैदान हैं जहाँ भेड़ें चराई जाती हैं, कहीं कहीं गायें भी पाली जाती हैं। घाटियों के उपजाऊ मैदानों में खेती होती है। अनाज के अतिरिक्त यहाँ सेब बहुत अधिक उत्पन्न होता है। वेल्स में कोयला बहुत होता है।

स्वां सी (Swan sea) कार्डिफ (Cardiff) तथा न्यूपोर्ट (New-port) के बंदरगाहों से कोयला विदेशों को भेजा जाता है। यहाँ स्टील बनाने के कारखाने भी हैं। किन्तु स्टील बनाने के लिए लोहा स्पेन से आता है। लैनली में टिन-प्लेट के कारखानें हैं जिनके लिए टिन मलाया से आती है।

इंगलैंड के दक्षिण पूर्व में जो मैदान हैं वह बहुत ही विस्तृत हैं। यहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ है। यह कृषि प्रधान प्रदेश है और खेती-बारी ही यहाँ का मुख्य धंधा है। अधिक उपजाऊ भूमि पर खेती होती है और कम उपजाऊ भूमि पर गायें चराई जाती हैं। यहाँ उद्योग-धंधे अधिक नहीं हैं केवल कुछ ऊनी कपड़े तथा चमड़ा तैयार करने के केन्द्र हैं। गेहूँ और जौ इस प्रदेश की मुख्य पैदावार है। दक्षिण पश्चिम के प्रदेश में फल तथा हाप्स की पैदावार खूब होती है। लंदन इस प्रदेश का मुख्य बंदरगाह तथा व्यापारिक केन्द्र है। लंदन योरोप के मुख्य जलमार्गों तथा बंदरगाहों के सामने स्थित है। इस कारण इसका व्यापारिक महत्त्व बहुत बढ़ गया है।

आयरलैंड

आयरलैंड का उत्तरी भाग उपजाऊ है; परन्तु कहीं-कहीं भूमि खेती के योग्य नहीं है। यहाँ गेहूँ, जौ, सन और ओट की पैदावार

बहुत अधिक होती है। खेती का धंधा यहाँ का मुख्य धंधा है। खेती के उपरान्त मक्खन तथा सुअर पालने के धंधे महत्वपूर्ण हैं। बेलफास्ट (Belfast) यहाँ का मुख्य बंदरगाह है जहाँ जहाजी बेड़े बनते हैं। इसके अतिरिक्त सन के कपड़े का धंधा (Linen Industry) भी यहाँ केन्द्रित है।

आयरलैंड का मध्य प्रदेश बहुत उपजाऊ है, परन्तु पानी का बहाव अच्छा न होने के कारण यहाँ दलदल बहुत हैं। अधिकांश भूमि पर घास है, खेती थोड़ी भूमि पर ही होती है। पूर्व में गेहूँ, जौ और ओट की पैदावार होती है। घास के मैदानों पर गायें बहुत चराई जाती हैं। डबलिन इस प्रदेश का मुख्य व्यापारिक केन्द्र है। यहाँ शराब तथा पापलिन कपड़ा बनाने के कारखानें हैं।

दक्षिण आयरलैंड बहुत उपजाऊ है। जौ की पैदावार यहाँ बहुत अधिक होती है इस कारण जौ की शराब बनाई जाती है। किन्तु मक्खन का धन्धा यहाँ का सबसे महत्वपूर्ण धन्धा है। आयरलैंड प्रतिवर्ष बहुत सा मक्खन इंगलैंड को भेजता है। दक्षिण में ही यह मक्खन तैयार होता है क्योंकि यहां घास के मैदान बहुत हैं। मक्खन के साथ-साथ सुअर पालने का धन्धा भी यहाँ महत्वपूर्ण है क्योंकि मक्खन निकले हुए दूध को पिलाकर सुअरों को मोटा किया जाता है।

ब्रिटिश द्वीप समूह में मछली पकड़ने का धंधा भी बहुत महत्वपूर्ण है। लगभग दस लाख मनुष्य इस धन्धे में लगे हुए हैं। नार्थ-सी में मछलियाँ बहुत पकड़ी जाती हैं। मछली पकड़ने के मुख्य स्थान डोगर बैंक (Dogger Bank) के समीप हैं।

ब्रिटेन अत्यन्त समृद्धिशाली देश है। इस देश की औद्योगिक उन्नति के बहुत से कारण हैं। इस देश की भौगोलिक परिस्थिति ही इसकी उन्नति का मूल कारण है। देश का जलवायु शीतोष्ण

होने के कारण औद्योगिक उन्नति के लिए बहुत ही अनुकूल है। इसके अतिरिक्त कोयला यहाँ बहुत अधिक निकाला जाता है जिसके कारण यहाँ विशेष रूप से औद्योगिक उन्नति सम्भव हो सकी। लोहा भी यहाँ यथेष्ट मिलता है। इस कारण स्टील तथा यंत्रों को बनाने का धन्धा जो अन्य धन्धों का जनक है यहाँ स्थापित हो सका। यंत्रों का आविष्कार सर्वप्रथम यहीं हुआ। इस कारण आधुनिक ढंग के कारखाने सर्व प्रथम यहाँ स्थापित हुए और ब्रिटेन औद्योगिक उन्नति में अग्रणी बन गया। ब्रिटेन की औद्योगिक उन्नति का एक कारण यह भी है कि यहाँ के श्रमजीवी बहुत कुशल तथा परिश्रमी हैं।

औद्योगिक उन्नति के साथ ही साथ ब्रिटेन का व्यापार भी खूब ही चमका। व्यापारिक उन्नति में उसका टूटा फूटा समुद्रतट, जलमार्गों की सुविधा, अच्छे बन्दरगाह, तथा नाविक शक्ति विशेष सहायक रहे हैं। ब्रिटेन का व्यापार मुख्यतः योरोप से है। परन्तु ब्रिटेन से बाहर जाने वाला तैयार माल अधिकतर साम्राज्य के अन्तर्गत देशों को जाता है और बाहर से आने वाली वस्तुओं में से अधिकांश योरोप तथा अमेरिका से आती है।